पाश्चात्य मध्ययुगीन राजनीतिक सिद्धान्तों का इतिहास

लेखक

सर आर० डब्ल्यू० कार्लाइल

तथा

ए० जे० कार्लाइल

खण्ड 4

दशम शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक के बीच साम्राज्य एवं पोप पद के सम्बन्ध विषयक सिद्धान्त

लेखक

ए० जे० कार्लाइल

अनुवादक

एम० पी० राय

अध्यक्ष राजनीतिशास्त्र विभाग राजकीय महाविद्यालय [illegible]



राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

जयपुर

प्रस्तावना

भारत की स्वतन्त्रता के बाद इसकी राष्ट्रभाषा को विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम के रूप मे प्रतिष्ठित करने का प्रश्न राष्ट्र के सम्मुख था। किन्तु हिन्दी म इस प्रयोजन के लिए अपेक्षित उपयुक्त पाठ्य पुस्तकें उपलब्ध नही होने से यह माध्यम-परिवतन नही किया जा सकता था। परिणामत भारत सरकार ने इस न्यूनता के निवारण के लिए वज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दावली आयोग की स्थापना की थी। इसी योजना के अन्तगत १९६९ म पाच हिन्दी भाषी प्रदेशो म ग्रन्थ अकादमियो की स्थापना की गई।

मध्य युग म पाश्चात्य देशो मे राजनीतिशास्त्र के सिद्धान्तो के विकास का जो इतिहास डा ए जी कार्लाइल द्वारा लिखा गया है वह इस विषय का प्रामाणिक एव विद्वजन समादृत ग्रन्थ है। यह उसका चतुर्थ खण्ड है। आशा है इससे राजस्थान के अध्येता लाभान्वित होंगे।

प्रस्तुत पुस्तक इसी क्रम मे तयार करवाई गई है। इस पुस्तक की परिवीक्षा के लिए अकादमी प्रो अम्बादत्त पत अध्यक्ष राजनीतिशास्त्र विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय प्रयाग के प्रति आभारी है।

खेतसिंह राठौड़
शिक्षा मन्त्री राजस्थान सरकार एव
अध्यक्ष राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर

गोपीकृष्ण व्यास
निदेशक

प्राक्कथन

इस ग्रंथ मे दसवी शताब्दी से लेकर बारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध के बीच पाप पद एव साम्राज्य के सम्बन्ध विषयक सिद्धान्तो का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। मैंने धार्मिक एव लौकिक व्यवस्थाओ के सम्बन्धो एव विरोधो के अधिक सामान्य विषय के विवेचन का प्रयत्न नही किया है। इनके कुछ पक्षो का विवेचन इस ग्रन्थ की प्रथम एव द्वितीय पुस्तको में किया जा चुका है तथा सम्भवत इन पर हम अगली पुस्तक मे पुन विचार करेगे किन्तु मैं अपने पाठको को स्मरण दिलाना चाहता हू कि इस ग्रन्थ का विषय मध्ययुग का धार्मिक अथवा नागरिक इतिहास नही है किन्तु राजनीतिक सिद्धान्त हैं तथा हम लौकिक एव धार्मिक सत्ताओ के सम्बन्धो पर उतना ही विचार करेंगे जहाँ तक वे इन सिद्धान्तो के विकास को प्रभावित करने को प्रवृत्त होते है।

मैं वास्तव मे नही समझता कि सामान्य रूप से इन सम्बन्धो का उतना ही प्रभाव राजनीतिक सिद्धान्तो पर पडा है जितना प्राय सुझाया जाता है। मध्ययुग की महान् राजनीतिक अवधारणाए जसे विधि की सर्वोच्चता समाज की सत्ता शासक एव शासित के बीच सांविधिक सम्बन्ध दोनो सत्ताओ के सम्बन्धो के प्रश्नो से मात्र प्रासगिक रूप से ही प्रभावित थे। तथापि मेरे विचार म हमारे द्वारा ग्यारहवी तथा बारहवी शताब्दी मे साम्राज्य एव पोप पद के सम्बन्धो का एक सम्पूर्ण पुस्तक मे विवेचन करने का हमारा काय दो कारणो से उचित है। प्रथम इस कारण से कि दो सत्ताओ द्वारा जिनमे एक लौकिक एव दूसरी धार्मिक है मानव समाज के नियन्त्रण का सिद्धान्त उस विकास का प्रतिनिधित्व करता है जो प्राचीन एव आधुनिक जगत् का विशिष्ट विभेद है। दूसरे इस कारण से कि कभी कभी यह सोचा जाता है कि मध्ययुग म धार्मिक जीवन की स्वतन्त्रता का अर्थ धार्मिक सत्ता की सर्वोच्चता समझा जाता था। मैं इस पुस्तक मे इस सम्पूर्ण विषय के विवेचन का दावा नही करता। अगली पुस्तक मे हम तेरहवी शताब्दी म इसके विकास को प्रदर्शित करने की आशा करते है। मैने इस पुस्तक मे यह विचार करने का प्रयत्न किया कि ग्यारहवी तथा बारहवी शताब्दी के महान् सघर्ष से कौन कौन से प्रश्न उठे तथा इस समय मे सर्वोच्चता के सिद्धान्तो के स्वरूप तथा विस्तार के बारे म हम किन निष्कर्षों पर पहुँचे।

मैं कायस कॉलेज केम्ब्रिज के श्री जेडब्रुक के प्रति आभार व्यक्त करना चाहता हू जिनने इसके प्रूफो को पढा तथा जिनके संशोधनो एव सुझावो के लिए मैं अत्यन्त आभारी हू यद्यपि इस विषय के विवेचन के अंतिम स्वरूप अथवा इसम व्यक्त निर्णयो के लिए उनका कोई दायित्व नही है। मुझे यहाँ यह आशा व्यक्त करने की अनुमति दी जाय कि शीघ्र ही उनके द्वारा किया गया ग्रेगोरी सप्तम का अध्ययन हम सबको सुलभ हो सकेगा।

मैं प्रोफेसर आटो फान गीक के श्रेष्ठ ग्रन्थ विशेषत स्वर्गीय प्रोफेसर मैटेनेण्ड द्वारा अनूदित अंश के प्रति निरन्तर आभार व्यक्त करता हू। मध्ययुग के विशाल साहित्य पर कार्य करने का प्रयास करने वाले ही इसके चिरस्मरणीय विवेचन का महत्व तथा उसमे अत्यन्त प्रासंगिक रूप से भी दिये गए उल्लेखो की यथार्थता का अनुभव कर सकते हैं। मैं ग्यारहवी तथा बारहवी शताब्दी के विवादास्पद साहित्य के प्रोफेसर मिर्ट द्वारा किये गए श्रेष्ठ एव विस्तृत अध्ययन Die Puslizistic im Zeitalter Gregors VII के प्रति अपनी प्रशंसा व्यक्त करना चाहूगा। तथा मैं कृतज्ञतापूर्वक मध्ययुग के धार्मिक इतिहास के एक सर्वश्रेष्ठ विद्वान् लाइपजिग के प्रोफेसर हाक के ग्रन्थ के प्रति आभार व्यक्त करना स्मरण रखूगा। दुर्भाग्य से जिनका इन वीरता भरे कठिन वर्षों मे देहावसान हो गया है।

ऑक्सफोर्ड दिसम्बर 1921

विषय-सूची

भाग एक

900 ई० से 1076 ई० तक धार्मिक एव राजनतिक सत्ता के सम्बन्ध मे

पंचम अध्याय

षष्ठ अध्याय

सप्तम अध्याय

भाग तीन

पोप पद एवं साम्राज्य का राजनैतिक संघर्ष

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

ग्रेगोरी सप्तम के कार्यों एवं दावों का विवेचन (1) 110

तृतीय अध्याय

ग्रेगोरी सप्तम के कार्यों तथा दावों का विवेचन (2) 131

चतुर्थ अध्याय

भाग चार

चच एव साम्राज्य 1122 ई० से 1177 ई० तक

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

—x—

प्रथम भाग

900 ई० से 1076 ई० तक धार्मिक एव राजनैतिक सत्ता के सम्बन्ध मे

प्रथम अध्याय

धार्मिक एव राजनैतिक सत्ता की अन्योन्यातिव्याप्ति

इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड म हमने नवी शताब्दी म धार्मिक एव राजनैतिक सत्ताधारियो के सम्बन्धो के मुख्य सिद्धान्तो एव विशेषताओ पर विचार करने का प्रयत्न किया तथा इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यद्यपि यह सामान्यतया सोचा गया कि इन सम्बन्धो का नियामक सिद्धान्त यह था कि प्रत्येक सत्ता अपने अपने क्षेत्र म दूसरी स पूर्णतया स्वतन्त्र एव सर्वोच्च है वास्तविकता म यह सम्बन्ध अत्यन्त जटिल थे एव यदाकदा इस सिद्धान्त से असगत दिखलाई देते थे। वास्तव म राजनैतिक सत्ता धार्मिक क्षेत्र म निरन्तर अत्यधिक प्रभावशाली थी और धार्मिक सत्ता राजनैतिक क्षेत्र म निरन्तर अत्यधिक नियन्त्रण करती थी। यद्यपि सिद्धान्त पर्याप्त रूप से सुस्पष्ट था किन्तु पूर्णत सिद्धान्त पर आधारित व्यवहार करना निश्चय ही अत्यन्त कठिन था। सम्राट या राजा प्राय अपने आप को ऐसी स्थिति म पाता था कि उसका कर्तव्य इस बात को देखना होता था कि चर्च के धार्मिक अधिकारी अपना कर्तव्य निर्वाह ठीक स कर रहे हैं अथवा नहीं और इसलिए यथार्थ रूप म धार्मिक विषयो म उसको अनिर्धारित होते हुए भी व्यापक अधिकार प्राप्त थे। दूसरी ओर धार्मिक अधिकारी भी अनेक बार लौकिक विषयो म आदेश एव निर्देश देने म प्रवृत्त होते थे।

जनता द्वारा गृहीत सिद्धान्त सुनिश्चित एव देखने म सरल थ किन्तु दोनो महान् सत्ताधारियो के वास्तविक सम्बन्ध अत्यन्त जटिल थे। तथापि समग्र रूप स यह कहना कठिन नही है कि इस जटिलता के होते हुए भी दोनो सत्ताओ म गम्भीर संघर्ष अथवा विरोध नहीं था।

इस खण्ड में हम इस बात का विचार करेंगे कि ये अपेक्षाकृत शान्त परिस्थितियाँ किस प्रकार बदल गई तथा पोप ग्रगोरी सप्तम (Gregory VII) के अभिषेक के वर्ष 1073 ई० से लेकर 1303 ई० में पोप बोनीफेस अष्टम (Boniface VIII) की मृत्यु तक लगभग दो सौ पचास वर्षों में पश्चिमी यूरोप साम्राज्य एवं पोप पद के महान् संघर्ष की गूंज से स्तब्ध हो गया, जबकि दूसरे पश्चिमी देशों में भी राजनैतिक एवं धार्मिक सत्ताओं का संघर्ष स्वरूप की दृष्टि से समसामयिक न होने पर भी स्वभावतः किसी प्रकार से कम गम्भीर नहीं कहा जा सकता। इस खण्ड में इन्नोसेण्ट तृतीय (Innocent III) के अभिषेक की तिथि (1198 ई०) से आगे हम विषय पर विचार नहीं करेंगे क्योंकि उसके अधिकारी होने के पश्चात् से इन सम्बन्धों में एक नया परिवर्तन आया, जिसे तेरहवीं शताब्दी के सिद्धान्तों एवं परिस्थितियों के सन्दर्भ में ही अध्ययन करना चाहिए।

हमें यह देखना है कि (1) यह महान् संघर्ष किस प्रकार प्रारम्भ हुआ, (2) इस प्रश्न का यथार्थ स्वरूप एवं इस संघर्ष के आधारभूत सिद्धान्त क्या-क्या थे एवं (3) बारहवीं शताब्दी में शान्ति या स्थायी रूप से इसके समाधान के लिए क्या-क्या उपाय किए गए? सर्वप्रथम हमें यही विचार करना होगा कि यह महान् संघर्ष कैसे प्रारम्भ हुआ क्योंकि इतिहास के अन्य स्थलों से अधिक यहाँ पर निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि किसी स्थिति की अन्तर्गत घटनाओं अथवा कारणों का विवेचन करके ही हम किसी परिस्थिति की यथार्थ व्याख्या कर सकते हैं। इसलिए ऐसा करने के लिए हम पोप ग्रगोरी के पदारोहण के पूर्व दसवीं एवं ग्यारहवीं शताब्दी में धार्मिक एवं राजनैतिक इन दो महान् सत्ताओं के सम्बन्धों के यथार्थ स्वरूप के विचार से प्रारम्भ करेंगे।

जब हम इस काल के इतिहास का निष्पक्षतया परीक्षण करना प्रारम्भ करते हैं तो सर्वप्रथम हमें यह तथ्य प्रभावित करता है कि यद्यपि इस विचार का कोई कारण नहीं कि किसी को इसमें सन्देह था कि धार्मिक एवं राजनैतिक सत्ताएँ विभिन्न एवं दूसरे से पूर्णतया स्वतन्त्र क्षेत्र वाली हैं[1] तथापि वास्तविक व्यवहार में राजनैतिक शासक एवं जनसाधारण निरन्तर धार्मिक विषयों की व्यवस्था में बड़ा भाग लेते थे तथा पोप एवं बिशप राजनैतिक विषयों में अनेक अधिकारों का प्रयोग करते थे।

दसवीं शताब्दी में हमें राजनैतिक सत्ताधारियों एवं जनसाधारण द्वारा चर्च की परिषदों में उपस्थित होकर विचार विनिमय में योगदान तथा उनके निर्णयों को अपनी सत्ता का समर्थन प्रदान करने का निरन्तर उल्लेख मिलता है। इसका श्रेष्ठ उदाहरण आग्सबर्ग (Augsburg) में 952 ई० में हुई एक परिषद् की कार्यवाही का विवरण है। यह सभा बिशपों की सम्मति से ओटो प्रथम (Otto I) द्वारा धार्मिक विषयों एवं ईसाई साम्राज्य की दशाओं पर विचार करने के लिए बुलाई गई थी। इसमें धार्मिक विषयों में विचार के अवसर पर विशेषरूप से बिशपों ने उसको उपस्थित होने का निमन्त्रण दिया। ओटो ने वास्तव में चर्च के नियमों की उद्घोषणा में भाग नहीं लिया किन्तु वह उन पर विचार के समय उपस्थित था तथा उनके व्यवस्थापन के लिए भी पादरी उसकी सहायता की अपेक्षा करते थे।[2]

दसवीं एवं ग्यारहवीं शताब्दियों में न केवल जर्मनी में वरन् इटली में भी इसके अनेक

उदाहरण मिल सकते हैं। जान तेरहवें (John XIII) की पदावधि मे हुई विभिन्न परिषदो की रिपोर्टों मे सम्राट ओटो प्रथम की उपस्थिति तथा सहमति का उल्लेख है।[3] 998 ई म पोप ग्रेगोरी पचम द्वारा बुलाई गई रोम की एक अन्य परिषद् म सम्राट ओटो तृतीय को ग्राक्सोने (Auxonne) के बिशप पद के विवादास्पद निर्वाचन पर हुई बहस मे सक्रिय रूप से भाग लेता हुआ प्रदर्शित किया गया है।[4] पुन ओटो तृतीय ने पोप ग्रेगोरी पचम के साथ रोम मे हुई परिषद् की अध्यक्षता की जिसम मसबग (Merseburg) के पादरी पद एव उसके मूल गौरव की पुन स्थापना की गई।[5] सम्राट कोनाड द्वितीय (Conrad II) ने पोप जान उन्नीसवें के साथ 1027 ई मे रोम म सम्पन्न एक परिषद् की अध्यक्षता की जो एक्वीनिया के पाधिधर्माध्यक्ष (Patriarch of Aquleia) के साथ गडो के सम्बन्धो के निर्धारण के लिए बुलाई गई थी तथा उसका निर्णय भी पोप एव सम्राट द्वारा ही लिया गया बताया जाता है। सम्राट कोनाड ने फ्रेंकफट म बिशपो की एक परिषद् की अध्यक्षता की थी जिसमे छोटे पादरी एव एक विशाल सख्या मे जन साधारण भी उपस्थित थे।[6]

पाविया (Pavia) म 1046 ई म हुई एक धम सभा मे हेनरी तृतीय की उपस्थिति का उल्लेख मिलता है तथा उस धम सभा म वेरौना के बिशप (Bishop of Verona) की प्राथमिकता का निर्णय उसके निर्देशानुसार (Praceptum) होना बतलाया गया है। 1049 ई म पोप लियो नवम द्वारा मज (Maintz) मे बुलाई गइ परिषद् की विभमिया मे पोप द्वारा हेनरी तृतीय के अपने साथ सभा मे बठने एव परिषद् द्वारा बेसनसन (Besancon) के आच बिशप पद के सम्बन्ध मे एक विवादास्पद दाव के निर्णय को स्वीकृति देने का उल्लेख किया गया है। छोटे पादरी एव जनसाधारण भी उसम उपस्थित तथा अपनी स्वीकृति देते हुए बताए गए हैं।

ये उल्लेख इस बात के उदाहरण हैं कि दसवी शताब्दी के राजाओ एव सम्राटो का धार्मिक सभाओ की गतिविधियो म प्राय महत्वपूण योगदान था। यह भी कम महत्वपूण नही है कि फ्रेंकफट एव मज की पूर्वोल्लिखित परिषदो के विवरणो म जनसाधारण की उपस्थिति का भी उल्लेख है। इसके कुछ अन्य दृष्टात भी ध्यान देने योग्य हैं। पोप लियो नवम ने अपने एक पत्र म 1049 ई म उसके द्वारा राइम्स (Rheims) मे बुलाई गई परिषद् के निर्णयो का उल्लेख किया है जिनको उसने स्वय बिशपो की सम्मति तथा छोटे पादरियो एव जनसाधारण की स्वीकृति स लिया था।[7] कुछ वर्षों के बाद पोप निकोलस द्वितीय द्वारा गाल (Gaul) एक्वीटेन (Aquitaine) तथा गेस्कोनी (Gascony) के बिशपो को सम्बोधित एक पत्र म 1059 ई म बुलाई गई रोम की परिषद् का वणन है जिसम उसने पोप के चुनाव सम्बन्धी प्रसिद्ध नवीन आदेश दिया था तथा उस परिषद् म बिशप एबट छोटे पादरी एव जनसाधारण उपस्थित थे।[8] पुन कतिपय वर्षों के बाद 1067 ई म पोप एलेक्जेण्डर द्वितीय द्वारा क्रेमोना के चच (Church of Cremona) के पादरियो एव जनसाधारण को सम्बोधित एक अन्य पत्र म ईस्टर के बाद प्रस्तावित एक परिषद् के लिए प्रतिनिधि भेजने का निमन्त्रण दिया गया है।[9] इसलिए हम यह आश्चय जनक प्रतीत नही होता है कि लेनफ्रेंक (Lanfranc) के जीवन चरित्र म इसका उल्लेख

मिलता है कि धार्मिक नियमों सम्बन्धी व्यवस्था एवं इंगलैण्ड के चर्च के आदेशों की पुनः स्थापना के लिए उसके द्वारा बुलाई गई परिषद् को पोप एलेक्जेण्डर एवं सम्राट विलियम के अधिकार से बनाया गया था तथा उसमें बिशप, राजकुमार, छोटे पादरी एवं जनता के सम्मिलित होने का उल्लेख है।[10] 1076 ई. में ग्रेगोरी सप्तम द्वारा आहूत धर्म सभा अथवा रोम की परिषद् में जिसमें सम्राट हेनरी चतुर्थ को धर्म बहिष्कृत एवं पदच्युत घोषित किया गया न केवल बिशप, एबट एवं छोटे पादरी ही वरन् जनसाधारण भी उपस्थित बताए जाते हैं।[11] ग्यारहवीं शताब्दी की समाप्ति के आसपास पोप अरबन द्वितीय (Pope Urban II) के दो पत्रों में हम इसी तथ्य का दूसरा उदाहरण पाते हैं जिनमें त्रिनेनी में ट्रस के आर्च बिशप के धार्मिक अधिकारों का प्रश्न उठाया गया था। इनमें वह घोषणा करता है कि उसके निर्णय जिस परिषद् में लिए गए उसमें केवल बिशप एवं अन्य छोटे पादरी ही नहीं वरन् रोमन न्यायाधीश और कौंसलर भी उपस्थित थे तथा निर्णय भी उनकी राय से लिए गए थे।[12]

ऐसा प्रतीत हो सकता है कि अपने आप में ऐसे वाक्यांश अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं निस्संदेह कई स्थलों पर ये केवल औपचारिक मात्र हैं किन्तु उससे इनका महत्व कम नहीं होता वास्तव में वे इस बात को सूचित करते हैं कि दोनों सत्ताओं तथा पादरियों एवं जनसाधारण में दो वर्गों की पृथकता के सिद्धान्त को जनता द्वारा चाहे जितनी मान्यता दी जाए व्यवहार में जनसाधारण को भी संगठित चर्च सम्बन्धी सत्ता से पूर्णतया बहिष्कृत नहीं माना जाता था।

यदि इस तथ्य को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि दसवीं एवं ग्यारहवीं शताब्दी में राजनैतिक शासक एवं जनसाधारण को चर्च सम्बन्धी विषयों की व्यवस्था में कुछ स्थान प्राप्त था तो उस युग के लेखों में पाए जाने वाले वे कुछ उल्लेख भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं जिनमें पोप व दूसरे चर्च सम्बन्धी अधिकारियों द्वारा राजनैतिक विषयों में हस्तक्षेप का उल्लेख है। हमें बाद में इस पर गम्भीरता से विचार करना होगा कि इसके सम्बन्ध में किए गए दावों का जब महान् संघर्ष छिड़ा यथार्थ स्वरूप क्या था? इस बीच उस समय से पूर्व इस विषय की ओर हम केवल प्रासंगिक संकेत करना चाहते हैं।

इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में हम कह चुके हैं कि नवीं शताब्दी में यह प्रायः स्वीकार किया जाता था कि पोप एवं चर्च के बिशप का राजाओं एवं सम्राटों की नियुक्ति में महत्वपूर्ण स्थान था।[13] जैसा कि हम कह चुके हैं कि उन निश्चित सिद्धांतों का निर्धारण अत्यन्त कठिन है जिन पर यह मान्यता आधारित थी। पोप द्वारा सम्राट की नियुक्ति के सम्बन्ध के मूल में फ्रैंक शासकों की रोमन सम्राटों के रूप में मान्यता से सम्बद्ध विशिष्ट परिस्थितियाँ थीं। सामान्यतः बिशपों के बारे में यह कहना कठिन है कि उनके अधिकार किस सीमा तक उनके धार्मिक पद एवं सत्ता के प्रति आदर पर आधारित थे एवं किस सीमा तक इस तथ्य पर कि बिशप लोग समाज के वे बड़े व्यक्ति थे जिनको शासक को चयन एवं प्रस्तावित करने का दायित्व प्रायः सौंपा गया था। वास्तव में यह अत्यन्त सन्दिग्ध है कि नवीं शताब्दी में वे सब तथ्य जिन पर चर्च के अधिकारियों का राजनैतिक विषयों में हस्तक्षेप आधारित था सुस्पष्ट एवं सुनिश्चित थे और यह प्रतीत होता है कि

इस विषय म वही अनिश्चितता उसके वाद के युग म भी बनी रही ।

नवी शता्नी क अतिम वष म हम पोप जान नवम को लिखे गए मज के आच विशप हट्टो (Hatto the Archbishop of Maintz) के नाम स प्रसिद्ध पत्र म कुछ महत्त्व पूर्ण वाक्याश प्राप्त होते हैं जिनम जमनी म लुई दी चाइल्ड (Louis the Child) के सम्राट रूप म निर्वाचन का उल्लेख है । हेट्टो चुनाव क सम्बन्ध म पोप की सम्मति की उपेक्षा का कारण बताते हुए कहता है कि उस समय जमनी और रोम के बीच की सडक मूर्तिपूजको (Pagans) द्वारा अवरुद्ध थी । अस्तु पोप से प्राथना की गई है कि अब पुन उसमे सम्पक सम्भव हो सकने के बाद इस काय की पुष्टि की जाय ।[14] यह पत्र स्पष्टतया इस ओर सकत करता है कि पोप का इस विषय मे अधिकार इस प्रकार स माय था कि उसे राजी करना तया उसकी सहमति एव समथन पाना महत्वपूण माना जाता था । दसवी शता ी म जब पोप पद का गम्भीरतम अध पतन हो चुका था तब भी पोप जान द्वादश आटो प्रथम के रोम आने का वणन करता है ताकि वह उसके हाथो से सत पीटर द्वारा राजकीय मुकुट ग्रहण कर सके और यह भी घोषणा करता है कि उसने चच की रक्षा क लिए सत पीटर के आशीर्वाद स उसका सम्राट पद पर अभिषेक किया ह ।[15] रोडोल्फस ग्लेबर (Rodolphus Glaber) ग्यारहवी शता ी क पूर्वाद्ध म स्पष्टतया इस सिद्धान्त का वणन करता है कि पोप जिसे उस पद के लिए उपयुक्त समझे एव जिसे सम्राट पद प्रदान कर उसके अतिरिक्त कोई न तो सम्राट बन सकता है न कहला सकता ह ।[16] एनाल्स आफ हिल्डेशीम (Annals of Hildesheim) के परिशष्ट कत्ता ने हेनरी तृतीय द्वारा अपने अवयस्क पुत्र क पोप एव अन्य विशपो तथा राजकुमारो द्वारा चुने जाने पर राजा बनाने का वणन किया है ।[17]

इस समय दसवी एव ग्यारहवी शताब्दियो म धार्मिक एव राजनतिक दो महान् सत्ताओ की अन्योन्याश्रितता के उदाहरण क रूप म पर्याप्त कहा जा चुका है और यह भी बताया जा चुका है कि किस प्रकार प्राय राजनतिक सत्ता धार्मिक विषयो म हस्तक्षेप करती थी एव धार्मिक सत्ता राजनतिक विषयो म । अब हम अधिक विस्तार से उन कतिपय प्रश्नो पर विचार करगे जिनके सम्बन्ध म अतत ग्यारहवी एव बारहवी शताब्दी म महान् सघष प्रारम्भ हुआ ।

सन्दभ

1 Act Conc li I T la A D 909 M n C n l v l x Ch p l Th y q te
2 M G H Leg m Sect IV C n t 9 Con c t s A g ta 95 A D
3 M s Co c la l A P 509
4 Mans C c li vol xi p 228
5 M G H Legum Sect IV Con t 24 Con l n Roma m (998 999) 1
6 Id d 51
7 Pop Leo IX Ep stles 17
8 Pope N h I II Ep tl 71
9 P pe Al xa d II Ep stl 36
10 M g e P L ol 150 Lanfra Vita x

11 P pe Grego VII Reg strum III 10 ( )
12 P p Urb n II Ep tl 113
13 Cf l pp 8 87
14 M n Corc l a l x i A p 204
15 Id id 461
16 Rodolph s Gl b H st i 5
17 An l H ld sh imen C A no 10 6 (p 104) (H n c)

द्वितीय अध्याय

दसवीं एवं ग्यारहवीं शताब्दी में पोप का चुनाव

यदि हम गम्भीरतापूर्वक उत्तरवर्ती समय के स्वरूप को समझने का प्रयत्न करें तो हम सर्वप्रथम ओटो प्रथम से लेकर हेनरी तृतीय तक के जर्मन सम्राटों द्वारा पोपों की नियुक्ति एवं पदच्युति के लिए किए गए योगदान का विचार करना पड़ेगा। हम यहाँ इस काल के पोपों के चुनाव की सम्पूर्ण परिस्थितियों के विस्तृत एवं परिपूर्ण अध्ययन का मिथ्या दावा नहीं करते उसकी इतनी आवश्यकता भी नहीं है क्योंकि उस पर अनेक पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ पहले से विद्यमान हैं। फिर भी हमारे विचार में उस युग में सामान्यतः स्वीकृत कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों को स्वीकार करना उचित है तथा हम पर्याप्त निश्चिन्ततापूर्वक विवाद एवं सन्देह के साथ महत्त्वपूर्ण स्थलों को पृथक कर सकते हैं। एक ओर तो यह निश्चित है कि दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर ग्रेगोरी सप्तम के राज्यारोहण तक की इस सम्पूर्ण अवधि में पोप के चुनाव में सम्राट का स्थान भी स्वीकार किया जाता था दूसरी ओर यह भी हम देख सकते हैं कि चुनाव में राजकीय योगदान की सीमा के बारे में तथा किसी भी व्यक्ति द्वारा चाहे वह जनसाधारण से या पादरी पोप के ऊपर अपने अधिकार के दावे को सिद्ध करने के प्रयत्न के विरुद्ध में गम्भीर सन्देह भी थे।

पोप जान नवम द्वारा 898 ई० में रोम में बुलाई गई परिषद् की कार्यवाही का दसवाँ खण्ड इन परिस्थितियों का वर्णन करता हुआ माना जा सकता है जिन पर वास्तव में दसवीं शताब्दी के पोप के चुनावों में राजकीय सत्ता का योगदान आधारित था। इस विवरण में किसी पोप की मृत्यु होने पर उसके उत्तराधिकारी के अभिषेक के अवसर पर रोमन धर्मपीठ के विरुद्ध सम्भावित हिंसा का भी उल्लेख है यदि सम्राट को इसकी सूचना न हो और उसके दूत उस समय घटित होने वाली हिंसा तथा गोलमालवालों के निवारण के लिए वहाँ पर उपस्थित न हों। इसमें यह निर्दिष्ट है कि भविष्य में बिशपों एवं पादरियों द्वारा चुनाव सीनेट एवं जनता के प्रस्ताव पर हो लिए जाय

पोप का राजकीय प्रतिनिधियों की उपस्थिति में अभिषेक किया जाय किसी भी व्यक्ति द्वारा निर्वाचित पोप को प्राचीन मान्यताओं से भिन्न कोई प्रतिज्ञा अथवा शपथ बलपूर्वक नहीं दिलाई जाय ताकि चर्च नातावाद से मुक्त रहे तथा सम्राट के लिए देय सम्मान भी कम न हो सके।[1]

मन्नेरिंग इस बात को स्वीकार करता है कि यद्यपि रोमन जनसाधारण के प्रस्ताव पर पोप का निर्वाचन बिशपों एवं पादरियों का ही कार्य है तथापि यह चुनाव बिना राजा को सूचित किए और अभिषेक के समय उसके प्रतिनिधियों की उपस्थिति के बिना पूर्ण नहीं माना जा सकता। इसके लिए विशिष्ट कारण यह बताया गया है कि सम्राट के संरक्षण के अभाव में यह नियुक्ति शांति एवं स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं हो सकती।

यहाँ हमारा उद्देश्य दसवीं एवं प्रारम्भिक ग्यारहवीं शताब्दी में पोप पद के इतिहास के सम्पूर्ण ऐतिहासिक महत्त्व की समीक्षा का प्रयत्न नहीं है। यहाँ यह स्वीकार करना ही पर्याप्त है कि जब ओटो प्रथम दूसरी बार इटली आया तथा 962 ई. में पोप जॉन द्वादश द्वारा सम्राट के रूप में अभिषिक्त किया गया उसने रोम के पोप पद को अत्यन्त हीन दशा में तथा रोमन सामन्तों के गुटों से नियन्त्रित पाया। जॉन द्वादश ने ओटो का सम्राट पद पर अभिषेक किया तथा जैसा बताया जाता है ज्यों ही ओटो ने रोम को छोड़ा उसके विरुद्ध षड्यन्त्र करना प्रारम्भ कर दिया। ओटो रोम को लौट आया। क्रेमोना के बिशप ल्यूटप्रान्ड (Luitprand) के विवरण के अनुसार उसने एक परिषद् बुलाई जिसमें इटली, सक्सोनी तथा फ्रैंकोनिया के बिशप एवं रोम के पादरी तथा प्रमुख नागरिक उपस्थित थे। पोप पर विभिन्न प्रकार के नैतिक एवं धार्मिक अपराधों के आरोप लगाए गए तथा परिषद् ने उसे उपस्थित होने एवं उन आरोपों के विरुद्ध सफाई देने को कहा। जॉन ने इसके उत्तर में धमकी दी कि यदि उन्होंने दूसरे पोप की नियुक्ति का प्रयास किया तो वह उन्हें धर्म बहिष्कृत कर देगा। अतिरिक्त विचार विनिमय के बाद सम्राट ने परिषद् के सामने भाषण दिया कि पोप ने उसके साथ की गई शपथ को भंग किया है तथा उसके विरुद्ध शत्रुओं के साथ मिलकर षड्यन्त्र किया है। पादरियों एवं जनता ने कहा कि इस अभूतपूर्व अपराध का निर्णय भी अभूतपूर्व साधनों से किया जाय। पोप ने अपने नग्नट आचरण द्वारा न केवल स्वयं को ही वरन् दूसरों को भी हानि पहुँचाई है तथा माँग की कि उसे पदच्युत करके नवीन पोप का निर्वाचन किया जाय। सम्राट ने उनकी माँग स्वीकार कर ली तथा उन लोगों ने लियो को जो रोमन चर्च का प्रोटोस्क्रीनेरियस (Protoscrinarius) था एकमत से पोप चुन लिया[2] (964 ई.)। यद्यपि प्रतीत होता है कि रोमन जनता एवं पादरियों की यह एकमतता केवल नाममात्र की थी क्योंकि जैसे ही सम्राट ने रोम छोड़ा जनता लियो अष्टम के विरुद्ध हो गई तथा वह भागकर सम्राट के पास चला गया। पोप जॉन द्वादश का देहावसान हो गया तथा रोमवासियों ने बेनेडिक्ट पंचम को चुन लिया। सम्राट लौटा तथा बेनेडिक्ट को वेटिकन की परिषद् में प्रस्तुत किया गया और उसे जर्मनी को निर्वासित कर दिया गया।[3]

दूसरे वर्ष (965 ई.) में लियो अष्टम की मृत्यु हो गई तथा रेजियो के क्रानिकन

के परिशेषकर्ता द्वारा दिया गया उसके उत्तराधिकारी के चुनाव का विवरण महत्वपूर्ण है। वह कहता है कि लियो की मृत्यु पर रोमवासियो ने एजो (Azo) जो प्रोटोस्क्रीनरियस था तथा सुत्री के बिशप मेक्सिमस को सम्राट के पास जो उस समय सेक्सोनी म था यह कहला कर भेजा कि वह चाहे जिसे पोप नियुक्त करे। किन्तु सम्राट ने वसा नही किया तथा स्पायस के बिशप ओत्गार तथा क्रमोना के बिशप लियूजो को रोम भेजा तथा अनुमान किया जाता है कि उनकी उपस्थिति म रोमवासियो ने नार्नी के बिशप जान को पोप चुन लिया।[4]

यह निष्कर्ष निकालना अनुचित होगा कि यह विवरण सम्पूर्ण परिस्थिति का समग्र वृत्तान्त प्रस्तुत करता है। हम इस सभावना को स्वीकार करना चाहिए कि ये घटनाए उनके वर्णनकर्त्ताओ की पद स्थिति म प्रतिरजित हो सकती है।

ओटो प्रथम एव परिषद् द्वारा पोप जान द्वादश की पदच्युति का काय 1049 म हनरी तृतीय एव सुत्री की परिषद् के काय के समान ही थे। लियो तृतीय तथा लियो चतुथ के दृष्टीकरण ऐसे पूर्वोदाहरण हैं जो यह दिखलाते हैं कि चच के अध्यक्ष के चरित्र के विषय म चच तथा सम्राट दानो के ही हस्तक्षेप करन के दावे थ।[5] यहा यह ध्यान रखना अधिक महत्त्वपूण है कि जान द्वादश के निष्कासन म चाहे जो प्रगति रही हो यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि लियो अष्टम एव जान तरहवें के निर्वाचन के समय परम्परागत विधि का विशेषतया ध्यान रखा गया था। ल्यूटप्राड के विवरण के अनुसार रोम के नागरिको एव पादरियो न ही लियो अष्टम को चुना था तथा सम्राट ने तो केवल उनके चुनाव की सहमति दी थी। रजाना के परिशेषकर्त्ता के विवरण से स्पष्ट है कि लियो अष्टम की मृत्यु के बाद ओटो प्रथम ने किसी को भी पोप पद पर स्वय नियुक्त नही किया किन्तु चुनाव का काय रोमवासियो को ही सौंप दिया जो सम्भवत उसके दूतो की उपस्थिति एव सहमति स किया गया हो।

इस वर्णन की पुष्टि ओटो प्रथम के पोप के चुनाव सम्बन्धी *विशेषाधिकार पत्र* (Privilegium) की व्यवस्थाओ स होती है जिसका समय 962 ई माना गया है तथा जिसकी प्रामाणिकता को सही माना गया है। इसकी व्यवस्था के अनुसार रोम के पादरी एव सामत इस बात का ध्यान रखग कि चुनाव धम वधानिक तथा न्यायपूवक हो तथा जो इस पद के लिए चुना जाय उसका अभिषेक तब तक न हो जब तक वह साम्राज्यिक प्रतिनिधियो की उपस्थिति म व ही घोषणाए न कर जो पोप लियो न स्वेच्छा स की थी। यह भी कहा गया है कि रोम के निवासियो की स्वतन्त्रता म कोई हस्तक्षेप न कर जिनको प्राचीन परम्परा एव पूज्य धर्माचार्यों के विधान के अनुसार निर्वाचन का अधिकार प्राप्त है और यह निषध सम्राट के दूतो पर भी लागू होता है।[7] ये व्यवस्थायें पायस लुई के समझौते तथा लोथयर प्रथम के रोमन सविधान (Constitutio Romana) म उपलब्ध व्यवस्थाओ से मिलती जुलती हैं[8] और यह स्पष्टतया स्वीकार करती हैं कि निर्वाचन का अधिकार रोमवासियो का है परन्तु इस प्रक्रिया म सम्राट को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

इसी शताब्दी म कुछ समय बाद हम यह देखते हैं कि इन सवधानिक परम्पराओ

का इतने ध्यान से पालन नहीं किया जाता था। सेंट ब्रन्वट के जीवन चरित्र में 996 ई. में पोप ग्रेगोरी पंचम की नियुक्ति का विवरण उपलब्ध होता है। इसमें यह प्रतीत होता है कि जब पोप जान पन्द्रहवें की मृत्यु हुई तब ओटो तृतीय रवेना में था। रोम के प्रधान नागरिकों (Proceres etsenatorius or do) ने पत्र एवं दूतों को भेजकर पोप की मृत्यु की घोषणा की एवं उसके स्थान पर किसको चुना जाए इस सम्बन्ध में राजकीय निर्णय पाने की इच्छा व्यक्त की। ओटो तृतीय ने राजकीय गिरजाघर के एक युवक एवं विद्वान् उपदेष्टा ब्रूनो को चुना जो उसका रिश्तेदार था उसे स्पष्टतया रवेना में एक मयोरीबस (maioribus) के रूप में निर्वाचित किया गया तथा उसे मेन्ज के आर्क बिशप व अन्य बिशपों के साथ रोम भेजा गया जहाँ उसका सम्मान पूर्वक स्वागत हुआ।[9] यह प्रथा अधिकांशतः उससे मिलती जुलती है जिसका उदाहरण हम तब पायेंगे जब अगले अध्याय में बिशपों की नियुक्ति का वर्णन करेंगे।

कुछ वर्षों के बाद ही एक लेख में जिसकी प्रामाणिकता पर सम्भवतः अकारण ही सन्देह किया गया है हम पाते हैं कि ओटो तृतीय बहुत स्पष्टतया यह दावा करता है कि उसने स्वयं ही 999 ई. में गेरबट (सिलवेस्टर द्वितीय) को पोप बनाया था।[1] इसका वास्तविक अभिप्राय क्या है यह आसानी से नहीं कहा जा सकता किन्तु कम से कम इसका अभिप्राय यह स्पष्ट है कि ओटो तृतीय को उसकी नियुक्ति में अपना स्वयं का भाग अत्यधिक प्रतीत होता था।

हमारे द्वारा उल्लिखित घटनाओं के सम्बन्ध में समकालीन निरीक्षण एवं आलोचना के रूप में हमारे पास बहुत कम साक्ष्य है किन्तु यह स्मरणीय है कि मसबर्ग के थायटमार ने जो ग्यारहवीं शताब्दी के प्रथम चरण के बाद नहीं लिख रहा था बेनेडिक्ट पंचम का जिसने valentiorem sibi (i.e. the Emperor) in Christo कहता है पदच्युति से असहमति प्रकट की है तथा यह माना है कि ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी को भी उसकी जाँच करने का अधिकार नहीं है।[11]

ओटो तृतीय की मृत्यु के बाद पोप पद सम्राट के दबाव से अपेक्षाकृत मुक्त रहा परन्तु साथ ही उसका समय भी नहीं उठा तथा एक बार फिर उसके बुरे दिन आए क्योंकि जर्मनी के हस्तक्षेप से मुक्त होकर वह अधिक असहाय रूप से स्थानीय गुटों के आधिपत्य में आ पड़ा तथा ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य तक स्थिति पुनः विषम हो गई। हम हेनरी तृतीय द्वारा किए गए हस्तक्षेपों का विस्तार से अध्ययन नहीं करेंगे। यहाँ यहाँ स्मरण रखना पर्याप्त है कि ग्रेगोरी षष्ठ को हेनरी तृतीय की उपस्थिति में सम्पन्न परिषद् में पदच्युत किया गया था जो दिसम्बर 1046 ई. में सुत्री में हुई थी तथा बेम्बर्ग के बिशप स्यूडगर को क्लेमेन्ट द्वितीय के रूप में पोप चुना गया।[12]

इसमें सन्देह करने का कोई कारण नहीं कि हेनरी तृतीय का कार्य शुद्ध उद्देश्य से प्रेरित था। वास्तव में उसे पोप पद की दशाओं एवं स्वरूप में सुधार लाने में सफलता मिली जिनका स्थायी प्रभाव पड़ा। इसके लिए प्रयुक्त साधनों के औचित्य का प्रश्न इससे सर्वथा भिन्न है।

1047 ई. में क्लेमेंट द्वितीय का देहावसान हुआ जबकि ग्रेगरी षष्ठ जीवित ही

था। साम्राज्य के सबसे सम्मानित बिशपो में लीज का बिशप वाज़ो (Wazo) था जिसका वर्णन आगे और आएगा। हेनरी तृतीय ने क्लमेंट के उत्तराधिकारी की नियुक्ति के बारे में उससे राय मागी किन्तु उसके जीवन चरित्र के रचयिता के वर्णन के अनुसार वाज़ो ने अत्यन्त नम्रता एव दृढता से उत्तर देते हुए धार्मिक पद के न्यायसगत अधिकारी के जीवित रहते हुए अन्य किसी की नियुक्ति के विरुद्ध हेनरी तृतीय को चेतावनी दी तथा धर्माचार्यों का यह मान्य सिद्धान्त बताया कि उस सर्वोच्च धार्मिक अधिकारी का निर्णय भगवान् के अतिरिक्त कोई अन्य नही कर सकता।[13] ऐसा प्रतीत होता है कि वाज़ो का उत्तर हेनरी तृतीय के पास तब तक नहीं पहुँचा जब तक कि ब्रिक्सेन के पोपो की दमसुस द्वितीय (Damasus II) के नाम से पोप पद पर नियुक्ति नही हो चुकी थी किन्तु उसका यह निर्णय बहुत महत्त्वपूर्ण है।

वाज़ो ने जो मत दृढतापूर्वक किन्तु विनम्र एव चुने हुए शब्दों द्वारा अभिव्यक्त किया था वही अधिक कठोर रूप में एक तत्कालीन फ्रेंच चर्च के पादरी की रचना में व्यक्त किया गया है। उसने सम्राट को अत्यन्त दुरात्मा बताकर उसकी निन्दा की है तथा उसे चुनौती देते हुए कहा है कि वह विचार करे कि पूर्ववर्ती सम्राटो एव राजाओ के दृष्टान्तो को ध्यान में रखते हुए उसके द्वारा एक धर्माधिकारी के सम्बन्ध में निर्णय करने के लिए बैठना कहा तक उचित है। वह यहा तक कहता है कि हेनरी तृतीय अपनी सबधी पोइटू की एग्नेस (Agnes of Poitou) से निषिद्ध समागम विवाह के कारण एक साधारण आदमी का न्याय करने का भी अधिकारी नही है। वह कहता है कि जिस प्रकार एक साधारण आदमी पादरी के सामने अपराध-स्वीकृति करता है पादरी बिशप के सामने तथा बिशप पोप के सामने उसी प्रकार पोप केवल ईश्वर के सामने अपराध स्वीकृति करता है क्योंकि ईश्वर ने उसे अपने निर्णय के लिए सुरक्षित रखा है। वह घृणापूर्वक कहता है कि सम्राट ईसा मसीह के स्थान पर न होकर जब वह तलवार का प्रयोग एव रक्तपात करता है शैतान के स्थान पर है।[14] यह भी महत्त्वपूर्ण है कि वह फ्रेंच बिशपो की राय एव सहमति के बिना पोप के निर्वाचन का विरोध करता है तथा यह प्रतिपादन करता है कि चूकि उनका चुनाव में कोई योगदान नही था वे आज्ञापालन के लिए बाध्य नही हैं।

वाज़ो तथा इस फ्रेन्च लेखक का दृष्टिकोण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है तथा उसी सिद्धान्त का निरूपण करता है जो पहले इसी शताब्दी में जैसा कि हम देख चुके हैं मर्सबर्ग के थीटमार द्वारा अभिव्यक्त किया गया था। यद्यपि हमें यहा पर ध्यान रखना चाहिए कि हेनरी के कार्यों की इस निन्दा से चर्च के सुधारवादी दल के प्रमुख सदस्य सहमत नही थे। सुधारो का सबसे प्रधान इटालियन प्रतिनिधि पीटर डेमीयन था तथा वह हेनरी तृतीय तथा उसके द्वारा धर्म विक्रय (Simony) जैसी तत्कालीन प्रथाओ के विरोध द्वारा की गई चर्च की सेवाओ का सर्वोच्च प्रशसक था। लियो नवम के पदावधि काल में लिखे गये एक ग्रन्थ में वह यहा तक कहता है कि इस सबध में की गई उसकी सेवाओं के कारण दैवी विधान द्वारा यह आदेशित हुआ कि रोमन चर्च उसके सकल्पानुसार व्यवस्थित हो तथा उसकी अनुमति के बिना किसी का भी

रोम के धर्मासन के लिए निर्वाचन नहीं किया जाना चाहिए।[15]

इस काल का दूसरा सबसे प्रसिद्ध सुधारक सिल्वा कैंडिडा का पादरी कार्डिनल हम्बर्ट अपने ग्रन्थ अडवर्सस सिमानियेकोस (Adversus Simoniacos) नामक ग्रन्थ में धर्म विक्रय के खिलाफ हेनरी तृतीय द्वारा की गई चर्च की सेवाओं की प्रशंसा अत्यन्त उत्साहपूर्ण शब्दों में करता है।[16] और यह भी ध्यान देने योग्य है कि ग्रेगोरी सप्तम भी *हेनरी तृतीय की प्रशंसा में सर्वोत्कृष्ट शब्दावली का प्रयोग करता है तथा उसकी और उसकी पत्नी की भूरि भूरि प्रशंसा करता है।*[17]

इन विरोधी सम्मतियों के विवेचन से यह तो स्पष्ट है कि चर्च के सुधार के लिए सर्वाधिक उत्साही व्यक्ति भी मुख्य में हेनरी तृतीय के कार्यों के सम्बन्ध में अपने निर्णय में पूर्णतया एकमत नहीं थे।

पोप की नियुक्ति में सम्राट के योगदान के अधिकार का प्रश्न कुछ अलग तरह भिन्न था। यह कहना भी प्रतीत नहीं होता कि अभी तक किसी ने गम्भीरतापूर्वक राजा के *उसमें भाग लेने के औचित्य पर आपत्ति उठाई हो किन्तु उसके योगदान का स्वरूप* अनिश्चित था। अब हम सुत्री की परिषद् के काल से लेकर पोप निकोलस द्वितीय तक इस प्रश्न के इतिहास का तथा पोप के चुनाव के सम्बन्ध में उसकी शास्त्रीय मान्यता का संक्षेप में विवेचन करेंगे।

हेनरी तृतीय ने रोम में पेट्रीशियस की उपाधि धारण की थी तथा कुछ लेखक तो यहाँ तक कहते हैं कि इसके साथ पोप के चुनाव में कुछ विशेषाधिकार भी जुड़ा हुआ था।[18] जैसा हम देख चुके हैं कि क्लमेंट द्वितीय अपने अभिषेक के दूसरे ही वर्ष 1047 ई. में दिवंगत हो गया तथा *बिशप को पोप डेमसस द्वितीय के रूप में* जर्मनी के सम्राट एवं उसकी सभा द्वारा सम्भवतः रोमवासियों द्वारा लिखे गए पत्रों की पृष्ठ के जीवित रहते हुए किसी अन्य के चुनाव की निन्दा करने वाले पत्र के सम्राट को पहुँचने के पूर्व ही पोप पद पर नियुक्त कर दिया गया। इसलिए जब डेमसस द्वितीय की भी उसी वर्ष मृत्यु हो गई तो यह स्पष्ट हो गया कि पोप के निर्वाचन के सही ढंग का प्रश्न गम्भीरतापूर्वक लोक मानस को प्रभावित कर रहा है। टूल के ब्रूनो *(Bruno of Toul) के लियो नवम के रूप में चुनाव के एक से अधिक विवरण उपलब्ध* हैं। इनमें से पहला जो एनसेल्म (Anselm) द्वारा लिखे गए रीम्स के चर्च के इतिहास में विद्यमान है वर्णन करता है कि पोप डेमसस द्वितीय की मृत्यु पर रोम वासियों ने हेनरी तृतीय को किस प्रकार से सूचित करके कहा कि उसके स्थान पर नयी नियुक्ति की जाए। सम्राट ने बिशपों और साम्राज्य के सामन्तों (Optimates) की राय लेकर टूल के ब्रूनो को जो अपने चरित्र एवं विद्वत्ता के लिए विख्यात था तथा उसका अपना सम्बन्धी था इसके लिए चुना। धर्मगुरु के गौरव का अधिकार चिह्न उसे समर्पित किया गया तथा उसे रोम भेजा गया (ad haec s cumdum eccle siastione sanctiones sus ı iendas)। वहाँ पहुँचने पर रोमनिवासियों ने उसका सम्मानपूर्ण स्वागत किया तथा सत पीटर के सिंहासन पर लियो नवम के रूप में उसका अभिषेक कर दिया गया।[19]

विबट (Wibert) द्वारा लिखे गए लियो नवम के जीवन चरित्र म जो कि उसके अधीन टूल का आर्कडीकन था अतिरिक्त तथा महत्त्वपूर्ण विवरण मिलता है। लेखक ने लियो के सम्राट हेनरी तृतीय की उपस्थिति म वार्म्स नामक स्थान पर बिशपो एव पादरियो (proceres) की परिषद् द्वारा चुने जाने का वर्णन किया है। उसके अनुसार लियो ने विचार के लिए तीन दिन की अवधि मागी तथा उस अवधि म उपवास एव प्रार्थनाए करने के बाद पद को स्वीकार करने के लिए इस शर्त पर अपनी स्वीकृति दी कि सारे रोमन पादरी एव रोम निवासियो की सहमति का उसे विश्वास दिलाया जाय। वह नगे पैरो चलकर रोम आया तथा नगर म पहुँचकर उसने राजकीय चुनाव की घोषणा की परन्तु यह माग की कि रोम निवासी भी अपनी इच्छा व्यक्त करें उसने यह कहा कि परम्परानुसार सभी मसालो से पूर्व पादरियो एव जनता द्वारा चुनाव है अतएव यह विश्वास दिलाया कि यदि व उसके निर्वाचन से खुश न हो तो वह प्रसन्नतापूर्वक अपने घर लौट जाएगा। जब उसने देखा कि व उस सवसम्मति से स्वीकार कर रहे हैं तभी उसने अभिषिक्त होने के लिए अपनी स्वीकृति दी।[0] इसमे हम इस सम्भावना को स्वीकार करना चाहिए कि यह वर्णन किसी सीमा तक लेखक के सिद्धान्तो म भी प्रभावित है किन्तु इस सम्भावना को स्वीकार करने पर भी यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह इस अस्वीकार करता प्रतीत नहीं होता कि पोप की नियुक्ति म सम्राट का भी योगदान है किन्तु वह रोम के पादरियो एव जनता के अधिकारो का उल्लघन अथवा अवहेलना नही कर सकता जो कि प्राथमिक निर्वाचक सस्था है।

लियो नवम के उत्तराधिकारी के रूप म 1054 ई० म आइक्स्टाट के बिशप गैबार्ड (विक्टर द्वितीय) की नियुक्ति का विवरण विभिन्न विवरणो म कुछ पृथक शब्दो म किया है किन्तु यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह चुनाव स्वय सम्राट ने बिशपो एव राजसभा की राय से तथा रोमन चच के प्रतिनिधियो की स्वीकृति से किया था।[21]

स्टीफेन नवम (1057 ई) के चुनाव के विषय म सम्राट की राजसभा से सलाह लेने का कोई सूत्र उपलब्ध नहीं होता किन्तु अगले वर्ष उसके देहान्त के बाद रोम के सम्भ्रान्तवर्गों ने अपना अधिकार बनाए रखने का फिर प्रयास किया तथा वलेत्री के बिशप को बनेडिक्ट दशम (Benedict X) के रूप म पोप बनाया किन्तु कार्डीनलो ने उन मान्यता देना अस्वीकार कर दिया तथा राजसभा की सहमति म निकोलस द्वितीय को सियन नामक स्थान पर चुना गया। रोमन वर्गों के इस प्रयत्न ने ही निस्सन्देह निकोलस द्वितीय को अप्रैल 1959 ई म पोप के चुनावो की विधि को नियन्त्रित करने वाले प्रसिद्ध आदेश को जारी करने के लिए बाध्य किया। इसकी सबसे महत्वपूर्ण धाराए य थी—चुनावो म कार्डीनल बिशपो एव अन्य कार्डीनलों को प्राथमिक स्थान प्रदान करना आवश्यकता पडने पर रोम से बाहर पोप के चुनाव करने की स्वीकृति देना जो तुरन्त रोम म अभिषिक्त न किया जाने पर भी सम्पूर्ण पोप के अधिकार क्षेत्र की सत्ता को उपयोग कर सकता और अन्तत हेनरी एव उसके उत्तराधिकारियो के चुनाव से सम्बन्ध की स्वीकृति देना। शब्दावली अस्पष्ट होने पर भी निश्चित रूप से यह

इसकी स्वीकृति देता प्रतीत होता है कि साधारण परिस्थिति में पोप की नियुक्ति की विधि में उनका भी न्यायोचित स्थान होगा।[2]

सन्दर्भ

1 Ma s C c l a l xv A p 225
2 Lu tp and B h p f C em —D Reb C t Ott (M G H S S l)
3 D r bc Ge t Ott 21
4 C t u t Reg 6 7 (M C H)
5 Cf l p 263
6 Cf Ed t r f C nst tut o M C H ad loc
7 M C H Leg m Sc t IV C t 12
8 Cf l p 271
9 V t S Ad lb t M g P L v l 137 Ott III w at R
10 M G H Leg m Sect IV C t 26
11 Th tm Ch o 18
1 न परिस्थितियों पर पूर्ण विचार के लि तुलना क े। बेनेडिक्ट नवम एव ग्रेगो ी षष्ठ पर ब्रार ण पूल ्ारा (Procee d ngs of th British Academy) में प्रकाशित लेख।
13 A elm Ge ta Ep sc porum Leo- d n m [redacted] M G H S S l 7
14 P t r D m a L b r C t m s t L b D L t p 56
15 M G H L b De L t v l pp 12 14 D O d d Po t fice
16 H mbe t Ad rs S mo acos M G H L b D L t
17 G eg y VII R g v 2
18 Cf Bon L b D L t vol p 586 and A n R m M G H S S p 469 a d P te Dam a D pt t Sy d l M C H L b D L t p 80
19 An lm M k f Rh m H to a de d cat Ecc a S Re gl 7 M g e P L ol 14
0 Le IX V t 2 M gn P L vol 143
1 A le R m a 1054 Be th ld A al a 1054 Ann l H c n 1054
22 M C H Leg m Sect IV C n t v l 382

तृतीय अध्याय

1075 ई० तक बिशपों की नियुक्ति

इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में हमने संक्षेप में उन सिद्धान्तों का विवरण देने का प्रयत्न किया जो नवीं शताब्दी के कैरोलिन्जियन साम्राज्य में बिशपों की नियुक्ति के लिए निर्देशक सिद्धान्तों के रूप में स्वीकृत थे। जैसा कि निष्कर्ष रूप में हमने बताया इन नियुक्तियों की वैधता के लिए निम्न पूर्ति गए अनिवार्य माने जाते थीं—इसमें प्रदेश के पादरियों तथा जनता द्वारा चुनाव उसी प्रान्त के बिशपों तथा प्रमुख धर्माधिकारी के बिशपों की स्वीकृति और राजा की सम्मति सामान्यतः यह भी माना जाता था कि इनमें से किसी भी तत्त्व की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।[1] इसमें सन्देह नहीं कि उस समय व्यवहार तो प्राय कुछ अनिश्चित था किन्तु स्वीकृत सिद्धान्त स्पष्ट थे तथा उनके बारे में कोई गम्भीर विवाद नहीं था। हम अब संक्षेप में उस समय तक अर्थात् 1075 ई तक इस प्रश्न के इतिहास पर विचार करना है जबकि धर्माध्यक्ष की नियुक्तियों के सम्बन्ध में पोप एवं सामान्य के बीच महान् विवाद छिड़ गया। वास्तव में इसका अध्ययन कुछ ध्यान में करना आवश्यक है यदि हम इस महान् संघर्ष का वास्तविक स्वरूप समझना चाहें तथा उसमें प्रतिनिधित्व किए गए विभिन्न दृष्टिकोणों के साथ न्याय करना चाहें और इस महान् संघर्ष के विषय में उस दोषपूर्ण एवं अनैतिहासिक विचार से बचना चाहें जो इसे केवल धार्मिक आक्रमण अथवा राजकीय अत्याचार के रूप में प्रस्तुत करता है।

यह हमें स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस महान् संघर्ष के प्रारम्भ तक नवीं शताब्दी के साहित्य में वर्णित सिद्धान्त स्वीकार किए जाते रहे तथा कम से कम सिद्धान्त रूप में तो यह स्वीकार किया जाता रहा कि पादरियों तथा जनता द्वारा चुनाव उसी प्रान्त के बिशपों तथा प्रमुख धर्माध्यक्ष की स्वीकृति और राजा की सहमति ये सभी किसी बिशप की वैध नियुक्ति के सामान्य तत्त्व थे। इसके प्रमाणों का हम कुछ अधिक विस्तार से अध्ययन करेंगे।

हम देखते हैं कि ऐटो के एक ग्रन्थ में जो कि 945 ई में वर्सेली का बिशप (Vercelli) बना तथा जिसका देहावसान 961 ई में हुआ धर्माध्यक्षीय नियुक्तियों की

दशाओं को अत्यन्त स्पष्टतया वर्णन किया गया है। सिद्धान्तों के अनुसार पादरियों एवं जनता को जिसे वे सर्वोत्कृष्ट समझें चुनने का स्वतन्त्र एवं निर्बाध अधिकार होना चाहिए। इस प्रकार निर्वाचित व्यक्ति की प्रधान गिरजाघर के एवं उस प्रान्त के अन्य विशपों द्वारा सावधानी से परीक्षा की जानी चाहिए यदि वे उसे किसी गम्भीर दोष से ग्रस्त पायें तो उसके अभिषेक को अस्वीकार कर दें। यदि वे उसे पद के योग्य पायें तो जिस प्रदेश में वह पद स्थित है वहाँ के राजा को उचित सूचना देकर तथा उसकी स्वीकृति से अभिषेक किया जाना चाहिए।[3]

यही सिद्धान्त ओडोरेनस की जो सेंस (Sens) नामक स्थान पर विद्यमान सन्त पीटर के गिरजाघर का साधु था ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की रचना में एक स्थल पर वर्णित है जो निर्वाचन का नियम प्रतीत होता है। सेंस का गिरजाघर फ्रांस के राजा सम्प्रान्तीय विशपों महापुरुषों छोटे व बड़े पादरियों तथा दोनों लिंगों के निष्ठावानों की स्वीकृति एवं इच्छा से विशप की नियुक्ति की घोषणा करता है।[3]

इन उद्धरणों में विशप की नियुक्ति की उचित दशाओं के विषय में उस युग के सामान्य आदर्शों का विवरण प्रतीत होता है। यद्यपि यह सत्य है कि नियुक्ति के निर्धारक तत्वों में से किसी एक के महत्व की न्यूनाधिक विवादास्पद स्थापना की दशा में ही प्रायः इन प्रश्नों का विवेचन होता था यह इस विषय के विवेचन में किसी सीमा तक अव्यवस्था का कारण रहा है क्योंकि एक असावधान या अल्पज्ञ विद्यार्थी के लिए इस प्रकार के उद्धरण प्रायः अन्य तत्वों की उपेक्षा करके एक तत्व के महत्व पर अधिक बल देते हैं। अतः हम इस विषय का विवेचन सावधानी से प्रारम्भ करना चाहिए।

सर्वप्रथम हम उन कतिपय वाक्यांशों पर विचार कर सकते हैं जो पादरियों एवं जनता द्वारा चुनाव के सिद्धांत को सामान्य अथवा अनिवार्य मानने पर बल देते हैं। फ्ल्यूरी के एबट (Fleury) ऐबो की रचना शताब्दी के उत्तरार्द्ध की रचना में जिसका तीसरी पुस्तक में बहुधा उल्लेख किया गया है हम चर्च तथा राज्य में चुनावों के सिद्धान्त की अत्यन्त प्रबल परिपुष्टि मिलती है। वह कहता है कि उसे तीन सामान्य (Generals) सिद्धान्तों का ज्ञान है राजा अथवा सम्राट का सम्पूर्ण साम्राज्य की स्वीकृति से विशप का नागरिकों एवं पादरियों की निर्विरोध सहमति से तथा मठाध्यक्ष का मठवासी साधु मण्डली के प्रबुद्धतर निर्णय द्वारा।[4]

इसी के साथ ही हम इस प्रश्न का और अधिक निश्चित उत्तर फुलबर्ट द्वारा दिया गया पाते हैं जो 1006 ई० से 1028 ई० के बीच चार्ट्रस का विशप (Chartres) था। अपने एक पत्र में उसने दृढ़तापूर्वक थियोडोसियस नामक व्यक्ति के विशप के रूप में अभिषेक में इस कारण से भाग लेना अस्वीकार किया है कि राजा को कोई अधिकार नहीं कि वह किसी व्यक्ति को किसी धर्म प्रदेश पर विशप के रूप में क्षेत्र पर इस प्रकार थोप दे कि पादरी जनता अथवा अन्य विशप स्वतन्त्र रूप से निर्णय न ले सकें। परन्तु उसके एक अन्य पत्र से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि फुलबर्ट का उद्देश्य यह निषेध करना नहीं कि विशप पद पर नियुक्ति के निर्धारण में राजा का भी समुचित स्थान है। यह पत्र किसी एविसगउडस (Avisgaudus) को लिखा गया जिसने विशप पद से त्यागपत्र दे दिया

या गया अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति के बाद पुन अपने पद पर लौटना चाहता था। फुलबर्ट कहता है कि उसे वसा करने का कोई अधिकार नही है क्याकि उसके उत्तराधिकारी की नियुक्ति पादरियो एव जनता के चुनाव राजा की सहमति तथा रोमन प्रधान पादरी की स्वीकृति से सेन्स के आर्च बिशप द्वारा हुई है जो उस क्षेत्र का प्रमुख धर्माध्यक्ष है।[6]

बाद मे ग्यारहवी शताब्दी मे हम पाते हैं कि चर्च तथा राज्य के सुधारवादियो द्वारा अत्यन्त दृढ़तापूर्वक पादरियो एव जनता द्वारा चुनाव के सिद्धान्त का समर्थन एव क्रियान्वयन किया गया। लियो नवम द्वारा राइम्स म 1049 ई म बुलाई गई परिषद् मे यह व्यवस्था प्रकाशित की गई कि पादरियो एव जनता द्वारा चुनाव के बिना कोई चर्च पर शासन करने के लिए नियुक्त नही किया जाए। उसी वर्ष उसके द्वारा मेन्ज म हुई परिषद् म दो दावेदार बेसन्सो के आर्च बिशप पद (Besancon) के लिए उपस्थित हुए एक बर्थोल्ड जो यह दावा करता था कि उसको बर्गण्डी के राजा रुडोल्फ द्वारा इस पद पर स्थापित एव प्रान्त के बिशपो द्वारा अभिषिक्त किया गया है तथा दूसरा ह्यू (Hugh) जो उसके विरोध म यह कहता था कि बर्थोल्ड का निर्वाचन अथवा स्वागत पादरियो अथवा जनता द्वारा नही हुआ अपितु उसने अपनी नियुक्ति रुपए के बल पर राजा से खरीदी है परन्तु वह स्वय जनता एव पादरियो द्वारा चुना गया है। परिषद् ने व्यवस्था के नियमो को ध्यान म रखकर यह निर्णय दिया कि क्योकि बर्थोल्ड चर्च के पुत्रो द्वारा न तो चुना गया न धर्म गुरु के रूप में उसका स्वागत किया गया अपितु सदा ही उसे अस्वीकृत किया गया है अत उसे अनिच्छुक जनता पर न तो थोपा जा सकता है न थोपा जाना चाहिए जबकि ह्यू जो कि जनता एव पादरियो द्वारा आर्चबिशप के रूप म निर्वाचित एव वाछित है तथा जिसने अनिन्दनीय रूप से इतने लम्बे समय तक अधिकार पद को धारण किया है शातिपूर्वक उसे बनाए रखे क्योकि वही सच्चा गडरिया (नेता) है जो द्वार से प्रविष्ट हुआ है तथा जो दूसरे ढग से आया है वह चोर एव लुटेरा है।[7] यह उल्लेखनीय है, कि परिषद् का निर्णय ह्यू द्वारा बर्थोल्ड पर लगाए गए धर्म विक्रय के आरोप के आधार पर जो कि सिद्ध नही किया जा सकता था न होकर इस आधार पर किया गया कि चुनाव म पादरियो तथा जनता के अधिकार की उपेक्षा की गई है। इसके अतिरिक्त यह और भी उल्लेखनीय है कि सम्राट हेनरी तृतीय भी जसा पिछले अध्याय म हम उल्लेख कर चुके हैं इस परिषद् म उपस्थित था तथा यह विशेषतया वर्णित है कि उसने इस निर्णय पर स्वीकृति दी।[8]

यदि इन वाक्याशो म हम इस सिद्धान्त पर स्पष्ट बल दिया जाता हुआ पाते हैं कि बिशप का चुनाव उस धर्म क्षेत्र के पादरियो एव जनता द्वारा किया जाना चाहिए तो हम दसवी एव ग्यारहवी शताब्दियो के साहित्य म ऐसे अनेक वाक्याश भी पा सकते हैं जिनकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि उनके अनुसार लौकिक शासक चाहे वह राजा हो अथवा सम्राट वास्तव म धर्म पद पर नियुक्ति के असीमित अधिकारो से सम्पन्न था। सत उडालरिक (St Udalric) के जीवन चरित्र म जो सम्भवत दसवी शताब्दी के आखिरी वर्षो म लिखा गया था एक स्थान पर कहा गया है कि उसने सम्राट से कहा कि

उसकी अपनी मृत्यु के बाद बिशप पद जिस पर वह आसीन था उसके भतीजे अल्लवेरो (Adalbero) को प्रदान किया जाए तथा सम्राट ने वैसा करने की प्रतिज्ञा की।[9] अब हम उन वाक्यांशों पर विचार करें जिनमें उसके जीवनी लेखक ने संत उदालरिक के उत्तराधिकारी की नियुक्ति की वास्तविक परिस्थितियों का वर्णन किया है इसके ही साथ यह देखना भी महत्वपूर्ण है कि लगभग स्वेच्छाचारी तरीके में सम्राट को यह अनियमित अनुरोध स्वीकार करता हुआ बताया गया है।

पुनः यह भी उल्लेखनीय है कि वेरोना का राथेरियस (Ratherius of Verona) जो कि राजा की तुलना में बिशपों के उच्चतर गौरव का सबल समर्थक है तथा इस बात पर बल देता है कि राजा लोग जो बिशपों द्वारा पद पर स्थापित किये जाते हैं बिशपों को अभिषिक्त नहीं कर सकते तो भी वह राजाओं द्वारा बिशपों के निर्वाचन अथवा पद स्थापना के अधिकार का वर्णन करता है।[10]

साथ ही रोडल्फस ग्लेबर अथवा दृढ़तापूर्वक धर्म विक्रय की व्यक्तिगत रूप में तथा उसके भाषण द्वारा जो उसके कथनानुसार हेनरी तृतीय ने गाल तथा जर्मनी के बिशपों को दिया था निंदा करते हुए यह स्वीकार करता हुआ प्रतीत होता है कि राजा को पवित्र पदों पर नियुक्ति का अधिकार प्राप्त है।[11]

यह स्वाभाविक ही होगा यदि कोई अविचारी व्यक्ति इन वाक्यांशों से यह निष्कर्ष निकाले कि इस युग में धर्म पदों की अधिकांश नियुक्तियाँ लौकिक शासकों द्वारा पादरियों जनता अथवा दूसरे धार्मिक अधिकारियों की इच्छाओं का ध्यान रखे बिना की जाती रही हैं तो भी वास्तव में इस प्रकार का निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए परिस्थिति के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान हमें तभी होगा जब हम यह देखेंगे कि इस प्रकार के स्पष्टतः असंगत वाक्य उस युग के कतिपय प्रसिद्धतम चर्च के अधिकारियों के लेखों में भी मिलना असम्भव नहीं।

गेबर्ट के पत्र व्यवहार में जो बाद में पोप सिल्वेस्टर द्वितीय हुआ हम ऐसे वाक्य पा सकते हैं जो चर्च के पदों पर नियुक्ति के सभी तरीके के किसी भी मत का समर्थन करने के लिए उपयोग किए जा सकते हैं। राइम्स के आर्क बिशप अल्लबेरो के नाम से आटो द्वितीय की विधवा रानी थियोफेनी को लिखे जाने वाले एक पत्र का प्रारूप प्रतीत होने वाले एक लेख में उसमें कहा गया है कि यदि कोई बिशप पद रिक्त हो तो किसी ऐसे व्यक्ति को उस पर नियुक्ति न करें जिसकी सिफारिश आर्क बिशप ने नहीं की हो तथा विशेषतया गेबर्ट को एक ऐसा पद प्रदान करें। दूसरे पत्र में जो उसी आर्क बिशप के नाम से लिखा गया है अल्लबेरो राजा द्वारा प्रदत्त बिशप पद को स्वीकार करने की अनुमति भतीजे को प्रदान करता हुआ दिखाई देता है।[13] पुनः एक अन्य पत्र में जो सम्भवतः ट्रीयर के आर्क बिशप के नाम से लिखा गया है वह वरदुन की जनता की इस बात के लिए निन्दा करता है कि उसने एक अन्य अल्लबेरो को बिशप मानना अस्वीकार कर दिया है जो सम्राट द्वारा प्रांत के बिशपों की स्वीकृति एवं सहमति से नियुक्त किया गया था।[14] आटो तृतीय के नाम से लिखे गए एक दूसरे पत्र में फिर गेबर्ट को यह कहता हुआ बतलाया गया है कि उसने कापुआ में विद्यमान संत विसेंट के मठ को किसी साधु को प्रदान कर

दिया है।[15]

यदि हम केवल इन वाक्याशा से ही निष्कर्ष निकालें तो स्वाभाविक रूप से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते कि गेबट धार्मिक पदो पर नियुक्ति को लौकिक सत्ताधारियो का अधिकार मानता था तथा अधिक स अधिक उसमे सम्प्रान्तीय बिशपा के अधिकारा को केवल थोडा-सा महत्त्व दता था। किन्तु जब हम उसके पत्रो की गम्भीरतर परीक्षा करत हैं तो हम पात हैं कि अन्य अवसरो पर वे पूर्णतया एक भिन्न मत का प्रतिनिधित्व करत हैं। राइम्स के मठ के भिक्षुओं के नाम से फ्लूरी के साधुओ को लिखे गए एक अन्य पत्र म वह ऐस एक व्यक्ति के प्रति क्रोध एव घृणा व्यक्त करता है जो केवल राजकीय नियुक्ति के आधार पर एक मठ के लिए दावा प्रस्तुत करता है।[16] पुन 989 ई मे आर्नल्फ के राइम्स क आर्च बिशप चुने जाने की घोषणा के अभिलेख मे प्रान्त के बिशप यह कहत हुए बताए गए हैं कि वे सभी पादरियो व जनता की राय से तथा सभी राजाओ की सहमति से उसे अपना अध्यक्ष चुनत हैं।[17] उन्ही बिशपों के एक पत्र म जो स्वय गेबट के आर्नल्फ के पदच्युत किए जाने के बाद वर्जी की परिषद् द्वारा 991 ई मे राइम्स के आर्च बिशप चुन जाने की घोषणा करता है जनता द्वारा निर्वाचन की आवश्यकता के यथार्थ स्वरूप के बारे म एक मनोरजक वाद विवाद है। वे कहत हैं कि आर्नल्फ को उनके द्वारा जनता की माँग के प्रभाव म चुना गया था क्योंकि जसा धर्म-ग्रन्थ कहत हैं जनता की आवाज ईश्वर की आवाज है तथा शास्त्रानुसार बिशप के चयन मे पादरियो एव जनता की इच्छा एव अभिलाषा से चुनाव किया जाना आवश्यक है। वे कहत हैं कि व नही समझत थे यह बात सदा सच नही होती कि जनता की आवाज ईश्वर की आवाज है और इसीलिए सभी पादरियो एव जनता की आवाज को बिशप के चुनाव के लिए आवश्यक मानने के बजाय केवल उन्ही की राय आवश्यक है जो कि सरल चित्त एव अदूषित हो। वे धर्मपिताओ को यह कहत हुए उद्धत करत हैं कि बिशप का चुनाव अनियन्त्रित भीड द्वारा न किया जाए किन्तु वह बिशपो के ही द्वारा हो ताकि जिसका अभिषेक किया जा रहा है उसकी वे परीक्षा कर सकें। अत वे राइम्स प्रात के बिशप राजाओ ह्यू तथा राबट की सम्मति और स्वीकृति से तथा जनता एव पादरिया की सहमति से जो कि देवताओ के अपने हैं घोषणा करत हैं कि साधु गेबट को उनके द्वारा अपना आर्च बिशप चुन लिया गया है।[18]

जब हम इन सभी वाक्याशो को सम्मुख रखत हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि गेबट इससे सुपरिचित था कि बिशपो एव मठाध्यक्षा का नियुक्त लौकिक सत्ता क स्वेच्छाचारी निर्णय का विषय नही है। किन्तु इस नियुक्ति म उस धर्म-क्षेत्र की जनता के चाहे वे पादरी हो या सामान्य जनता तथा बिशपा की नियुक्ति म प्रान्त के बिशपो तथा मठाध्यक्षों की नियुक्ति के विषय म मठ के साधुओ के न्यायोचित एव वधानिक अधिकार है।

गेबट का पत्र व्यवहार इस प्रकार दसवी तथा ग्यारहवी शताब्दियो के लेखको के अवसरिक वाक्याशो की व्याख्या करत समय अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता बताने वाला एव उदाहरण हो सकता है तथा पीटर डेमियन की रचनाए इसे बहुत स्पष्ट कर देती हैं कि ग्यारहवी शताब्दी के तीसरे चतुर्थांश म सुधारवादी दल का सबसे प्रसिद्ध

प्रतिनिधि भी उन तत्वों की जटिलता को स्वीकार करता था जो एक न्यायसंगत तथा सुव्यवस्थित धार्मिक नियुक्ति के लिए आवश्यक हैं। इस समय चर्च धर्म विक्रय के अपराधों को दृढ़ता से दंड देने के लिए सजग था। इस प्रश्न पर हम कुछ समय बाद विस्तार से विचार करेंगे और चर्च के सुधारक सदस्य जैसे पीटर डेमियन इस दोष की निरन्तर निंदा करते रहते थे तथा इसके दमन के लिए कठोरतम उपायों के प्रयोग करने का प्रतिपादन करते थे किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि वे लौकिक सत्ताधारियों द्वारा धार्मिक पदों पर नियुक्ति में योगदान के औचित्य को अस्वीकार अथवा उस पर सन्देह करते हों।

उदाहरणार्थ पीटर डेमियन के एक लघुतर प्रबन्ध में अत्यन्त दृढ़तापूर्वक मनुष्यों को राजकीय पदों के प्रशासन में की गई सेवाओं के लिए बिशप के कार्यालय के अन्तर्गत शाही या राजकीय गिरजों के छोटे पादरी के रूप में नियुक्ति करने की प्रथा पर आक्रमण किया गया है तथा राजकुमारों एवं अन्य सभी से जिनको धार्मिक पदों पर नियुक्ति का अधिकार है अनुरोध किया गया है कि उनका यह कर्त्तव्य है कि वे यह याद रखें कि उनको अपने अधिकारों का प्रयोग स्वेच्छाचारी अथवा अस्थिर ढंग से नहीं करना चाहिए।[19] वह उनको अधिकारों के दुरुपयोग के विरुद्ध चेतावनी देता है किन्तु वह यह नहीं कहता कि उनका अधिकार न्यायोचित नहीं। दूसरे स्थानों पर फाएन्जा के (Faenza) पादरियों एवं जनता को लिखे एक पत्र में वह बहुत स्पष्टतया उनके बिशप को चुनने के अधिकार की तथा उसकी नियुक्ति में पोप के भी भाग को स्वीकार करता है किन्तु वह उनकी इसके लिए प्रशंसा करता है कि उनके द्वारा राजा के आने तक चुनाव नहीं करने का निश्चय किया गया था।[20] परमा के कडेलूअस (Cadelous of Perma) को लिखे गए एक पत्र में जो कि एलक्जेण्डर द्वितीय के विरुद्ध 1061 ई० में जर्मन और लोम्बार्ड बिशपों की एक धर्मसभा द्वारा होनोरियस द्वितीय (Honorius II) के रूप में पोप पद के लिए चुना गया था पीटर कुछ सीमा तक अनियन्त्रित शब्दों में रोमन चर्च की इच्छा के बिना रोमन धर्माधिकार को पाने के प्रयत्नों के लिए उसकी धृष्टता की निन्दा करता है। यदि सेनेट छोटे पादरियों तथा जनता को छोड़ दे तो भी उसे कम से कम कार्डीनल बिशपों का स्थान तो स्वीकार करना ही चाहिए जो कि पोप के निर्वाचन में प्रमुख स्थान रखते थे। धर्मवैधानिक सत्ता का यह आदेश था कि छोटे से गिरजाघर का पादरी भी इसका निर्णय स्वतन्त्र रूप से कर सके कि उससे ऊपर के पद पर किसे नियुक्त किया जाए। वह पोप पद के उचित निर्वाचन के प्रमुख तत्वों का संक्षिप्त विवेचन भी करता है। वह कहता है कि कार्डीनल बिशपों का प्रथम स्थान है उसके बाद सामान्य रूप से पादरियों और तीसरे स्थान पर जनता की स्वीकृति आती है। अन्त में इस पर तबतक प्रतीक्षा की जाएगी जबतक कि राजकीय सत्ता की राय न ले ली जाय यदि जैसा कि एलक्जेण्डर द्वितीय के चुनाव में हुआ था परिस्थितियाँ ऐसी न हों कि प्रतीक्षा करना खतरनाक हो।[21] इस पत्र के शब्द पोप के चुनाव के सम्बन्ध में पोप निकोलस द्वितीय के नए विधानों की ओर उन्मुख करते प्रतीत होते हैं तथा उनको हम इस तथ्य के उदाहरण के रूप में उद्धृत करते हैं कि पीटर डेमियन बिशप पद के निर्वाचनों में पादरियों

एव जनता दोना के अधिकारो तथा राजा और सम्राट के सम्मति देने के अधिकारो को भी स्वीकार करता था।

सम्भवत इस युग के धार्मिक पदो पर नियुक्तियो के सिद्धाता का सवश्रेष्ठ उदाहरण चुनावो क उन कतिपय विवरणा मे उपलब्ध होगा जो कि सुरक्षित रखे गए हैं। सबसे पहला जिस पर हम ध्यान देंगे वह सत उल्लारिक के जीवन चरित्र म सुरक्षित है जिसका हम पहले ही उल्लेख कर आय है। उससे हम पता चलता है कि उसकी मृत्यु के बाद उस बिशप धम प्रदेश म सम्राट को प्रतिनिधि भेज गए जो बिशप के धम दण्ड को अपने साथ लकर गए। कोई काउट बर्खार्ट (Burchardt) उनको रोकने म सफल हो गया तथा उसन उनको यह कहकर समझाया कि सम्राट न निश्चय किया है कि उसका पुत्र बिशप बन। प्रतिनिधि इस बात से परिचित बताए गए है कि उसे चुनना अथवा न चुनना उनके अधिकार म है अत मे उन्होने वमा ही किया तथा अपन चुनाव निणय पर सम्राट की पुष्टि कराने के लिए राजसभा को रवाना हो गए।[2]

सत पीटर के मठ के उत्तराधिकार की परिस्थितियो क वणन से जो चार्ल्स के फुनवट क द्वारा दिया गया है इसकी तुलना की जा सकती है। जब यह मठाधीश मरणासन्न था मेगनाड नामक व्यक्ति चाटम क सामन्त थियाबाल्ड क पास मठाधीश पद पर नियुक्ति के लिए गया। काउट ने उस पुन साधुओ क पास भेज दिया और यह इच्छा व्यक्त की कि वे उसका मठाधीश के रूप म स्वागत करें। किन्तु उनके द्वारा प्रत्युत्तर दिया गया कि तब तक कोई मठाधीश नही हो सकता जबतक पहला मठाधीश जीवित है या वह मठ के सदस्यो द्वारा निर्वाचित नही ह। कुछ समय बाद जब मठाधीश की मृत्यु हो गई तो साधुओ न निणय किया कि वे मेगेनाड को मठाधीश बनाना नही चाहते और सामन्त के पास अपने प्रतिनिधियो को मठाधीश की मृत्यु का समाचार देने तथा नया चुनाव कराने के लिए उसकी अनुमति लेने को भेजा। साधुओ म से दो व्यक्तिगत रूप स उस सामन्त के पास चले गए तथा उन बताया कि उनक साथियो न मगनाड को चुन लिया है तथा उसने उनकी अनुरक्ति से सन्तुष्ट होकर अधिकार दण्ड उनको तुरत सौप दिया। दूसरे साधु इस पर बहुत क्रुद्ध हुए तथा उन्हान सामन्त का लिखा कि उनके द्वारा मेगेनाड निर्वाचित नही हुआ है किन्तु उसन उनका विवश किया कि वे उसको उस पद पर स्वीकार करें।[23]

केम्बराई (Cambrai) क बिशप सत लाटवट क जीवन चरित्र म हम एक अन्य चुनाव का रोचक एव विस्तृत विवरण पाते है। पद के रिक्त हाने पर उसे पादरिया एव जनता द्वारा बिशप पद के लिए चुना गया तथा वह एव कम्बराई चच के प्रतिनिधि हेनरी तृतीय की राजसभा मे पिछल बिशप की मृत्यु की और लीटबट के निर्वाचन की सूचना देने के लिय भेजे गय। हेनरी न घोषणा की कि वह लीटवट को केम्बराई का विशप चुनने म उनस सहमत है। प्रान्त क बिशपो की सहमति से फिर यह प्रस्ताव राइम्स के आर्च बिशप के पास भजा गया जो वध अधिकारत अधिधर्माध्यक्ष था तथा उसन अपनी स्वीकृति दे दी।

इन वणनो म अधिक महत्वपूण लीज क बिशप वाजो की नियुक्ति स सम्बद्ध घटनाओ का अत्यन्त विस्तृत वणन है। 1041 ई म बिशप नियाड (Nithard) की मृत्यु के बाद

अपनी अनिच्छा के बावजूद उसे निर्विरोध रूप से चुना गया था। उसने कहा कि उसका चुनाव राजा को अप्रिय होगा तथा अनुरोध किया कि वे उसकी इच्छा जानने तक प्रतीक्षा करें किन्तु उसके विरोध को अस्वीकार करते हुए उसे चुन लिया गया तथा रेटिम्बन (Ratisbon) को भेज दिया गया जहाँ उस समय हेनरी तृतीय था। वाजो के वहाँ पहुँचने पर लीज के गिरजाघर के पत्र के साथ-साथ पादरी का दण्ड भी राजा को सौंप दिया गया। दूसरे दिन राजा ने उस विषय पर राजभवन के राजकुमारों एवं बिशपों से विचार विमर्श किया। उनमें से कुछ ने यह विचार प्रकट किया कि यह चुनाव राजा की सहमति बिना हुआ है अतः अस्वीकार कर दिया जाय तथा यह भी अनुरोध किया कि बिशप का शासी गिरजे के पादरियों में से ही चुना जाय जहाँ वाजो ने कभी सेवा नहीं की थी। इन व्यक्तियों का मत स्वीकृत हो जाता यदि कोलोन का आर्चबिशप हर्मान तथा बाम्बर्ग का बिशप इनमें हस्तक्षेप नहीं करते जिनके द्वारा अन्तत हेनरी को वाजो के चुनाव को स्वीकार करने के लिये मना लिया गया।[1]

इन विवरणों में सम्भवत हम इस युग के नियुक्ति के सामान्य सिद्धांतों एवं तरीकों को पा सकते हैं। धर्म क्षेत्र अथवा मठ के पादरी एवं जनता चुनाव के अधिकार का दावा करते थे किन्तु राजा को भी अपनी स्वीकृति देनी होती थी। हम देख सकते हैं कि जिस इस अधिकारी व्यक्तियों ने चुना उस अधिकार दण्ड के साथ राजा के पास भेजा गया तथा यदि उसने उसे स्वीकार कर लिया तो उस पद पर उसे नियुक्त कर दिया गया। यदि राजा उनके चुनाव से सन्तुष्ट नहीं होता तो वह न केवल अपनी सहमति देना ही अस्वीकार करता अपितु स्वयं दूसरी नियुक्ति कर सकता था। इस प्रकार नियुक्त व्यक्ति को फिर उस प्रदेश के अधिधर्माध्यक्ष के पास भेजा जाता था क्योंकि यह अधिकार प्रतिष्ठापित था कि उससे तथा बिशपों से नवीन अधिकारी के अभिषेक के पूर्व परामर्श किया जायगा।

अन्त में यह देखना भी उचित होगा कि दसवीं एवं ग्यारहवीं शताब्दियों में अनेक अवसरों पर बिशपों के चुनाव में पोप ने भी महत्वपूर्ण भाग लिया है। पोप जान अयोदश द्वारा बवेरियन जनता एवं पादरियों से निर्वाचित होने पर साल्ज़बर्ग (Salzburg) के आर्चबिशप की नियुक्ति का वर्णन उपलब्ध होता है।[25] पोप ग्रेगोरी पंचम को आल्फ नामक व्यक्ति को आवसोने के बिशप पद पर नियुक्ति के हेतु सम्राट की आज्ञा बिशपों के निर्णय तथा उस धर्म-क्षेत्र के पादरियों एवं सम्माननीय व्यक्तियों की स्वीकृति एवं मान्यता की पुष्टि एवं उससे सहमति रखते हुए वर्णन किया गया है। बेनेडिक्ट द्वितीय पादरियों जनता और राजकुमारों द्वारा सालर्नो के आर्चबिशप के निर्वाचन को सम्पुष्ट करता है।[26] एलेक्जेण्डर द्वितीय विन्चेस्टर के बिशप द्वारा ल्यान के आर्चबिशप की नियुक्ति को औपचारिक सहमति देता है[27] तथा जैसा हम बाद में विचार करने का अवसर प्राप्त होगा हिल्डेब्राण्ड की मन्त्रणा से पोप ने यह भी माँग की कि मिलन के आर्चबिशप पद के लिये कोई भी चुनाव तबतक वैध नहीं है जबतक पोप उसकी स्वीकृति न दे।[28] धार्मिक चुनावों में पोप की स्थिति का तर्काधार वास्तव में क्या था इस पर हम यहाँ विचार नहीं कर सकते किन्तु उसके इन उदाहरणों की समीक्षा महत्वपूर्ण है।

सदर्भ

1 देव खण्ड प्रथम पृ 267 70 ।
2 Atto of V cell D Pr u s E cl astic s Mig P L ol 137 (p 87)
3 Od n us (Op ul m) v Mi g P L vol 142
4 Fulbe t f Cha tr s Ep v M g e P L ol 141
5 Abbo Abb t of Fl y Coll ct o Can n m tv M gn P L l 139
6 Id Ep x
7 Leo IX Ep 2 M P L v l 143
8 देखो पृ 4 ।
9 V ta S Udalr c x M n P L ol 135
10 R the s of Verona P l qu o m 2
11 R dolfu Gl b r H t i 6 M gn P L vol 172
12 G b t Ep lae 117
13 Id Ep 57
14 Id Ep 79
15 Id Ep 214
16 Id Ep 95
17 Id Ep 155
18 G rb rt Ep 179
19 St Pe r Dam Opus ulum 4 M g P L ol 145
20 Id Ep tles Bk v 10 M g e P L vol 144
21 St P te Dam an Ep Bk 20
22 V ta S Udalr i xvi i M gne P L l 135
23 F lbe t of Chartres Ep II M g P L vol 141
4 A selmu G t Ep coporum Leod e n 50 M G H S S v l 7
25 P pe Joh XIII Ep and D c III Ma ne P L v l 135
26 Clement II Ep v i M ne P L l 14
27 Al nd r II Ep 56 M g e P L ol 146
8 A nulf s G ta A ch p scoporum M di la ns m M G H S S m 21



चतुर्थ अध्याय

लौकिक एव धार्मिक सत्ताओ की सापेक्ष गरिमा

यह स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त कहा जा चुका है कि सम्भवत दसवी एव ग्यारहवी शताब्दियो म दो महान् सत्ताओ की सापेक्ष स्थिति को निर्धारित करने वाले कतिपय सामान्य सिद्धान्तो को प्रत्येक व्यक्ति स्वीकार करता था तथापि प्रत्येक सत्ता के यथार्थ क्षेत्र का वास्तविक परिसीमन कुछ अनिश्चित तथा अस्थिर था। लौकिक सत्ता के अपने धार्मिक दायित्व थे तथा धार्मिक सत्ता के राजनीतिक दायित्व थे जबकि अनेक धार्मिक विषयो के निर्देश एव नियत्रण म ईसाई जनता अर्थात् जनसामान्य का अनिर्धारित किन्तु वास्तविक स्थान था। इस युग की कुछ अवधारणाओ पर जो उन विचारो के अविकसित स्वरूप के उदाहरण हैं, जिन पर बाद म सघर्ष केन्द्रित हुआ तथा उन पर हुए चर्च के कुछ महान् सदस्यो के निर्णयो पर अधिक ध्यान देना उपयोगी होगा।

हम इस प्रकार के वाक्याश पा सकते हैं जो बहुत स्पष्ट रूप म लौकिक सत्ता की तुलना म आध्यात्मिक सत्ता के उच्चतर गौरव पर बल देते हैं। हम पिछले पुस्तक खण्ड म कई बार दसवीं शताब्दी के रोचक किन्तु विचित्र बिशप वरोना के राथरियस का उल्लेख कर चुके हैं। उसके लेखो म हम राजा के पद की तुलना म अपने पद एव स्थिति के उच्चतर ज्ञान के विश्वास की निश्चित अभिव्यक्ति पाते हैं। वह इटली के राजा ह्यु के प्रभाव से वरोना का बिशप बना था परन्तु उसके अभागेपन के कारण कुछ समय के लिए पाविया म बन्दी बना लिया गया था। प्रलाक्विओरियम (Praeloquiorum) नाम स प्रसिद्ध उसके ग्रन्थ म उसने निस्सकोच रूप से राजा का वर्णन करते हुए उसे बिशपों का सम्मान करने की चेतावनी दी है और उसे यह स्मरण दिलाया है कि वे उसके ऊपर नियुक्त किये गये हैं न कि वह उनके ऊपर। वह कान्सटेन्टाइन के बारे म रूफिनस की कथा तथा नाइस की परिषद् म बिशपों की उपस्थिति म उसकी विनम्रता का उद्धरण देता है।[1] वह दावा करता है कि ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी के द्वारा बिशप के बारे म विचार नहीं किया

जा सकता[2] तथा बिशप राजा से उच्चतर स्तर पर है क्योंकि राजाओं को बिशपों ने बनाया है जबकि बिशप राजा द्वारा नियुक्त नहीं होता।[3]

पुन पोप सिल्वेस्टर द्वितीय (गेवट) के नाम से प्रसिद्ध एक सन्दर्भ ग्रन्थ में बिशपों को यह स्मरण रखने का अनुरोध किया गया है कि उनकी गरिमा की तुलना किसी से भी नहीं हो सकती तथा बिशप के किरीटों की तुलना में राजाओं के मुकुट वैसे ही हैं जैसे सोने की तुलना में सीसा और राजा तथा राजकुमार पुरोहितों को सिर झुकाते हैं तथा उनकी आज्ञाओं का आदर करते हैं।[4]

इस सिद्धान्त का सबसे महत्वपूर्ण एवं प्रबल प्रतिपादन सम्भवत लीज के बिशप वाजो पर जिसका हम अनेक बार उल्लेख कर चुके हैं आरोपित शब्दों में पाएँगे। उसका जीवनी लेखक वर्णन करता है कि किस प्रकार एक अवसर पर सम्राट हेनरी तृतीय की राजसभा में उपस्थित होने पर उसने अपने लिए एक आसन की माग की क्योंकि यह उचित प्रतीत नहीं होता कि पवित्र विलेपन से अभिषिक्त व्यक्ति का समुचित सम्मान न हो। सम्राट ने कहा कि उसे भी पवित्र तेल से सिंचित होने के कारण सत्ता प्राप्त हुई है किन्तु वाजो ने उत्तर दिया कि जो यह अभिषेक उसने प्राप्त किया है वह पुरोहित के अभिषेक से बहुत भिन्न तथा हीनतर है क्योंकि वह मृत्यु की शक्ति का चिह्न है जबकि पुरोहित का अभिषेक जीवन की शक्ति का।[5]

उन दिनों में भी जबकि लौकिक सत्ता की तुलना में आध्यात्मिक सत्ता की उत्कृष्टता के दावे जैसा हम देख चुके हैं कितने प्रबल थे हमें सावधानी से यह ध्यान रखना चाहिए कि इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं कि लौकिक विषयों में भी धार्मिक व्यक्ति लौकिक सत्ता के अधीन नहीं थे। बड़े पादरी जैसे, बिशप एवं बड़े बड़े मठों के मठाधीश दसवीं शताब्दी के अन्त तक प्राय सभी के सभी सम्राट या राजा के या किसी बड़े सामन्त के जागीरदार थे तथा इस रूप में वे उनके प्रति निष्ठा रखते थे तथा उनके सामन्ती पद के प्रति सम्मान के साथ-साथ सामन्ती न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र में आते थे।

हम ऊपर वे शब्द उद्धृत कर चुके हैं जिनमें पोप सिल्वेस्टर द्वितीय के रूप में गेवट ने राजा की तुलना में बिशपों की उच्चतर गरिमा का वर्णन किया है किन्तु साथ ही यह भी ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि उसी गेवट ने जब वह बोबियो का मठाधीश था कहा है कि वह किसी समय वास्तव में स्वतन्त्र था परन्तु अब वह सम्राट का सेवक है।[6] पुन सम्राट कोनार्ड प्रथम के जीवन चरित्र में विपो ने लोम्बार्डी के बड़े सामन्तों के विरुद्ध वेलवेसॉरेस (Valvassores) के विद्रोह का वर्णन करते हुए उल्लेख किया है कि उसने लोम्बार्डी के तीन बिशपों को पकड़ लिया तथा निर्वासित कर दिया। वह कहता है कि इससे अनेक व्यक्ति क्रुद्ध हो गये कि उसने बिना विचार किये इन पुरोहितों को दण्डित किया तथा वह विशेषतया कोनार्ड के पुत्र हेनरी का (जो बाद में हेनरी तृतीय हुआ) उल्लेख करता है जो अपने पिता के कार्य से बहुत नाराज था। यदि न्यायिक निर्णय द्वारा अपराधी ठहराया जाने के बाद उनको सजा दी जाती तो उनके प्रति आदर का कोई औचित्य नहीं था किन्तु ऐसे निर्णय सुनाये जाने से पूर्व वे पुरोहितों के योग्य सम्मान के पात्र थे।[7] उचित न्यायिक तरीके को अपनाये बिना बिशपों के खिलाफ कोनार्ड की कार्यवाही की

कठोर अस्वीकृति केवल इस तथ्य को ही अत्यन्त स्पष्टतया सिद्ध करती है कि बिशप सम्राट के विरुद्ध अपराधों के लिये उचित न्यायालयों द्वारा ही दण्ड के पात्र होने थे।

इससे और अधिक बल पूर्वक नीज के वाजो के जीवन चरित्र म स्पष्ट किया गया है जिसका हम पहले अभी अभी उल्लेख कर चुके हैं। रवन्ना के आर्चबिशप वीगर पर अनेक धार्मिक अनियमितताओं के आरोप लगाये गये थ तथा उसे सम्राट के न्यायालय म बुलाया गया था और यह मामला बिशपो को सौंप दिया गया। उनमें वाजो भी सम्मिलित था किन्तु वाजो ने घोषणा की कि एक अधिकारी बिशप का निर्णय एक उससे निम्न बिशप नहीं कर सकता। अन्त म अपनी आत्मा के नाम पर जब सम्राट ने सारे मामले म उससे अपनी राय देने को कहा तो उसने उत्तर दिया कि बिशपो को निम्न पोप का आज्ञाकारी एव सम्राट के प्रति निष्ठावान होना है जिनसे लौकिक विषयो म सम्राट को जवाब देना होता है किन्तु धार्मिक विषयो म व पोप के प्रति उत्तरदायी हैं इसलिये यदि रवन्ना के आर्चबिशप ने धार्मिक व्यवस्था के विरुद्ध कोई अपराध किया है तो इसका निर्णय केवल पोप ही कर सकता है किन्तु उसने यदि सम्राट द्वारा सौंपे गये नागरिक विषयो म कोई लापरवाही या निष्ठाहीनता पूर्ण व्यवहार किया है तो निस्सन्देह सम्राट उसका निर्णय कर सकता है।[8]

अपने देश म धार्मिक सत्ता का स्वायत्तता बनाये रखने के लिए वाजो की दृढ़ता स्पष्ट है किन्तु लौकिक विषयो म बिशपो के लौकिक सत्ता के अधीन होने के विषय म भी उसका निर्णय उतना ही स्पष्ट है।

यदि हम संक्षेप म पुन पीटर डेमियन के दृष्टिकोण पर विचार करें जिसके बारे म हम अनेक बार उल्लेख कर आये हैं तो सम्भवत यह लौकिक और धार्मिक सत्ताओ के सम्बन्धो और स्वरूप के बारे म उस समय मनुष्यो की धारणा की जटिलता पर अधिक स्पष्टतापूर्वक प्रकाश डाल सकता है। जैसा कि हम कह चुके हैं वह ग्यारहवीं शताब्दी के तृतीय चतुर्थांश म चर्च की व्यवस्था और अनुशासन म सुधार लाने का सबसे अधिक उत्साही एव निश्चयी प्रतिपालक था किन्तु साम्राज्य तथा पोप पद म संघर्ष के पूर्ण रूप म छिड़ने से पहले ही उसका देहावसान हो गया।

उसके लेखो से ऐसे पृथक उद्धरण करना अत्यन्त सरल है जो यदि सन्दर्भहीन रूप से ग्रहण किये जाए तो यह इंगित करते प्रतीत होते हैं कि उन दो महान् दलो म से जिनमे यूरोप शीघ्र ही विभाजित होने वाला था किसी म भी उसको रखा जा सकता है। जैसा हम देख चुके हैं धार्मिक नियुक्तियो के तरीको म सुधार लाने के उत्साह के बावजूद उसने स्पष्टतया उनके सम्बन्ध म लौकिक सत्ता की वैध स्थिति को मान्यता दी। फानजा की जनता को लिखे गये पत्र म उसने राजा हेनरी तृतीय के आने से पूर्व अपने बिशप का चुनाव न करने के उनके निश्चय की प्रशंसा की।[9] लौकिक राजसत्ताधारियो को अपने को नियुक्ति के असीमित अधिकारो से सम्पन्न मानने की गलती के विरुद्ध चेतावनी देते हुए भी वह स्पष्टतापूर्वक उनके अधिकार स्वीकार करता प्रतीत होता है।[10] यहा तक कि पोपीय धर्म पीठ की नियुक्तियो के विषय मे भी वह पोप निकोलस द्वितीय के आदेश की व्याख्या स्पष्ट रूप से इस प्रकार करता प्रतीत होता है कि चुनाव को तबतक पूर्ण नहीं माना जा सकता जबतक कि वह राजकीय सत्ता को प्रस्तुत नहीं किया जाय।[11] उसके द्वारा किये गये हेनरी

तृतीय के उल्लेखो म जसा हम देख चुके है वह सबसे अधिक सुनिश्चित शब्दो मे धम पद का बेचने से युक्त करने के लिय हेनरी द्वारा की गई चच की सेवाओ को मान्यता देता है तथा उसकी राजा जोसिया (King Josiah) से तुलना करता है जिसने जब अपनी कानून की पुस्तक (Book of the Law) प्रवर्तित की तो पुराने राजाओ के अन्धविश्वासो नुगुप्सित मूर्तियो एव वदियो को उठाकर फेंक दिया था और कहता है कि क्योकि उसने अपने पूर्वाधिकारियो के भ्रष्ट उदाहरण का अनुकरण नही किया इसलिए दवी व्यवस्था के अनुसार रोमन चच सम्प्रति उसकी इच्छाओ क अधीन रखा गया है तथा रोम की धम पीठ के लिए किसी का भी निवाचन उसके अनुमति के बिना नही होना चाहिए।[12]

यदि हम इस प्रकार के वाक्याशो स यह अनुमान लगाना ठीक भी समझ कि पीटर डैमियन धार्मिक मामलो म लौकिक सत्ता के हस्तक्षेप को उचित मानता था तो उसके लेखो मे हम इस प्रकार के वाक्याशो को भी पा सकते है जो लौकिक की तुलना म आध्यात्मिक सत्ता की श्रेष्ठता की भावना को स्पष्टतया अभिव्यक्त करत हैं। एक स्थान पर वह पोप को राजाओ का राजा तथा सम्राटो का राजा बताता है जो गौरव और सम्मान म सभी मनुष्यो मे बढकर है।[13] यह पीटर डमियन ही है जिसने कुछ एसे शब्दो का सम्भवत सवप्रथम प्रयोग किया जो उत्तरकालीन सघष म प्राय उद्धत किये गय। उसने ईसा को सत पीटर को यह कहत हुए बताया है Beato vitae aeternae clavigero terreni simul et coelestis imperii iura और दूसरे स्थान पर उसने सत पीटर को स्वग और पृथ्वी के विधान सुपुद किये है।[14]

इन वाक्याशो का एक महत्त्वपूण इतिहास है तथा ये प्राय इस अथ मे माने गय है कि सत पीटर के उत्तराधिकारी को भी किसी रूप मे धार्मिक एव लौकिक दोनो क्षेत्रो एव सगठनो म अधिकार प्राप्त हैं।[15] पीटर डैमियन का स्वय इन शब्दो स ठीक क्या अभिप्राय था यह कहना अत्यन्त कठिन है।[16] जिस सन्दभ म ये कहे गए है वह उनकी व्याख्या पर कोई प्रकाश नहीं डालता। उसके सभी ग्रथो की परीक्षा से यह पूणतया असम्भव प्रतीत होता है कि वह लौकिक विषयो म भी लौकिक की तुलना म धार्मिक सत्ता की सर्वोच्चता की स्थापना का प्रतिपादक था किन्तु निश्चित ही वह धार्मिक सत्ता की गरिमा की महान् उत्कृष्टता को स्थापित करना चाहता था और यह सिद्धान्त मानता था कि महानतम व्यक्ति राजा और सम्राट भी पोप के धार्मिक अधिकार के अन्तगत हैं।

कम स कम एक स्थान पर उसके शब्दो म भावी सघर्षों के बारे म सूचना देने वाली भविष्यवाणी उपलब्ध होती है। हनरी चतुथ को लिखे गये एक पत्र म वह उसे रोमवासी और जमन बिशपो की परिषद् द्वारा 1061 ई म चुने गय नकली पोप पारमा के कैडेलुअस के विरुद्ध चच और असली पोप अलक्जण्डर द्वितीय का समथन करने का अनुरोध करता है और आग्रहपूवक कहता है कि यदि हेनरी न वसा नही किया तो वह दोष का भागी होगा तथा सम्राट आज्ञापालन करवाने योग्य तभी होता है जबकि वह अपने सृष्टा की आज्ञा माने वह यदि दवी आदेशो की अवहेलना करता है तो उसकी प्रजा द्वारा उसकी पदच्युति न्याय सगत हो सकती है।[17]

जबकि हम पीटर डेमियन के विचारो के विभिन्न पक्षो का विवेचन करते हैं तो यह

पूरी तरह स्पष्ट रहता है कि लौकिक और धार्मिक सत्ता के सम्बन्धों के बारे में उसका सामान्य निर्णय व्यावहारिक रूप में जिसे हमने गेलेशियन परम्परा कहा पर आधारित है अर्थात् पाँचवीं शताब्दी में पोप गलेशियस प्रथम (Pope Gelasius I) द्वारा प्रारम्भ किये गये विचार जिनके अनुसार प्रत्येक महान् सत्ता अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र है। हम समझते हैं कि रोचक तथा महत्त्वपूर्ण शब्दावली में यह उनके ग्रन्थों के अनेक वाक्यांशों में अभिव्यक्त हुई है।

हमारे द्वारा अभी अभी उल्लिखित हेनरी चतुर्थ को लिखे गये उसी पत्र में पीटर डेमियन उस घनिष्ठ सम्बन्ध का वर्णन करता है जो राजकीय और धार्मिक सत्ताओं में होना चाहिए क्योंकि प्रत्येक को दूसरे की आवश्यकता है। पुरोहितों का संरक्षण साम्राज्य द्वारा तथा साम्राज्य का पुरोहितों के पद की पवित्रता द्वारा होता है। राजा ने चर्च के शत्रुओं का सामना करने के लिए तलवार बाँधी है तथा पुरोहित अपने को प्रार्थना में लीन करता है ताकि वह राजा और जनता के पक्ष में ईश्वर को प्रसन्न कर सके।[18] वह एक अन्य स्थान पर इन दो शक्तियों के बीच कार्यों का सावधानी से भेद करता है। पुरोहित का कार्य करुणा से पूर्ण और बच्चों के प्रति मातृवत् वात्सल्य से भरा है। न्यायाधीश का कार्य क्रूर व्यक्तियों को दण्ड देना तथा उनके हाथों से निरपराधों की रक्षा करना है उसे देवदूतों (Apostles) के इन शब्दों को सदैव स्मरण रखना चाहिए, क्या तुम्हें सत्ता का कोई भय नहीं ? वही करो जो उचित हो तुम्हें उसी की प्रशंसा मिलेगी। क्योंकि वह भलाई के लिए ही ईश्वर का प्रतिनिधि है। किन्तु यदि तुम वह करते हो जो बुराई है तो भयभीत रहो क्योंकि वह व्यर्थ ही तलवार धारण नहीं करता। राजा की तलवार और पुरोहित के दण्ड (Infula) में बहुत अन्तर है।[19]

एक अन्य स्थान पर वह कुछ भिन्न वाक्यों द्वारा इस मत को व्यक्त करता है। न्यायाधीशों का न्यायालय निश्चित रूप से पुरोहित के धर्मपीठ से भिन्न है। न्यायाधीश इसलिए तलवार धारण करता है कि वह उनको दण्ड दे सके जो अधर्मपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं पुरोहित निरपराधिता के दण्ड से सन्तुष्ट रहता है जिससे वह एक मौन तथा शांतिपरक अनुशासन बनाये रख सके। एक अन्य स्थल पर वह उसी सिद्धान्त का उल्लेख दो तलवारों की शब्दावली से करता है तथा वह उस दशा के सुख का वर्णन करता है जहाँ साम्राज्य की तलवार पुरोहित की तलवार का साथ देती है जब पुरोहित की तलवार राजा की तलवार पर पानी चढ़ाती है और राजा की तलवार पुरोहित की तलवार को तेज करती है क्योंकि ये दोनों तलवारें वही हैं जिनका ईश्वरीय उत्पीड़न (Lord's Passion) के समय वर्णन किया गया है। वास्तव में तभी साम्राज्य एवं चर्च का उत्थान एवं समादर होगा जब इन दोनों तलवारों का सुन्दर सामंजस्य हो।[20]

ये दोनों तलवारें ईश्वरीय हैं। दोनों दिव्य अधिकारों की प्रतिनिधि हैं दोनों का एक दूसरे से निकटतम समन्वय होना चाहिए। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि पीटर डेमियन उनको एक दूसरे से पूर्णतया स्वतन्त्र एवं विभिन्न बताता है तथा वह किसी प्रकार भी यह संकेत नहीं देता जैसा बाद में प्रतीत होने लगा कि दोनों तलवारें धार्मिक सत्ता के अधिकार में हैं।[21]

सन्दर्भ

1 Ratherius Praeloq roum 1 4 Maigne P L., vol 136
2. Id id., 9
3 Id id iv 2.
4 Sylvest II., De Informat on Ep scoporum
5 Anselm Gesta Episcop Leod ., 66 M G H S S., vol 7
6 Gerbert, 'Ep: tolae 1
7 W'ppo 'V ta Chuon ad (p 1245)
8 Anselm G ta Ep sc Leod 58 M G H S S vol 7
9 देखा पृ 25।
10 देखा पृ 25
11 देखा पृ 25
12. देखा पृ 14।
13 Peter Dam an Opusc ., xx 1
14 Id Opusc., -9 The phrase is also in Peter Damian s 'D sceptat o Synodalis M G H., Lib De Lite vol p 78
15 Id., Opusc v 9 The phrase is also n P ter Damian s D sceptat o Synodal M G H Lib De Lite ol । p 78
16 Cf I pp 206–209
17 Id Ep 3 ol 144 col 441
18 Cf vol ., pp 190–193
19 Id Ep v 3 p 440
20 Id., Sermo ix x.
21 Cf vol II p 208

द्वितीय भाग

अधिष्ठापन विवाद

प्रथम अध्याय

धर्म-विक्रय

हम ग्यारहवीं शताब्दी तथा बारहवीं के प्रथम सत्तर वर्षों में लौकिक तथा धार्मिक अधिकारियों के सम्बन्धों के विवेचन का प्रयास कर चुके हैं, तथा हमारे विचार में यदि कोई विषय के इतिहास का तटस्थ परीक्षा करे तो उसे यह स्पष्ट हो जायगा कि यद्यपि इन सम्बन्धों में कभी-कभी कठिनाइयाँ आ जाती थीं तथा वे अनेक प्रकार से असन्तोषजनक थे तो भी समग्र रूप से यह कल्पना सत्य हो है कि वे सम्बन्ध मित्रता एवं सहानुभूति से युक्त थे। इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता कि सम्राटों अथवा राजाओं में चर्च की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करने की अथवा पोप या बिशपों की नवीं एवं दसवीं शताब्दियों में परम्पराओं से स्वीकृत से अधिक राजनैतिक सत्ता को प्राप्त करने की कोई निश्चित अभिलाषा थी। हम यह भलीभाँति कह सकते हैं कि अब तक दोनों सत्ताएँ यूरोपीय सभ्यता की उन्नति के लिए साथ-साथ प्रयत्नशील थीं यद्यपि यदाकदा उनमें मतभेद भी होता था लेकिन समग्र रूप से उनमें सामञ्जस्य था तथा जहाँ तक प्रत्येक सत्ता के सर्वोत्कृष्ट प्रतिनिधियों का प्रश्न है उनमें एक बड़ी मात्रा तक पारस्परिक सौमनस्य भी था।

हमें इस युग के इतिहास का अध्ययन करना है जिसमें ये सब परिवर्तित हो गये तथा प्राचीन काल की शान्ति एवं सहयोग उग्र संघर्ष एवं पारस्परिक वैमनस्य में बदल गया। हमें उस त्रुटि के प्रति सावधान रहना चाहिए जो एक असावधान अध्ययन से हो सकती है। दोनों सत्ताओं का संघर्ष हिल्डब्रांड से लेकर इनोसेण्ट तृतीय तक निरन्तर बना रहा। इस समय के बाद कुछ वर्षों तक पोप एवं राजा के सम्बन्ध मित्रतापूर्ण रहे। यद्यपि यह प्रतिपादन किया जा सकता है कि यह एक असाधारणता थी साधारण रूप से इस समय से ही उनके सम्बन्ध विरोध भरे थे तथा परस्पर विरोधी दावों का कोई हल नहीं मिला था तथा वे शान्ति के मध्यान्तर एक महान् युद्ध के बीच उन वास्तविक युद्ध विराम के समय की भाँति होते थे। इस मत पर जब तक कि हम अपनी सामग्री का विस्तृत

परीक्षा न कर लें निश्चित निर्णय देना अकालिक होगा। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि यही विषय है जिसका हम परीक्षण करते हैं तथा यदि हम इसमें सफलता को प्राप्त करें तो हम अपने पूर्वाग्रह को यदि व कोई हो तो त्याग देना होगा।

प्रथम दृष्टिकोण जिसके अन्तर्गत हमें इस महान संघर्ष पर विचार करना है वह है जिसे प्रायः अधिष्ठापन (Investitur) विवाद कहा जाता है अथवा उच्च धार्मिक [illegible] एवं [illegible] धार्मिक पदों पर नियुक्ति के विषय में लौकिक सत्ता के स्थान का प्रश्न यह मुख्य है। पूर्ण निश्चितता के साथ इन सब परिस्थितियों का वर्णन अब भी कठिन है जिसके कारण ग्यारहवीं शताब्दी के तृतीय चतुर्थांश में यह प्रश्न [illegible] और से एकाएक इतना महत्वपूर्ण बन गया। किन्तु अब कम से कम कुछ तथ्यों तथा उसकी पृष्ठभूमि में विद्यमान मतों एवं भावनाओं की धाराओं का अन्वेषण एवं पहचान सम्भव है।

यह हमें स्पष्ट प्रतीत होता है कि चर्च के अन्य आन्दोलनों की भाँति यह संघर्ष भी एक महान आध्यात्मिक पुनर्जागरण से उत्पन्न हुआ। चर्च सम्बन्धी इस विवाद की ध्वनि के पीछे धार्मिक पुनर्जागरण का दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जिसका केन्द्र क्लूनी का मठ (Cluny) था सम्पूर्ण एवं दूरगामी प्रभाव विद्यमान था। वास्तव में यह नहीं था कि लौकिक सत्ताधारी किसी भी रूप में इस सुधार के विरोधी हों। इसके विपरीत यह स्पष्ट है कि सम्राट एवं [illegible] इसके [illegible] थे। [illegible] के समर्थकों में से कुछ [illegible] सर्वाधिक उत्साहपूर्ण समर्थक [illegible] थे। यह भी सत्य है कि इस आन्दोलन से अन्ततोगत्वा ऐसे प्रश्नों का उदय हुआ जो विवादास्पद एवं कठिनाई से सुलझने वाले थे।

वे दो प्रश्न जिनके कारण क्लूनी के सुधारक आन्दोलन ने अन्त में धार्मिक एवं लौकिक सत्ताओं का पारस्परिक सम्बन्ध [illegible] कर दिया, प्रथम तो धर्म विक्रय (Simony) का प्रश्न था तथा दूसरा राजनैतिक मामलों में [illegible] का स्थान था। वास्तव में यह सत्य है कि कुछ [illegible] [illegible] [illegible] सुधारवादी पक्ष एवं [illegible] का धार्मिक पदों की नियुक्ति के सम्बन्ध में [illegible] के विरुद्ध में [illegible] का [illegible] एक व्यक्ति पाये हैं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] बचना [illegible] समय था। [illegible] तथा दूसरे [illegible] के राजनैतिक [illegible] में बड़े [illegible] का स्थान का प्रश्न सम्भवतः और अधिक कठिन था। [illegible] एवं [illegible] स्थानीय एवं विशिष्ट हितों में भिन्न राष्ट्रीय एवं [illegible] हितों के [illegible] थे। सामन्तवाद ने [illegible] सिद्धान्त के विकास ने [illegible] राजनीतिक सम्बन्ध [illegible] को भिन्न भिन्न कर दिया था। बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दियों में जाकर कहीं [illegible] के [illegible] व्यवस्था का निर्माण किया जा [illegible] शक्तिशाली था कि सामन्तवाद की [illegible] [illegible] न [illegible] सके। [illegible] एवं ग्यारहवीं शताब्दी के [illegible] एवं [illegible] तथा [illegible] एवं [illegible] के [illegible] उन प्रमुख तत्वों का प्रतिनिधित्व करते थे जिन पर राजा और सम्राट शासन की व्यवस्था का निर्माण कर सकते थे [illegible] यह एक [illegible] भावना [illegible] था कि वे इस प्रकार के [illegible] व्यक्ति हों जिनकी [illegible] निष्ठा पर वे

(राजा और सम्राट) निर्भर रह सकें। अतः इसका सबसे अधिक महत्व था कि लौकिक सत्ता को धार्मिक पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त हो तथा यह स्वाभाविक था कि वे सामान्यतया इसके लिए सर्वाधिक योग्य व्यक्ति उनमें से ही पाएं जो राजकीय गिरजाघरों में इसके लिए प्रशिक्षण पा चुके हों। यह भी लगभग अनिवार्य था कि अन्ततोगत्वा सुधारवादी दल का राजनीतिक सत्ता से इसी प्रश्न पर संघर्ष छिड़ता क्योंकि धार्मिक सुधार के लिए यह सबसे अधिक अनिवार्य था कि बिशप एवं ऐबट धार्मिक सिद्धांतों से नियन्त्रित होने वाले तथा चर्च के हितों के प्रति निष्ठावान व्यक्ति हों। हेनरी तृतीय अथवा विजेता विलियम जैसे धर्मनिष्ठ एवं बुद्धिमान शासक इस तथ्य को समझ सकते थे किन्तु क्षुद्र व्यक्ति जो अधिक स्वनिष्ठ तथा अदूरदर्शी थे वैसा नहीं करते थे।

यहां हम मध्ययुगीन चर्च की धर्म विक्रय सम्बन्धी प्रथाओं के विकास के सम्पूर्ण इतिहास का अध्ययन नहीं कर सकते अस्तु हम ग्यारहवीं शताब्दी के साहित्य में उपलब्ध परिस्थितियों के संक्षिप्त विवरण से ही सन्तुष्ट रहना होगा। रोडोल्फस ग्लेबर सामान्य रूप से कुछ काल में विद्यमान इन परिस्थितियों का एक सारगर्भित विवरण प्रस्तुत करता है। वह कहता है कि जिन राजाओं को यह ध्यानपूर्वक देखना चाहिए कि चर्च के प्रशासन के लिए योग्य व्यक्ति नियुक्त किए जाएं वे प्राय उन्हीं को सर्वाधिक योग्य मानते हैं जिनसे वे सबसे अधिक भेंट पाते हैं।[1] दूसरे स्थान पर वह जर्मनी तथा गाल के बिशपों को सम्राट हेनरी तृतीय द्वारा इसी विषय पर दिए गए एक भाषण का विवरण प्रस्तुत करते हुए सम्राट को यह कहता हुआ बताता है कि वह धर्म विक्रय की सीमा से सुपरिचित था तथा उसने यह स्वीकार किया कि उसके पिता (सम्राट कोनार्ड सलिक) इस विषय में बड़ी सीमा तक दोषी थे। वह बताता है कि सम्राट हेनेरी ने यह प्रस्ताव किया कि सारे साम्राज्य में घोषणा की जाय कि कोई भी पादरी पद या धार्मिक अधिकार मूल्य देकर प्राप्त न हो और यदि कोई मूल्य देने या लेने का दुस्साहस करे तो उसे पद से मुक्त कर दिया जाय तथा वह अभिशप्त हो। यहीं तक उसका स्वयं का प्रश्न था उसने प्रतिज्ञा की कि ईश्वर ने उसे मुक्त रूप से साम्राज्यिक किरीट प्रदान किया है तथा वह भी मुक्त रूप से धर्म सम्बन्धी प्रत्येक वस्तु को प्रदान करने के लिए प्रस्तुत है।[2]

सिल्वा कैंडिडा का कार्डीनल हम्बर्ट सुधारवादी सम्प्रदाय के उन उत्तरी पादरियों में से एक था जिन्हें टूल का ब्रूनो जब वह 1048 ई॰ में लियो नवम के रूप में पोप बना अपने साथ इटली लाया था। एक स्थान पर वह कहता है कि ओथोस (Othos) से लेकर हेनरी तृतीय के काल तक धर्म विक्रय का दोष जर्मनी गाल एवं इटली में फैल गया है। हेनरी तृतीय ने उसे दूर करने के लिए वास्तव में कुछ प्रयत्न किया और उसे पूर्णतया समाप्त करने की अभिलाषा की किन्तु उसकी अकालमृत्यु ने इस प्रयास को विच्छिन्न कर दिया। हम्बर्ट विशेष कटुतापूर्वक फ्रांस के समकालीन राजा हेनरी प्रथम की निन्दा करता है जिसने अब तक इस दुर्गुण को आश्रय दिया था।[3] एक अन्य स्थान पर वह कहता है कि उच्चतम से लेकर निम्नतम तक प्रत्येक व्यक्ति धार्मिक वस्तुओं के व्यवसाय में लगा है सम्राट राजा सामन्त तथा अन्य लौकिक सत्ताधारी जिन्हें चर्च की रक्षा करना चाहिए अपने यथार्थ कार्य को त्याग चुके हैं ताकि वे चर्च की सम्पत्ति हथिया

सकें।[4] धर्म विक्रय वास्तव में आदि प्रचारकों के काल में ही प्रारम्भ हो चुका था किन्तु उत्पीडन के युग में यह कुप्रथा लुप्त हो गई थी। परन्तु चर्च में शांति की पुनर्स्थापना के पश्चात् तथा धार्मिक सत्ता के समक्ष सम्राट के समर्पण के युग में यह प्रथा पुनर्जीवित हुई क्योंकि चर्च के वैभव ने मनुष्यों के लोभ को दीप्त किया।[5] उसके वर्णन के अनुसार मामला यहाँ तक बढ़ चुका था तथा इतना खुला एवं निर्लज्ज था कि कोई भी जो चर्च या राज्य में अधिकार पद पाना चाहता उसे शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करनी होती थी कि वह धर्म पद विक्रयी मनुष्यों के कृत्रिम रूप से धारण किए गए अधिकारों को बनाए रखेगा। सम्राट को स्वयं शपथ लेनी पड़ती थी कि अपने पवित्र पूर्ववर्तियों द्वारा धर्म विक्रय के विरुद्ध बनाए गए नियमों का पालन तो दूर रहा वह उनको अवैध घोषित कर देगा।[6] वह कहता है कि उसे इस घटना का ज्ञान था जबकि प्रतिष्ठा किए मूल्य को चुकाने के लिए पापी धर्म-पद क्रेता चर्च के बहुमूल्य संगमरमर को और यहाँ तक कि अपनी छत की खपरेलों तक को उखाड़ने के लिए विवश हो गया था।[7] दूसरे स्थान पर वह दयनीय शब्दों में इस कुप्रथा के कारण विशेषतया इटली के चर्चों एवं मठों के विध्वंस एवं उनके उजड़ने का वर्णन करता है।[8]

हर्सफेल्ड के लेम्बर्ट (Lambert of Hersfeld) के विवरण के अनुसार ब्रेमेन के प्राच बिशप तथा काउन्ट वर्नर ने जबकि वे हेनरी चतुर्थ के अवयस्कता के काल में शासन का नियन्त्रण करते थे सभी धार्मिक एवं लौकिक पदों को विशेषतः मठाधीशों के पदों को बेचा था।[9]

हम वास्तव में ऐसे विवरणों को अक्षरशः स्वीकार नहीं करना चाहिए। हम चर्च की दशाओं के लिए गए इन विवरणों में किसी सीमा तक अतिशयोक्ति की मात्रा को स्वीकार करने के लिए तैयार रहना चाहिए किन्तु इसमें सन्देह का कोई अवसर नहीं है कि ये तात्त्विक रूप से सत्य हैं तथा चर्च की व्यवस्था में और कोई ऐसा प्रश्न नहीं था जिस पर सुधारवादियों ने ध्यान देना अधिक आवश्यक समझा हो। हम सुधी में पोप की पदच्युति के इतिहास का वर्णन कर चुके हैं तथा यह देख चुके हैं कि प्रमुख सुधारकों में से अधिकांश ने इस विषय में तथा धर्म विक्रय के सम्पूर्ण विषयों में हेनरी तृतीय के कार्यों के प्रति आभार व्यक्त किया है।[10]

हमारे पास पोप लियो नवम द्वारा फ्रांस में धर्म विक्रय को दबाने के लिए की गई कार्यवाही का विवरण उपलब्ध है। उसने 1049 ई० में राइम्स नामक स्थान पर बिशपों एवं मठाधीशों की एक सभा बुलाई तथा उसमें फ्रांसीसी सम्राट को भी उपस्थित रहने का निमन्त्रण दिया। उसके दरबारियों ने उसे सम्मति दी कि यह साम्राज्य के सम्मान की दृष्टि से बहुत संकटपूर्ण होगा यदि वह फ्रांस में परिषद् के बुलाए जाने में पोप का समर्थन करे और इसकी स्वीकृति उसके पूर्वजों द्वारा भी नहीं दी गई थी साथ ही उसे यह भी राय दी कि उस साम्राज्य के अशान्त भागों पर आक्रमण के समय अपना साथ देने के लिए बिशपों एवं एबटों को बुला लेना चाहिए ताकि वे परिषद् में भाग न ले सकें।[11] तदनुसार राजा ने पोप को उत्तर दिया कि वह तथा उसके बिशप इस परिषद् में उपस्थित नहीं हो सकेंगे तथा उससे प्रार्थना की कि वह अपनी फ्रांस की यात्रा को स्थगित कर दे। लियो

नवम ने उत्तर दिया कि वह ऐसा नहीं कर सकता तथा जो भी उपस्थित हो सकते हैं उनको लेकर परिषद् अवश्य बुलायेगा। जब परिषद् की बैठक हुई तो अनेक बिशपों एवं एबटों को विभिन्न अपराधों विशेषतः धर्म विक्रय के कारण पदच्युत किया गया तथा राइम्स के आर्च बिशप को बाद में रोम में होने वाली परिषद् में उपस्थित होने की आज्ञा दी गई जहाँ वह अपने ऊपर लगाए गए धर्म विक्रय के आरोप से अपने को मुक्त कर सके।[12] परिषद् ने एक आदेश जारी किया तथा यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि कोई भी बिशप के पद पर पादरियों तथा जनता द्वारा निर्वाचन के बिना नियुक्त नहीं किया जाय कोई भी पुरोहितामिषेक अथवा धार्मिक पदों को न तो बेचे न खरीदे तथा यदि किसी ने उनको खरीद कर प्राप्त किया है तो वे उसे बिशपों को सौंप दें। आदेश में यह भी व्यवस्था थी कि कोई भी जनसाधारण पादरी की वृत्ति अंगीकार नहीं कर सकता किसी भी पादरी को शस्त्र धारण नहीं करने चाहिए न कोई लौकिक पद धारण करना चाहिए।[13] वाइबर्ट जो टून का आर्चडिकन था द्वारा लिखे गए पोप लियो नवम के जीवन में हम पोप द्वारा इटली में तथा अन्यत्र धर्म विक्रय के प्रतिरोध के लिए उठाये गए प्रबल उपायों का और विवरण उपलब्ध होता है तथा वह वर्णन करता है कि किस प्रकार उसने आर्चबिशपों एवं बिशपों को जो इसके अपराधी थे पदच्युत कर दिया।[14]

पोप लियो नवम के ये कठोर उपाय चर्च के सुधारवादी दल द्वारा संशोधित पोप पद के नेतृत्व में धार्मिक पदों के क्रय विक्रय के दमन के लिए किए गए सकल्पित प्रयत्न की दिशा में पहले कदम थे। वास्तव में कुछ सुधारवादियों का दृष्टिकोण इतना कठोर था कि अन्ततोगत्वा उसने उनमें परस्पर ही एक उग्र विवाद को जन्म दिया। कार्डिनल हम्बर्ट जैसे कुछ लोगों का विचार था कि धर्म पद क्रय द्वारा प्राप्त अभिषेक अथवा पदारोहण अवैध है[15] जबकि पीटर डेमियन जैसे अन्य व्यक्ति उनको वैध मानते थे[16] तथा यह कहते थे कि जो वास्तव में अपराधी हैं उनको पदच्युत करना चाहिए तथा जो अज्ञानवश ऐसे लोगों से धार्मिक आदेश प्राप्त कर चुके हैं उनको अपना पद धारण करने देना चाहिए।[17] हमारा कार्य इस मतभेद में उठाये गए प्रश्नों के महत्त्व का विवेचन करना नहीं है हम केवल यही देखना चाहते हैं कि यह बुराई कितनी फैली हुई थी तथा उसके उन्मूलन के लिए ग्यारहवीं शताब्दी के सुधारकों ने कितने प्रबल सकल्पपूर्वक प्रयत्न किए।

हमारे प्रयोजन से धर्म-पद विक्रय का प्रश्न मुख्यतः उन परिस्थितियों से सम्बन्ध रखने के कारण महत्त्वपूर्ण है जिन्होंने धार्मिक एवं लौकिक सत्ताओं के बीच महान् संघर्ष को जन्म दिया। जैसा हम देख चुके हैं हेनरी तृतीय की 1056 ई० में मृत्यु होने तक चर्च के सुधारवादियों ने अपने धर्म विक्रय विरोध के प्रयत्नों में लौकिक सत्ता का स्पष्टतया वास्तविक उत्साहपूर्ण समर्थन मिला। इस समस्या की पृष्ठभूमि में कुछ अन्य समस्याएं भी थीं जिनका समाधान जैसा कि हम कह चुके हैं अधिक कठिन था। यह उल्लेखनीय है कि पीटर डेमियन इस विषय में बहुत स्पष्ट है कि चर्च को वास्तविक धर्म पद विक्रय से जितनी हानि हुई उतनी ही राज्य के प्रशासकीय पदों पर की गई सेवाओं के लिए उनको बिशप पदों एवं मठों में पदोन्नति से हुई है। पोप अलेक्जेण्डर द्वितीय को लिखे गए एक पत्र में पीटर डेमियन उससे अनुरोध करता है कि किसी भी व्यक्ति को बिशप न बनने दिया जाय

या पद पर न रहने दिया जाय जिसने इसे मूल्य देकर या इससे भी अधिक निन्दनीय राजकीय सेवा के द्वारा प्राप्त किया हो।[18] एक ग्रन्थ म जो वास्तव म दरबारी पादरियो के विरुद्ध लिखा गया है वह कहता है कि उसे कोई भी चीज इतनी असह्य नहीं प्रतीत होती जितनी यह कि कुछ व्यक्ति धम पद के लालच मे ऐसा व्यवहार करते हैं मानो वे उच्चपदस्थ व्यक्तियो के दास हो तथा यह आग्रह करता है कि विशप पद को राजा की दरबारी सेवा से प्राप्त करना भी उतना ही धम-पद क्रय है जितना उसे धन देकर खरीदना तथा वह राजकुमारो और दूसरो को चेतावनी देता है कि जिनको चच के पदो पर नियुक्ति का अधिकार है वे इन पदो को केवल अपनी इच्छा से या प्रसाद के कारण प्रदान न करें।[19]

कार्डीनल हम्बट इसी विषय को उत्तेजक तथा भावपूर्ण शली मे वर्णन करता है। वह स्पष्टत पादरी के प्रशासकीय कार्यों की निन्दा नही करना चाहता क्योंकि वह इससे परिचित है कि कई अवसरो पर इस प्रकार का काय न केवल राज्य के लिए अपितु चच के लिए भी उपयोगी होता है किन्तु वह प्रभावपूर्ण शब्दो म उन लालची पादरियो की भीड की निन्दा करता है जो राजाओ के दरबारो मे मडराते रहते थे तथा लम्बी परिश्रमपूर्ण सेवा करते थे ताकि अन्ततोगत्वा वे कोई धार्मिक पद प्राप्त कर सकें। वे इन मनुष्यो को सबसे अधिक धम-पद क्रयी मानता था क्योंकि वे न केवल धम को वरन् अपने आप को मूल्य स्वरूप देते थे। वह शिकायत करता है कि इटली विशेषत ऐसे आदमियो से भरा हुआ था जिन्होंने चच का पद अपने धार्मिक काय के कारण नही किन्तु अपनी लौकिक सेवाओ के मूल्यस्वरूप प्राप्त किया है जो कभी-कभी लोन विनिन्दित तथा अपमानजनक प्रकृति की भी होती थी।[0]

निस्सन्देह इस प्रकार की शिकायतें और दावे एक बड़ी सीमा तक आधारपूर्ण एव न्यायसगत थे तथा यह स्पष्ट है कि उठाया गया प्रश्न बहुत कठिनाइ स भरा था। राज्य को प्रशासकीय काय के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियो की तथा ऐसे व्यक्तियो की प्रबल आवश्यकता थी जिनकी व्यक्तिगत निष्ठा पर राजा और सम्राट निभर रह सकें तथा यह देख पाना कठिन है कि धार्मिक सम्प्रदाय से बाहर अन्य क्षेत्रा में ऐसे व्यक्ति उस समय कहाँ पाए जा सकते थे।

सन्दभ

1 Rodolfus Glabe H stona n 6
2. Id d v 5
3 Card nal H mbert Ad ersus S mo- m os Lib De Lit m 7 p
4 Id d u 5 p 204
5 Ill id., 1 35 p 183
6 Id d Lib De Lite m 36 p 185
7 Ill d 1 43 p 192
8 Id id. Lib De Lite 35 p 184
9 Lambert f Hersfeld 1063
10 देखो भाग 1 अध्याय 2।
11 Anselm Monachus Reme Historia Ded cat onis 9 M gne P L. vol 142.
12. Id d 14 15 16
13 Id id 16
14 Leo IX V ta III 4 and 6

1[illegible] Cardinal Humbert, Adversus Simoniacos, Bk. [illegible], M. G. H., Lib. De Lit. I, p. 229

1[illegible] Peter Damiani, 'Liber Gratissimus' [illegible] M. G. H. Lib. De Lit. I, p. 23

17 [illegible]

18 Peter Damiani, 'Ep.', Bk. I, 13 Migne P. L., vol. 44

19 [illegible] 'Opera', xxx, Preface

20 Cardinal Humbert, Adversus Simoniacos, Bk. [illegible] M. G. H. Lib. De Lit. I, p. [illegible]34

द्वितीय अध्याय

अराजकीय "प्रतिष्ठापन" का निषेध

हमने उन परिस्थितियों अथवा स्वार्थों म स कतिपय के अध्ययन का प्रयत्न किया जिनसे साम्राज्य एव चच के बीच सघष का उदय हुआ। यह स्पष्ट है कि चच म एक महान् दोष था चच के पदो का क्रय एव विक्रय इस सीमा तक बढ गया था कि उनके लिए कठोरतम उपाय न केवल उचित वरन् अत्यन्त अनिवाय थे। यद्यपि यह स्पष्ट है कि हेनरी तृतीय क राज्यकाल म राजकीय सत्ता सुधारवादियो क पक्ष में थी एव सुधार की वृद्धि क लिए किए गए कुछ कार्यों क औचित्य पर कुछ सदेह होने पर भी समग्र रूप स सुधारवादी उसकी सच्चा अभिलाषा की स्वीकार करते थे तथा उसकी कमशक्ति क लिए आभारी थ। अब हम धार्मिक एव लौकिक सत्ता क सम्बन्धो क तीव्र परिवतनो पर विचार करना है, जो लगभग 20 वर्षों (1056 ई से 1076 ई) की अवधि म ही सौहादपूण सहयोग एव सहकारिता स उग्र विरोध म परिवर्तित हो गए।

सुत्री (Sutri) क बाद पोपो ने सुधार-काय का बीडा उठाया तथा उनको अपने प्रयासो म हेनरी तृतीय का समथन मिला। दुर्भाग्यवश वह काय क सम्पूर्ण होने से पूव ही मर गया तथा उसकी मृत्यु क बाद यूरोप की धार्मिक परिस्थितियाँ एक बार फिर अस्तव्यस्त हो गइ। हम पहल ही हनरी चतुथ का अवयस्कता क समय ब्रेमेन क आच बिशप एव काउट वनर क प्रशासन म जमनी की धार्मिक दशा का शोचनाय विवरण प्रस्तुत कर चुक हैं किस प्रकार वे सभी पदो को चाहे वे धार्मिक हो अथवा लौकिक इस सीमा तक क्रय विक्रय का विषय मानते रहे कि कोई भी व्यक्ति चच म अथवा राज्य मे तबतक पदोन्नति की आशा नहीं करता था जबतक कि वह उनसे उस खरीद न ले।[1] जब हनरी चतुथ ने शासन का भार स्वय सभाला तो एसा प्रतीत होता है कि बहुत थोडा सा सुधार हुआ था। बम्बग क बिशप को 1070 ई म रोम बुलाया गया तथा उस पर बिशप पद का खरीद कर प्राप्त करने का आरोप लगाया गया। हसफोड का लम्बट वास्तव म पोप एलेक्जेण्डर द्वितीय पर यह अभियोग लगाता है कि उसन उससे बडी भेंटें स्वीकार करक उसे आरोप स मुक्त कर दिया किंतु वह यह भी कहता है कि उसकी एव

मंज तथा कोंस्टेंस के आर्चबिशप को पोप द्वारा धार्मिक व्यवस्था का वचन तथा धर्म विक्रयी लोगों से सम्पर्क करने के लिए तीव्र भर्त्सना की गई तथा उनको इसकी शपथ दिलाई गई कि वे पुनः ऐसा नहीं करेंगे।[2]

लेम्बर्ट वर्णन करता है कि इसके पश्चात् हेनरी चतुर्थ ने राइशनाउ (Reichenau) के मठाधीश को मूल्य लेकर नियुक्त किया तथा कांसटेंस की धर्म सभा (Chapter) के अन्तर्गत एक ऐसा व्यक्ति को बिशप नियुक्त करने का प्रयास किया जिस पर कि चोरी एवं धर्म विक्रय के आरोप थे।[3] पोप ने इस प्रश्न को मंज के आर्चबिशप को सौंपा तथा हमें एक पत्र उपलब्ध होता है जिसमें वह पोप के आज्ञापालन के कारण उस पर आने वाले महान संकट का वर्णन करता है क्योंकि सम्राट ने उसे स्पष्ट रूप से धमकी दी थी कि वह कांसटेंस के लिए निर्वाचित बिशप का अभिषेक करना स्वीकार न करे।[4]

ग्रेगोरी सप्तम को लिखे गए हेनरी चतुर्थ के 1073 ई. के एक पत्र में वह अपने दोषों को स्वीकार करता है जिनमें औरों के साथ साथ यह भी है कि वह धर्म विक्रय का अपराधी है तथा शासन को ठीक करने के लिए उसकी राय एवं सत्ता समर्थन की याचना करता है। वह मिलन (Milan) के चर्च के सम्बन्ध में अपने को गम्भीर दोषों का अपराधी बतलाता है।[5]

पुनः 1074 ई. के सम्बन्ध में लेम्बर्ट वर्णन करता है कि जर्मनी में पोप के प्रतिनिधि हेनरी चतुर्थ से सहयोग न करने के प्रति सजग थे क्योंकि उस पर धर्म विक्रयात्मक कार्यों के आरोप थे। ग्रेगोरी सप्तम ने इन प्रतिनिधियों को धर्म विक्रय के अभियुक्त व्यक्तियों का निर्णय करने के लिए भेजा था तथा वे एक धर्म सभा को बुलाना चाहते थे। बिशपों ने इसका दृढ़तापूर्वक विरोध किया तथा यह तर्क प्रस्तुत किया कि पोप के अतिरिक्त वे किसी अन्य के द्वारा इसका सम्पादन सहन नहीं करेंगे। पोप ने पहले ही बेम्बर्ग के बिशप तथा अन्य बिशपों को निलम्बित कर दिया था तथा अपने पवित्र कार्यों को करने से रोक दिया था जबतक कि वे उनकी (पोप की) उपस्थिति में अपने को शुद्ध न कर लें। लेम्बर्ट के अनुसार हेनरी चतुर्थ ने इस आशा में कि इसमें वाम से के बिशप तथा अन्यों को जिन्होंने सेक्सन युद्ध में उसका विरोध किया था पदच्युत किया जा सकता पोप के प्रतिनिधियों का समर्थन किया किन्तु अन्ततः यह धारणा बनी कि यह मामला इन दूतों के लिए कठिन है तथा उसे स्वयं पोप की सुनवाई के लिए सौंप दिया गया।[6]

केवल जर्मनी में ही धर्म विक्रय की समस्या उत्कट नहीं थी। हम फ्रांस में लियो नवम द्वारा 1049 ई. को राइम्स परिषद् में उठाए गए कठोर उपायों पर विचार कर चुके हैं किन्तु यह स्पष्ट है कि उसके प्रयत्नों के बावजूद भी यह दोष दूर नहीं किया जा सका। ग्रेगोरी सप्तम के फ्रांस के बिशपों से पत्र-व्यवहार में उसने सबसे पहले लौकिक सत्ताधारियों के विरुद्ध कठोर उपायों की धमकी दी। 1073 ई. के शालों के बिशप (Chalons) को लिखे गए एक पत्र में वह फ्रांस के राजा फिलिप को किसी भी समकालीन राजा से अधिक चर्च का उत्पीड़क बताता है तथा वह धमकी देता है कि यदि फिलिप धर्म विक्रय का अपराध नहीं त्याग देगा तो वह एक ऐसा सामान्य धर्म बहिष्कार का आदेश देगा जिससे फ्रांसीसी जनता उसकी आज्ञा पालन करना अस्वीकार कर देगा।[7] उसी वर्ष उसने नियोस

क आर्चबिशप को आदेश दिया कि वह ओटन के निर्वाचित बिशप का फ्रांस के राजा की स्वीकृति की प्रतीक्षा किए बिना अभिषेक कर दें।[8] अगले वर्ष में ग्रेगोरी ने फ्रांस के आर्चबिशपों एवं बिशपों को लिखा तथा फिलिप की भर्त्सना की कि वह राजा कहलाने योग्य नहीं था अपितु केवल निरंकुश शासक कहा जा सकता था। उसने (ग्रेगोरी ने) उन पर कड़ा आरोप लगाया कि राजा को अपराधों से रोकने के लिए उनके द्वारा अपने धार्मिक अधिकारों का प्रयोग नहीं किया गया तथा उनको आज्ञा दी कि वे एकत्रित होकर संयुक्त रूप से उससे भेंट करें तथा उसके मुह पर उसके अपराधों के लिए उसकी निंदा करें। अगर राजा उनकी बात पर ध्यान देने से मना करता है तो उसने आज्ञा दी कि वे उसके सम्पर्क एवं आज्ञा पालन से विरत हो जाएं तथा सारे फ्रांस में धर्म क्रिया के सार्वजनिक अनुष्ठानों का निषेध कर दें। यदि फिलिप उस समय भी न माने तो उसने उनको यह आश्वासन दिया कि वह अपनी शक्ति भर फ्रांस का राज्य उससे छीनने का प्रयास करेगा।[9]

ग्रेगोरी के पत्र यह संकेत करते हैं कि वे अपराध जिनके आरोप उसने फिलिप पर लगाए हैं केवल चर्च के सामान्य हितों के विरुद्ध ही नहीं थे क्योंकि वह दूसरे पत्रों में फ्रांस में इटेलियन व्यापारियों के लूटने का विशेषतः संकेत करता है।[10] फ्रांस के चर्च की अवनति एवं अव्यवस्था उसके अनुसार विशेषतः धर्म विक्रय के प्रचलन के कारण थी तथा उसके लिए सबसे अधिक कठोर सुधारों की अपेक्षा थी और यह भी स्पष्ट है कि उसने लौकिक एवं धार्मिक सत्ता के बीच वैसी ही संघर्ष की आशंका उत्पन्न की जैसा हेनरी तृतीय की मृत्यु के बाद साम्राज्य में उठ खड़ा हुआ था।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि लौकिक और धार्मिक सत्ताओं के सम्बन्ध बिगड़ रहे थे तथा हमारे मत में यह कहना उचित ही है कि किसी भी मतभेद को प्रकट करने वाली विशद घटना के पीछे एक अधिक सामान्य कारण था और यही कारण है कि हेनरी तृतीय के देहावसान के बाद लौकिक सत्ता सुधार के प्रयत्नों में धार्मिक सत्ता का सहयोग देने से विमुख हो गई थी तथा धर्म विक्रय एवं पादरियों की लौकिकता जैसे दोषों के बने रहने के लिए उत्तरदायी प्रतीत होती थी। इन परिस्थितियों में पोप ने लौकिक सत्ता के धार्मिक नियुक्तियों में हस्तक्षेप के नियंत्रण अथवा निषेध की नीति अंगीकार की। यह उचित या अनिवार्य भी माना जा सकता है किन्तु यह मानना होगा कि यह कदम लगभग क्रांतिकारी था।

इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में हम देख चुके हैं कि सामान्यतः यह विवादास्पद नहीं था कि बिशप अथवा मठाधीश की नियुक्ति में राजा या सम्राट का भी यथोचित स्थान है जबकि इन बिशपों के चुनाव में धर्म प्रदेश विशेष के पादरी तथा जनता के अधिकार और उनकी अभिपुष्टि में अधिधर्माध्यक्ष तथा प्रांत के अन्य बिशपों के अधिकार सामान्यतः मान्य थे। वास्तविक व्यवहार में निस्संदेह राजा ही इन नियुक्तियों को प्रायः मतदाताओं की इच्छा का थोड़ा ध्यान रखकर कर लेता था किन्तु यह मानना अतिशयोक्तिपूर्ण होगा कि कोई भी उत्तरदायी व्यक्ति उनको उपेक्षणीय मानता था। यद्यपि यह सत्य है कि इन अधिकारों के पारस्परिक समायोजन के प्रश्न को लेकर ही सर्वप्रथम भावी संकट के चिह्न

प्रकट हुए। हम उस वक्त हुए आग्रह के कुछ स्पष्ट प्रमाण पहले ही देख चुके हैं जिसमें कि सुधारवादी चर्च के सदस्य तथा चर्च की परिषदें धर्म प्रदेश में पादरियों तथा जनता द्वारा बिशप के निर्वाचन में राय लिए जाने के अधिकार के बारे में बल देने लगे थे। हम यह भी देख आए हैं कि कितने बलपूर्वक 1049 ई० में राइम्स की परिषद् ने इस सिद्धान्त पर बल दिया कि कोई भी व्यक्ति चर्च के अधिकार-पद पर पादरियों एवं जनसाधारण द्वारा निर्वाचन बिना नियुक्त नहीं किया जाए।[11] और हम यह भी देख चुके हैं कि मेंज की परिषद् ने किस प्रकार बेसान्सों के आर्चबिशप पद के एक दावेदार को इस स्पष्ट तर्क पर कि उसका निर्वाचन जनसाधारण एवं पादरियों द्वारा नहीं हुआ है अस्वीकार कर दिया।[12] हुसफील्ड का लेम्बर्ट ट्रीयर के पादरियों तथा जनता के विक्षोभ का वर्णन करता है जबकि 1066 ई० में आर्चबिशप एवरहार्ड की मृत्यु होने पर क्यूनो को कोलोन के आर्चबिशप के हस्तक्षेप के कारण उनकी राय के बिना नियुक्त कर दिया गया था।[13]

हम सुधारवादी दल के दो प्रमुख लेखकों अर्थात् कार्डीनल हुम्बर्ट एवं पीटर डेमियन के कुछ सिद्धांतों पर विचार करने का पहले ही अवसर मिल चुका है अब हम इस प्रश्न के अन्य दृष्टान्तों के लिए पुनः उनके ग्रंथों पर दृष्टिपात करना चाहिए किन्तु इस बात को स्पष्ट कर देना चाहिए कि कम से कम प्रारम्भ में सर्वाधिक प्रमुख सुधारक भी लौकिक सत्ता के धार्मिक पदों की नियुक्ति में लौकिक सत्ता के इस अधिकार को अस्वीकार नहीं करते थे कि इसका भी उसमें कुछ भाग है। एक स्थान पर कार्डीनल हुम्बर्ट अत्यन्त प्रबल शब्दों में न्यायसंगत एवं विधिविहित नियुक्ति की शर्तों को प्रस्तुत करता है। वह कहता है कि जिस व्यक्ति का निर्वाचन धार्मिक पद के लिए होना है उसका चुनाव पहले पादरियों द्वारा होना चाहिए फिर उसकी माँग जनता द्वारा होनी चाहिए तब ही उसका अधिधर्माध्यक्ष की स्वीकृति से प्रान्त के बिशपों द्वारा अभिषेक किया जाना चाहिए। इनमें से किसी भी एक शर्त का पालन किए बिना जिसका अभिषेक हुआ है उसे वास्तविक नहीं अपितु मिथ्या बिशप माना जाए।[14] हुम्बर्ट के शब्द वास्तव में दो अन्य प्रश्नों को जन्म देते हैं एक तो बिना किसी निश्चित धर्म क्षेत्र के बिशप की नियुक्ति के अनौचित्य के सम्बन्ध में दूसरा अधिधर्माध्यक्ष तथा रोम के धर्मासन के मध्य सत्ता के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में किन्तु हम यहाँ इनका वर्णन नहीं कर सकते।

दूसरे स्थान पर वह समकालीन राजकुमारों की धृष्टता एवं धन लिप्सा की निन्दा करता है जिनके द्वारा सभी दैवी तथा मानवीय कानूनों की अवहेलना करके धार्मिक नियुक्तियों के सभी अधिकारों को हथिया लिया गया था तथा इनके विपरीत पूर्वी साम्राज्य (Imperium Transmarinum) की परिस्थिति से तुलना करता है जहाँ ऐसी नियुक्तियों को पूर्णतया प्रधान गिरजाघर एवं बिशपों पर छोड़ दिया गया था।[15]

यदि हम इन वाक्यांशों को पृथक कर लें तो हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि हुम्बर्ट धार्मिक नियुक्तियों में लौकिक सत्ता को किसी भी प्रकार के योगदान से वञ्चित रखना चाहता था किन्तु जब हम उसी ग्रंथ के एक अन्य अंश पर विचार करें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि उसका यह अभिप्राय नहीं था। यहाँ वास्तव में वह क्षोभपूर्वक ऐसी नियुक्तियों में समस्त उचित क्रम के तिरस्कार की शिकायत करता है। फलस्वरूप जो पहला

होना चाहिए वह अंतिम तथा अन्तिम पहला हो जाता है। चयन में लौकिक सत्ता प्रथम स्थान का दावा करती है तथा जनता पादरी एव यहा तक कि प्रमुख धर्माध्यक्ष को भी उनकी बात माननी होनी है चाहे वह उससे सहमत हो अथवा नही। तथापि यह ध्यान म रखना चाहिए कि नियुक्ति का सच्चा तरीका बताते हुए वह कहता है कि प्रमुख धर्माध्यक्ष को पादरियो के द्वारा निर्वाचित की पुष्टि करनी चाहिए तथा राजा को जनता की माँग को।[16] अर्थात् हुम्बट बहुत स्पष्टतया यह स्वीकार करता है कि राजा स परामर्श लेना चाहिए तथा उसकी अनुमति प्राप्त करनी चाहिए।

यदि हम पीटर डेमियन को लें तो उसके ग्रन्थो के लेखाशा से[17] जिनको हम पहले उद्धृत कर आये हैं यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उसकी स्थिति भी हुम्बट से भिन्न नही है। वह लौकिक सत्ता द्वारा अभियाचित अधिकारो के दुरुपयोग का प्रबल विरोध करता है तथा विशप के निर्वाचन म पादरियो एव जनता के अधिकारो पर बल देता है किन्तु साथ ही वह बहुत निस्सकोच होकर यह स्वीकार करता है कि लौकिक सत्ता का भी इस प्रकार की नियुक्ति म न्यायसगत एव उचित स्थान है।

हम समझते हैं कि सुधारवादियो की स्थिति स्पष्ट थी वे धार्मिक निर्वाचनो की स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने के लिए तथा लौकिक सत्ता के दावो को अपने मतानुसार उचित सीमा तक सकुचित करने के लिए कृतनिश्चय थे किन्तु वे इनको पूर्णतया अस्वीकार भी नही करते थे। हम इस मामले को और आगे बढ़ा सकते है क्योकि स्वय ग्रेगोरी सप्तम का कम से कम अपने अधिकार काल के प्रथम वर्ष का पत्राचार यह सिद्ध कर सकता है कि वह धार्मिक नियुक्तियो म लौकिक सत्ता के अधिकारो को अस्वीकार नही करता था।

1073 ई म लियोस के आर्च बिशप हुम्बट को लिखे गए एक पत्र मे जिसको पहले उद्धृत किया जा चुका है वह उसे किसी लन्दिक नामक व्यक्ति का अभिषेक फ्रास के राजा की स्वीकृति की प्रतीक्षा किए बिना ही करने का निर्देश देता है जिसे ओटन के धर्म-क्षेत्र द्वारा बिशप पद के लिए चुना गया था।[18] निस्सन्देह ग्रेगोरी यहाँ राजा के अधिकारो की अवहेलना करता है किन्तु वह उसकी उपेक्षा एव विलम्ब के कारण ही क्षमा करता है। ल्यूका के निर्वाचित बिशप एनसलम को लिखे गए उसी वर्ष के पत्र म वह उसे राजा के द्वारा बिशप पद की प्रतिष्ठा प्राप्त करने का निषेध करता है जब तक कि वह धर्म बहिष्कृत लोगो से सम्यक त्याग कर रोमन धर्मपीठ से सधि नही कर लेता है।[19] किन्तु यह उल्लेखनीय है कि यह निषेध केवल तात्कालिक परिस्थितियो के ही कारण है। 1074 ई म डिये के काउट (Die) तथा उस चर्च के निष्ठावान् लोगो को लिखे गए एक पत्र म वह काउन्ट द्वारा अन्य सभी की सहमति से बिशप के निर्वाचन का उल्लेख करता है—अनुमानत उसका अभिप्राय उस क्षेत्र के पादरियो एव जनता से है।[20] पुन उसी वर्ष फर्मो के काउन्ट ह्यूबर्ट तथा वहाँ की जनता को लिखे गए एक पत्र म वह कहता है कि उसने चर्च को तब तक प्रधान उपयाजक को सौंप दिया है जब तक कि उसके स्वय की देख रेख म राजा की राय एव अनुमति से बिशप पद के लिए उपयुक्त व्यक्ति न मिल जाय।[21] एरेगान के राजा सको (Sancho) को लिखे गए 1075 ई के एक पत्र म वह बिशप के गिरते हुए स्वास्थ्य के कारण एक धर्म-क्षेत्र मे की जाने वाली व्यवस्था के बारे म विचार विनिमय करता है। राजा

तथा बिशप ने दो पादरियों के नाम सुझाए हैं जिनमें से एक को बिशप बनाना है। ग्रेगोरी दोनों को इस आधार पर अस्वीकार कर देता है कि व रमला के पुत्र हैं साथ ही यह वादा करता है कि यदि उपयुक्त चरित्र के व्यक्तियों के नाम जनता की सहमति से राजा एवं बिशप द्वारा प्रस्तावित हों तो वह उस पर विचार करेगा।[22] हेनरी चतुर्थ को 1076 ई की जनवरी में लिखे गए एक पत्र द्वारा जिसमें वह उसको फर्मो तथा स्पोलेतो (Spoleto) के बिशप पद उन दो व्यक्तियों को दे देने के लिए भर्त्सना करता है जिनसे वह अपरिचित है वह केवल यह सन्देह प्रकट करता है कि क्या चर्च किसी भी व्यक्ति द्वारा देय है परन्तु वह स्पष्टतः यह नहीं कहता कि राजा को इस विषय में ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं है।[23]

ग्रेगोरी सप्तम द्वारा अयाजकीय प्रतिष्ठापन के विरुद्ध आदेश प्रकाशित करने के बाद भी उसके पत्र व्यवहार में ऐसे वाक्यांश पाए जाते हैं जो बिशप पद की नियुक्ति में लौकिक सत्ता के कतिपय अधिकार को स्वीकार करते प्रतीत होते हैं। डिये के ह्यू को 1077 ई में लिखे गए पत्र में वह लिखता है कि फ्रांस के राजा फिलिप ने उस केनेब्रिया में सत यूफेमिया के मठाधीश को शान्त का बिशप बनाने को कहा है किन्तु वह कहता है कि वह ऐसा नहीं करेगा जब तक कि उसे उस धर्म-क्षेत्र की जनता की इच्छा का पर्याप्त ज्ञान न हो जाय।[24] स्वाबिया (Suabia) के रुडोल्फ को जो फारखाइम की विधान सभा द्वारा 1077 ई में जर्मनी का राजा चुना गया था लिखे गए एक पत्र में वह मैग्डेबर्ग के आर्च बिशप के निर्वाचन के बारे में इस प्रकार विचार विनिमय करता है जैसे वह विषय रुडोल्फ से सम्बन्ध रखता हो तथा केवल यह संकेत करता है कि यदि वे उसकी राय लेने को तैयार हो तो व उन दो पादरियों में से एक को चुनेंगे जिनकी वह सिफारिश करे किन्तु यह प्रावधिशपों बिशपों पादरियों एवं जनसाधारण की सहमति तथा निर्वाचन द्वारा किया जाना चाहिए।[2]

तब यह मानना एक त्रुटि प्रतीत होती कि चर्च का सुधारवादी दल बिशपों की नियुक्ति में लौकिक सत्ताधारियों के परम्परागत स्थान को पूर्णतया समाप्त करने पर तुला हुआ था। यह प्रतीत होता है कि यद्यपि वह यह अनुभव करता था कि वास्तव में तात्कालिक ढंग और तरीके जिनके माध्यम से ये अधिकार प्रयोग में लाए जाते थे अस्वीकार्य थे तथा धार्मिक चुनावों की स्वतन्त्रता पर बल दिया जाना चाहिए एवं उसे सुरक्षित रखना चाहिए तो भी वास्तव में स्वयं लौकिक सत्ता पर नहीं अपितु उनके अधिकारों की मात्रा एवं सीमा तथा उसके प्रयोग के स्वरूप पर उसका आक्रमण था।

जैसा हम अगले अध्यायों में देखेंगे यह प्रश्न कि प्रतिष्ठापन किन स्वरूपों के अन्तर्गत प्रदान किया जाता था इस संघर्ष में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने लगा इसलिए इस स्थान पर इस प्रश्न पर किए गए एक प्रारम्भिक सुविचारित एवं तर्कसंगत विचार विमर्श पर ध्यान देना सुविधाजनक होगा। कार्डिनल हम्बर्ट का धर्म विक्रयी व्यक्तियों के विरुद्ध ग्रन्थ जिसका पहले हम कई बार उल्लेख कर चुके हैं 1058-59 ई में लिखा गया था तथा उसके वाक्य जिनके कुछ शब्दों को हमने उद्धृत किया है इस प्रश्न का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं। जैसा हम देख चुके हैं, हम्बर्ट स्वीकार करता है कि राजा

की स्वीकृति जनसाधारण की इच्छा से मेल खाने वाली होनी चाहिए किन्तु वह शिकायत करता है कि विधानो के उल्लंघन मे सभी अनुपातो एवं व्यवस्थाओ को पूर्णतया नष्ट कर दिया गया है तथा लौकिक सत्ता बिशपो की नियुक्ति मे प्रथम एवं सर्वोच्च स्थान का दावा करती है तथा पादरियो जनता एवं अधिधर्माध्यक्ष को स्वीकृति देनी ही होती है चाहे वे सम्मत हो अथवा नहीं तथा उसकी मान्यता है कि इन परिस्थितियो मे की गई नियुक्तियाँ वास्तव मे अवैध हैं। वह स्वीकार करता है कि पादरी को धर्म-दण्ड एवं मुद्रा प्रदान करना जनसाधारण का अधिकार नहीं हो सकता क्योकि ये धार्मिक सत्ता एवं पद के संस्कारगत प्रतीक हैं तथा इनके एक बार प्रदान किए जाने के बाद निर्वाचन के विषय मे जनता अथवा पादरी को तथा अभिषेक के विषय मे अधिधर्माध्यक्ष को कोई भी कार्य स्वातन्त्र्य नहीं रहता।[8]

स्पष्टत हुम्बर्ट यह अनुभव करता था कि जब लौकिक सत्ता धर्मदण्ड या मुद्रा से प्रतिष्ठापित करती है तो इससे धार्मिक नियुक्ति के विषय मे उसकी स्थिति की पूर्णतया मिथ्या धारणा बनती है ये धार्मिक पद के प्रतीक थे जिन्हें लौकिक सत्ता प्रदान नहीं कर सकती तथा एक बार प्रदान किए जाने पर ये निर्वाचको एवं अधिधर्माध्यक्ष के अधिकारो का अतिक्रमण करते हैं एवं उनसे ऊपर हैं। अत यह प्रतीत होता है कि कम से कम 1058–59 ई तक बिशप का मुद्रा एवं धर्म दण्ड से प्रतिष्ठापन का विरोध एक निश्चित स्वरूप अंगीकार कर चुका था तथा इन्ही विषयो के सम्बन्ध मे धीरे धीरे धार्मिक नियुक्तियों मे लौकिक सत्ता के अधिकार के दावे के सम्बन्ध मे सुधारवादी दल की स्थिति को एक निश्चित स्वरूप प्राप्त हुआ। किन्तु हमे निश्चित ही यह ध्यान रखना चाहिए कि इस विषय के सम्पूर्ण साहित्य मे प्रतिष्ठापन शब्द के साथ एक अस्पष्टता जुड़ी हुई है हम कभी भी निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि इस शब्द का प्रयोग बिशप के धर्म-दण्ड एवं मुद्रा प्रदान के विशिष्ट अर्थ मे किया गया है अथवा नियुक्ति के सामान्य अर्थ मे।

हम उन परिस्थितियो के सामान्य स्वरूप पर विचार कर चुके हैं जिनसे ग्रेगोरी सप्तम एव हेनरी चतुर्थ के बीच प्रतिष्ठापन के प्रश्न को लेकर संघर्ष उत्पन्न हुआ। किन्तु इसका वर्णन करने से पूर्व हम एक विशेष विवाद पर ध्यान देंगे जो कि कुछ समय से चला आ रहा था तथा अन्तिम विस्फोट होने मे जिसका पर्याप्त मात्रा मे महत्त्व हो सकता है। यह मिलन (Milan) का प्रश्न था।

पादरियो के विवाह को प्रतिबन्धित करने के लिए विशेषत 1059 ई मे पोप निकोलस के आदेश के बाद पोप पद के फलस्वरूप प्रयत्नो के द्वारा विशेषत मिलन मे तथा अन्य स्थानो पर उत्पन्न हुए गम्भीर संकटो के बारे मे हम यहाँ विचार नहीं कर सकते। 1059 ई मे ल्यूका के आर्चबिशप तथा पीटर डेमियन को इन संकटो से निपटने के लिए मिलन भेजा गया था तथा यह साफ है कि मिलन शहर मे पोप के उस नगर पर सत्ता के यथार्थ स्वरूप के बारे मे गहरा मतभेद था।[9] हमारा सम्बन्ध यहाँ उस प्रश्न से है जो पोप तथा सम्राट के मध्य मिलन के आर्चबिशप के चुनाव को स्वीकार अथवा अस्वीकार कर देने के अधिकार के सम्बन्ध मे उठ खड़ा हुआ था। इस संघर्ष का विस्तृत विवरण आरम्भ के मिलन के आर्चबिशपो के इतिहास मे उपलब्ध होता है। यद्यपि यह

स्पष्ट है कि वह सम्राट के दल के पक्षपाती के रूप में लिख रहा है तथापि उसका वर्णन सघपरत दलों के दृष्टिकोणों को प्रस्तुत करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण है। उसकी मान्यता है कि इटेलियन साम्राज्य की यह प्राचीन प्रथा रही है कि बिशप की मृत्यु के बाद राजा पादरियो एव जनता के अनुरोध पर उसके उत्तराधिकारी को नियुक्त कर देता है। वह कहता है कि रोमवासी इसे न्यायसगत नही मानते थे तथा हिल्डेब्रण्ड ने जबकि वह रोम का मुख्य उपयाजक था प्राचीन प्रथा को मिटाकर एक नया नियम लागू करने का प्रयत्न किया कि चुनाव के लिए रोम के धर्मपीठ की स्वीकृति आवश्यक समझी जाए।[?] 1071 ई मे आर्चबिशप विडो की मृत्यु पर यह सघर्ष छिड गया। हुरलेम्बाल्ड ने जो विवाहित पादरियो के विरुद्ध आन्दोलन का एक प्रमुख नेता था एटटो नाम के एक व्यक्ति का चुनाव रोम की अनुमति से कुछ पादरियो एव जनता द्वारा करवा लिया। आरनल्फ कहता है कि अधिकाश पादरी एव बुद्धिमान जनता राजा के अधिकारो एव प्राचीन प्रथा को स्वीकार करने के पक्ष मे थे तथा प्रान्त के बिशपो ने राजा की अनुज्ञा प्राप्त करके नोवारा मे सम्मेलन किया तथा गोटोफ्रिड नामक व्यक्ति का आर्चबिशप पद पर अभिषेक कर दिया। हिल्डब्रण्ड ने 1073 ई मे पोप पद प्राप्त करने के बाद गोटोफ्रिड तथा उसके अभिषेक-कर्त्ताओ को एक धर्मसभा मे बुलाया तथा एटटो के निर्वाचन की पुष्टि कर दी।[30] कुछ समय के लिए हेनरी चतुर्थ चुप हो गया तथा उसने पूर्वोद्धृत पत्र मे अपने अपराधों को अगीकार करके मिलन के बारे मे पोप के निर्णय को स्वीकार करने की सहमति व्यक्त कर दी।[31]

1075 ई मे ग्रेगोरी सप्तम ने एक आदेश के द्वारा सभी अयाजकीय प्रतिष्ठापन को निषिद्ध कर दिया। खेद है कि हम उस आदेश के शब्दों का कोई विवरण उपलब्ध नही होता। ग्रेगोरी की पंजिका मे यह विद्यमान नही है तथा इसके विषय मे केवल सक्षिप्त विवरण आरनल्फ के उपयुक्त ग्रन्थ मे उपलब्ध होना है। उसकी सूचना इतनी छोटी एव सक्षिप्त है कि हम निश्चयपूर्वक नही कह सकते हैं कि वह आदेश के ठीक शब्दो को प्रस्तुत कर रहा है। वह कहता है कि ग्रेगोरी ने रोम की एक धर्मसभा मे राजा (हेनरी चतुर्थ) को बिशप पद प्रदान करने मे किसी भी अधिकार (Ius) को प्रदान करने का निषेध कर दिया तथा उसने चर्चों के प्रतिष्ठापन से सभी जनसाधारण को हटा दिया।[32] यह सम्भव है कि आज्ञप्ति को तत्काल प्रकाशित करना अभिमत न हो तथा ग्रेगोरी अपने शब्दों को बदलने की सम्भावना पर विचार करने को प्रस्तुत हो जैसा कि हेनरी चतुर्थ को जनवरी 1076 ई मे लिखे गए पत्र मे विवक्षित होता है।[33] आरनल्फ का कथन सार रूप मे सत्य है यह केवल अभी उल्लिखित वर्णन से ही नही अपितु उसके पत्र-व्यवहार मे पाए जाने वाले इस विषय पर अन्य स्पष्ट उल्लेखो से भी स्पष्ट प्रतीत होता है।

मार्च 1077 ई मे डूस के आर्चबिशप को लिखे गए एक पत्र मे ग्रेगोरी कहता है कि उसकी जानकारी मे ब्रिटेनी के राजा भविष्य मे बिशप के प्रतिष्ठापन के अधिकार के दावे तथा अपनी सहमति बेचने की प्राचीन किन्तु विकृत प्रथा को त्यागने के लिए सहमत हैं।[34] मई 1077 मे दिये के बिशप ह्यू को लिखे गए पत्र मे वह थेरान्न की कम्ब्राई के बिशप पद पर नियुक्ति की परिस्थितियो का वर्णन करता है। उसका निर्वाचन पादरियो

एव जनता द्वारा हुआ तथा तदुपरान्त उसने बिशप पद को हेनरी चतुर्थ से प्राप्त किया। गेराड अपनी सफाई म यह तक देता है कि उसे ग्रेगोरी की उस आनप्ति का ज्ञान नहीं था—*जिसमे यह निषिद्ध घोषित किया गया था तथा यह कि हेनरी को धर्म-बहिष्कृत कर* दिया गया था। अरतु ग्रेगोरी उसके निर्वाचन को स्वीकार करने के लिए तयार है किन्तु इस शत पर कि गेराड इसकी (अपने अज्ञान की) राइम्स प्रान्त के आर्चबिशप एव बिशपो की एक सभा म घोषणा करे। ग्रेगोरी दिये के बिशप को भी इस परिषद् मे निर्देश देता है *कि उपस्थित सभी लोगो को यह बताए कि कोई भी लौकिक सत्ता या व्यक्ति इस प्रकार* के पद प्रदान करने में हस्तक्षेप नहीं करेगा तथा कोई भी अधिधर्माध्यक्ष या बिशप जो ऐसे व्यक्ति का अभिषेक करता है जिसे बिशप पद की प्राप्ति अयाजक से हुई हो अपने पद एव गौरव से वंचित कर दिया जाएगा।[35] 1078 ई के माघ मास मे ग्रेगोरी ने स्पायस *के बिशप हुजमान के इसी स्पष्टीकरण को कि उसे पोप की घोषणा का ज्ञान नहीं था* मान लिया तथा इसके परिणामस्वरूप उसके बिशप पद की पुष्टि कर दी।[36]

अत यह स्पष्टत प्रतीत होता है कि आरनल्फ का कथन सही है और ग्रेगोरी ने 1075 ई म हेनरी चतुर्थ के स्थान तथा बिशप पद पर अयाजक नियुक्तियो के सम्बन्ध म एक आज्ञप्ति जारी की थी। *रोम म नवम्बर 1078 ई मे सम्पन्न एक परिषद् की* आनप्ति मे अयाजकीय प्रतिष्ठापन की निन्दा की स्पष्ट रूप से अभिव्यक्ति की गई है। इस घोषणा में यह कहा गया है कि कई मामलो मे धर्म पिताओ के आदेशों के विपरीत चर्चों के प्रतिष्ठापन अयाजको द्वारा किए गए हैं अत यह व्यवस्था दी जाती है कि कोई भी पादरी बिशप पद *मठ अथवा चर्च का प्रतिष्ठापन सम्राट या राजा के हाथों* से प्राप्त नहीं करेगा अथवा किसी अयाजक पुरुष या स्त्री के हाथो से प्राप्त नहीं करेगा और यदि कोई ऐसा करता है तो वह प्रतिष्ठापन अवध होगा तथा उसे प्राप्त करने वाला व्यक्ति धर्म बहिष्कृत कर दिया जाएगा।[37] यह भी व्यवस्था दी गई है कि सभी नियुक्तियाँ जो मूल्य देकर या पादरियों एव जनता की स्वीकृति बिना अथवा उनकी अनुमति बिना जिनको कि अभिषेक का अधिकार है प्राप्त की गई हैं अवधानिक मानी जाएँगी।[38] माघ 1080 ई की रोमन परिषद् ने इस निषेध को दोहराया तथा इसम कुछ महत्त्वपूर्ण व्यवस्थाए जोड दीं। यदि कोई व्यक्ति भविष्य मे बिशप अथवा मठाधीश के पद को किसी अयाजक के हाथो से प्राप्त करता है तो उसे बिशप अथवा मठाधीश नहीं गिना जाएगा तथा प्रतिष्ठापन देने अथवा प्राप्त करने वाला व्यक्ति धर्म बहिष्कृत होगा।[39] जब किसी चर्च में कोई स्थान रिक्त हो तो पोप अथवा अधिधर्माध्यक्ष द्वारा एक बिशप भेजा जाएगा जिसके निर्देशानुसार पादरी और जनता बिना लौकिक हस्तक्षेप के भय अथवा पक्षपात के एक पल्ली-पुरोहित (Pastor) को पोप अथवा अधिधर्माध्यक्ष की सहमति से चुनगे। यदि वे अन्यथा करें तो निर्वाचन अवध होगा तथा वे अपना निर्वाचन का अधिकार खो देंगे जो कि रोम के पोप अथवा अधिधर्माध्यक्ष मे निहित हो जाएगा।[40]

रोम की 1080 ई की परिषद् की इन आनप्तियो से बिशपो एव मठाधीशो की नियुक्ति के विषय म लौकिक सत्ता के सम्बन्धो के विषय मे ग्रेगोरी सप्तम का दृष्टिकोण पूर्णत विकसित हो गया था। किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि उसके दृष्टिकोण की

व्याख्या में हम पूर्णतया निश्चित हैं। वह दृढ़तापूर्वक और स्पष्टता से सभी ग्रयाजकीय प्रतिष्ठापन का निषेध करता है किन्तु क्या उसका अभिप्राय धार्मिक नियुक्तियों में लौकिक सत्ता के हाथ का पूर्णतया निषेध है यह पूरा रूप से स्पष्ट नहीं। जैसा हम पहले देख चुके हैं कि प्रतिष्ठापन शब्द का एक पारिभाषिक अर्थ भी है। किन्तु सम्भव उसका प्रयोग पारिभाषिक अर्थ में नहीं होता था तथा हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि इन वक्तव्यों एवं ग्रगोरी की आज्ञप्तियों में जिनका हम उल्लेख कर आए हैं इस शब्द का यही अर्थ है। इसके बाद उठने वाले संघर्ष के दौरान ही ये अस्पष्टताएँ धीरे धीरे दूर हुई।

सन्दर्भ

1 देखें भाग 2 अध्याय 1।
2. Lambert of He sf ld 1070
3 Id d 1071 (p 1108)
4 S gf ed Archb shop of M i tz, Ep t l e s M g v 1 46 p 142
5 G g y VII R g strum 29 ( )
6 Lambert An al 1074 (d 215).
7 Greg y VII R g l 35
8 Greg y VII R g 36
9 Id d 5
10 Cf Gr g ry VII R g i 18 & 32
11 देखें भाग 2 अध्याय 1।
12 देखें भाग 1 अध्याय 3।
13 Lambert of H f ld [An les 1066 (M G H S S p 173)
14 H mbert Ad e S m a os 5
15 Id d 10
16 Id Ad sus S mon cos 6
17 देखें भाग 1 अध्याय 3।
18 देखें भाग 2 अध्याय 2।
19 G gory VII R gistrum 1
20 Id id [illegible]
21 Id id u 38
22 Greg ry VII R g' i 50
23 Id id i 10
24 Id id v 11
25 G egory VII Ep C ll 26
26 H mbert Ad S m 6
27 Nicola II Epp 7 8
28 P t r D m a Opusculum v
29 Arnulfus Ge t Arch p scop rum Med la e m i 21
30 A ulfu Ge t Arch p scoporum M d l um iii 25
31 देखें भाग 2 अध्याय 2।
32 Arn lfu G t Arch p coporum Med l um 7
33 G gory VII R g 10
34 Id d 13
35 G eg ry VII Reg 22
36 Id d 18
37 [illegible] g VII Reg 5 (b).
38 Id d 5 (b)
39 Id d u 14-a p 398
40 Id d 14 ( ) p 400

तृतीय अध्याय

“प्रतिष्ठापन” प्रश्न पर वादविवाद–(1)

हमने कुछ उन परिस्थितियो को खोजने का प्रयास किया है जिनके परिणामस्वरूप 1075 ई म अयाजकीय प्रतिष्ठापन निषिद्ध कर दिया गया। अब हम उस संघर्ष के इतिहास पर विचार करना है जिसे इसने जन्म दिया तथा विवाद की विषयवस्तु के वास्तविक स्वरूप पर जिस रूप मे वह विवाद-कर्त्ताओं के मस्तिष्क म उदित हुई विचार करना है। जैसा हम देखेंगे विवाद प्राय प्रतिष्ठानो मे पादरी के धर्म-दण्ड एव धार्मिक मुद्रा के प्रयोग के प्रश्न की ओर अभिमुख होता है किन्तु यह स्पष्ट है कि वास्तविक विवाद का यह विषय नहीं था। पोप की ओर से यह सिद्धान्त कि धार्मिक नियुक्तियाँ लौकिक सत्ता से पूर्णतया नियन्त्रित नही होनी चाहिए तथा सामान्य के दृष्टिकोण से यह सिद्धान्त कि लौकिक सत्ता का भी इस प्रकार की नियुक्ति म कुछ स्थान है वास्तव म ये ही महत्त्वपूर्ण विषय थे।

साम्राज्यिक स्थिति का संयत विवरण 1081–82 ई मे ट्रीयर के वनरिश द्वारा लिखे गए वरडून के बिशप थियोडोरिक के नाम स रचित पत्र या ग्रन्थ मे उपलब्ध होता है।[1] वह स्वीकार करता है कि इस मान्यता म कुछ तक आभासित होता है कि बिशपो की नियुक्ति राजा द्वारा नही की जानी चाहिए। तथापि वह शिकायत करता है कि इसका निषेध अवाञ्छित उग्रता एव शीघ्रता के साथ किया गया है उसका वास्तविक प्रयोजन धर्म के प्रति उत्साह नहीं किन्तु राजा (अर्थात् हेनरी चतुर्थ) के प्रति घृणा है। स्वाबिया के रूडोल्फ तथा अन्य राजाओ के द्वारा की गई नियुक्तियाँ स्वीकार कर ली गई हैं अथवा कम से कम उनका ख्याल रखा गया है जबकि हेनरी चतुर्थ के प्रति निष्ठावान बिशपो की चाहे उनका सामान्य स्वीकृति से निर्वाचन अथवा स्वागत ही क्यो न हुआ हो निन्दा की गई तथा उनको धर्म-बहिष्कृत किया गया है। वह आगे यह तर्क प्रस्तुत करता है कि राजा द्वारा नियुक्ति की यह प्रथा कम से कम वर्ष युगों से विद्यमान एव स्वीकृत है तथा वह इजराइल के राजा द्वारा पुरोहितो की नियुक्ति का उल्लेख करता है मेकेबियन युग (Maccabean Period) के पूर्व दृष्टान्त उद्धृत करता है तथा ग्रेगोरी महान् तथा सेविल

के इसीडोर (*Isidore of Seville*) के लेखों से अनेक अंश प्रस्तुत करता है।[3]

साम्राज्यिक स्थिति को और विस्तृत रूप में सम्भवत 1086 ई० की एक रचना में जो पेरेश के बिशप विडो द्वारा लिखी गई है निरूपित किया गया है।[3] वह बिशपों के साम्राज्यिक प्रतिष्ठापन के विरुद्ध तर्कों का एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता है तथा संत एम्ब्रोस की रचनाओं से विशेषत कुछ वाक्य उद्धृत करता है जिनको कि इन तर्कों के समर्थन में प्रस्तुत किया जा सकता है किन्तु वह उनको यह कहकर अलग कर देता है कि ये विवाद विषय से संगत नहीं हैं। वह इस पर बल देता है कि बिशप के पद के दो पहलुओं में स्पष्ट विभेद करना आवश्यक है। एक ओर उसका पद आध्यात्मिक है तथा उसकी समस्त आध्यात्मिक शक्तियाँ उसे पवित्र आत्मा (Holy Spirit) द्वारा दूसरे बिशपों के माध्यम से प्राप्त होती हैं। दूसरी ओर उसके लौकिक अधिकार एवं सम्पत्तियाँ हैं जो उसे राजा द्वारा प्रदान की जाती हैं। पवित्र आत्मा द्वारा उसे प्रदान की गई आध्यात्मिक शक्तियाँ साम्राज्यिक सत्ता के अधीन नहीं हैं किन्तु लौकिक वस्तुएं क्योंकि लौकिक सत्ता द्वारा प्रदान की जाती हैं अत उनके स्वामित्व का उस सत्ता के आनुक्रमिक धारणकर्त्ताओं द्वारा पुनर्नवीकरण किया जाना चाहिए। इसी के आधार पर वह इस तथ्य की व्याख्या एवं औचित्य सिद्ध करता है जैसा वह कहता है कि पोप हैड्रियन प्रथम तथा पोप लियो तृतीय द्वारा सम्राटों को प्रतिष्ठापन का अधिकार प्रदान किया गया था। वह इसमें यह भी जोड़ देता है कि धार्मिक चुनावों में प्राय घटने वाली सामान्य अशान्ति को रोकने के लिए भी ऐसा किया गया था।[4]

विडो धार्मिक निर्वाचनों में राजा की न्यायसंगत स्थिति के बारे में अपने मत की परिपुष्टि पोप निकोलस द्वितीय की घोषणा की धाराओं से भी करता है जैसा कि वह समझता है कि उसके अनुसार कोई भी व्यक्ति बिना साम्राज्यिक स्वीकृति के रोम का बिशप नहीं हो सकता। उसके अनुसार बड़ी सीमा तक इसका कारण यह तथ्य है कि धर्माध्यक्षीय निर्वाचनों में लौकिक सत्ता के नियन्त्रण न होने पर जो आनुषंगिक उपद्रव होते थे विशेष रूप से हेनरी तृतीय के हस्तक्षेप से पूर्व पोप के धर्मासन के तीन अधिभोक्ताओं के मध्य संघर्ष इसके साथ ही साथ यह तथ्य भी कि बिशपों के सभी लौकिक अधिकार राजाओं और सम्राटों से प्राप्त होते हैं तथा उनके प्रदान किए बिना धारण नहीं किए जा सकते और वह इस पर बल देता है कि इसी अधिकार के कारण पादरी किसी भी प्रकार के कराधान से मुक्ति का दावा कर सकता है। इसके बाद वह सेविल के इसीडोर से ब्राउलियो (*Braulio*) के पत्र "व्यवहार का उद्धरण" देते हुए कुछ वाक्यांशों से यह निष्कर्ष निकालता है कि इसीडोर बिशप पद की नियुक्ति में राजा का अधिकार मानता था। अन्त में वह कहता है कि जो यह मानते हैं कि बिशप की नियुक्ति केवल पादरी का ही कार्य है उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि वह मूसा (Moses) ही था जो कि यद्यपि पुरोहित नहीं था जिसके द्वारा ईश्वर ने कानून प्रदान किए तथा पुरोहित वर्ग को आदेशित किया और यदि धार्मिक पद को धारण न करने वाले को इसके लिए अनुमति दी गई थी तो इसे अनुचित नहीं मानना चाहिए कि सम्राट और राजा बिशप पद पर नियुक्ति करें क्योंकि उनका जो अभिषेक होता है वह किसी सीमा तक पुरोहित से महानतर एवं अधिक गौरवशाली है तथा

उनको एक साधारण प्रयाजक नहीं समझना चाहिए।[5]

यदि हम इन तर्कों पर विचार करने का प्रयत्न करें और उनके महत्त्व को परिसीमित करें तो यह प्रतीत होगा कि विडो की दृष्टि में वास्तव में महत्त्वपूर्ण विचार यह था कि बिशप की लौकिक सम्पदा लौकिक सत्ता के अधीन ही उसकी मानी जा सकती है और राजा ही उसे प्रदान करता है। वह इससे भी परिचित है कि बिशपों की नियुक्ति के विषय में लौकिक सत्ता के अधिकार के दावों के बारे में हेड्रियन प्रथम तथा लियो तृतीय के नकली दस्तावेजों के प्रमाणों के अतिरिक्त अनेक पूर्व दृष्टान्त थे जिनको कि जैसा प्रतीत होता है उसने सर्वप्रथम प्रयोग किया है तथा वह इस पर बल देता है कि साम्राज्यिक सत्ता चर्च में व्यवस्था स्थापित करने में बहुत उपयोगी हो रही है। उसके अन्तिम तर्क के कि राजा और सम्राट अपने अभिषेक के कारण साधारण प्रयाजक नहीं माने जा सकते महत्त्व पर हमें पुनः विचार करने का अवसर मिलेगा। सबसे महत्त्वपूर्ण मान्यता पहली थी क्योंकि यह 1122 ई. में वार्म्स में हुए समझौते के स्वरूप का पूर्वाभास प्रदान करती प्रतीत होती है।

अब हम प्रयाजक प्रतिष्ठापन के निषेध के बारे में ग्रेगोरी सप्तम के कार्यों के पूर्वतर समर्थकों के दृष्टिकोण एवं तर्कों की तुलना बेनेरिच तथा विडो के दृष्टिकोण से करनी चाहिए। इनमें सर्वप्रथम ल्यौटेनबाख का मेनेगोल्ड है जिसका ग्रन्थ एड गेबेहर्डम (Ad Gebehardum) सम्भवतः 1085 ई. में लिखा गया था।

वह 1078 ई. की रोमन परिषद् की अनुज्ञप्ति के रूप में इस निषेध को उद्धृत करता है तथा उल्लेखनीय कटुतापूर्वक दावा करता है कि यह कैथोलिक परम्परा परिषद् के निर्णयों एवं धर्म पिताओं के नियमों का प्रतिनिधित्व करता है। वह विशेषतः तथाकथित प्रेरितिक विधान (Apostolical Canons) के एक नियम पर बल देता है जो पोप लियो प्रथम की प्रायः उल्लिखित उक्ति है कि कोई भी व्यक्ति बिशप नहीं माना जा सकता जिसको पादरियों द्वारा चुना न गया हो जनता द्वारा जिसकी मांग न की गई हो तथा धर्माध्यक्ष के अनुमोदन से प्रान्त के बिशपों ने जिसका अभिषेक न किया हो तथा पोप सीलेस्टाइन प्रथम (Pope Celestine I) की समान रूप से सुपरिचित उक्ति भी (जिसे वह इनोसेन्ट प्रथम की उक्ति बताता है) कि कोई भी बिशप अनिच्छुक व्यक्तियों पर लादा नहीं जा सकता तथा वह तर्क प्रस्तुत करता है कि यदि यह सत्य है तो स्पष्ट है कि बिशपों को राजाओं और राजकुमारों द्वारा स्वेच्छा से नियुक्त नहीं किया जा सकता।[6]

कुछ आगे चलकर वह कार्डीनल हुम्बर्ट के ही समान शब्दों में जिनका हम पहले उल्लेख कर चुके हैं उस हेय कौशल की निन्दा करता है जिसके द्वारा अनेक व्यक्ति लौकिक अधिकारियों के कृपापात्र बनते थे तथा धार्मिक पदों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करते थे।[7]

तत्पश्चात् स्पष्टतः बेनेरिच के तर्कों के सन्दर्भ में मेनेगोल्ड मक्केबियन युग के तथाकथित पूर्व-दृष्टान्तों पर विचार करता है तथा निश्चयपूर्वक मानता है कि उनको गलत समझा गया था परन्तु यदि वास्तव में वे वैसे नहीं भी होते तो भी वे किसी अधिकार से युक्त नहीं हैं क्योंकि मक्केबियन पुस्तकें (Books of Maccabees) प्रामाणिक धर्म ग्रन्थ संग्रह का अंग नहीं हैं।[8] उसी प्रकार वह यह भी तर्क करता है कि सोलोमन द्वारा सेडोक की

उन्च पुरोहित नियुक्त करना एक गलती थी किन्तु यदि वह ठीक भी होता तो भी इससे कोई बात सिद्ध नहीं होती क्योंकि उस युग की परिस्थितियों को देख कर यदि राजा को वैसा अधिकार दे भी दिया गया हो तो भी नवीन व्यवस्था के अन्तर्गत उसका कोई औचित्य नहीं था।[9]

वह विस्तारपूर्वक वेनेरिच की मान्यता की कि सत इसीडोर तथा सत ग्रेगोरी महान् बिशपों की नियुक्ति में राजाओं और सम्राटों के न्यायोचित अधिकारों को स्वीकार करते थे परीक्षा करता है तथा तर्क देता है कि उनके ग्रन्थों से जिन वाक्यांशों को वेनेरिच ने उद्धृत किया है वे गलत समझे गए हैं तथा वह प्रदर्शित करने के लिए अनेक दृष्टान्त प्रस्तुत करता है कि रोमन धर्मपीठ का निर्वाचन कभी भी किसी लौकिक सत्ताधारी के अधिकार में नहीं रहा जबकि दूसरी ओर पोप को बिशपों की नियुक्ति तथा नये धर्म पीठ के संगठन का अधिकार था।[10]

इस प्रकार लौकिक सत्ता द्वारा बिशपों की नियुक्ति के अधिकार के समर्थन में उठाये गए तर्कों पर विचार करके वह राजाओं द्वारा मुद्रा एवं धर्म-दण्ड से विशप के प्रतिष्ठापन की व्यर्थता एवं अनौचित्य को सिद्ध करता है क्योंकि ये आध्यात्मिक रहस्यों के प्रतीक थे तथा जैसा मैनेगोल्ड कहता है कि यह प्रथा थी कि वे राजा से प्राप्त करते थे बाद अभिषेक करने वाले बिशपों द्वारा पुनः प्रदान किए जाते थे यह एक प्रकार मूर्खता थी।[11]

मैनेगोल्ड दृढ़तापूर्वक लौकिक सत्ताधारियों द्वारा बिशपों की नियुक्ति के दावों तथा बिशपों द्वारा मुद्रा एवं दण्ड से प्रतिष्ठापन के विरुद्ध अपने तर्क प्रस्तुत करता है किन्तु यह स्पष्ट नहीं होता कि उसका अभिप्राय यह सिद्ध करना था कि नियुक्ति में लौकिक सत्ता का कोई भी हाथ नहीं है। वह राजा के स्वेच्छाचारी कार्य को अस्वीकार करता है। ऐसा प्रतीत नहीं होता कि उसके मन में अनिवार्यतः किसी भी प्रकार के समझौते की अभिलाषा नहीं थी।

1087 ई. में फेरेरा के विडो द्वारा उस ग्रन्थ के प्रणयन के जिस पर हम पहले विचार कर चुके हैं एक वर्ष बाद कार्डीनल ड्यूसडेडिट ने कलक्टियो कैनोनम (Collectio Canonum) नामक ग्रन्थ लिखा जिसमें उसने अनेक अधिकृत लेखांश प्रस्तुत किए जिनके द्वारा धार्मिक पदों के निर्वाचन की स्वतन्त्रता का प्रतिपादन किया गया था तथा लौकिक सत्ता द्वारा बिशपों की नियुक्ति की निन्दा की गई थी।[12] 1097 ई. में ड्यूसडेडिट ने एक नया ग्रन्थ प्रारम्भ किया जिसका शीर्षक लिबर कान्ट्रा इनवासोरेस एट साइमोनिएकास (Lib llu contra invasores et symonia os) था जिसमें इस प्रश्न पर वह विस्तारपूर्वक विचार करता है। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में उसका उद्देश्य बताता है कि वह उन धर्म विक्रयी तथा धार्मिक विभेदकारियों को उत्तर देना बताता है जो कहते हैं कि ऐसा चर्च राजकीय सत्ता के अधीन है तथा राजा को स्वविवेकानुसार धार्मिक पदों पर नियुक्ति का तथा चर्च सम्पत्ति को अपने आपको अथवा दूसरों को हस्तान्तरित करने का अधिकार है। यद्यपि वह प्रतिज्ञापित करता है कि इस प्रकार कहकर वह राजकीय गौरव का अपलाप नहीं कर रहा है क्योंकि राजा का पद भिन्न है तथा पुरोहित का पद उससे भिन्न है। प्रत्येक को दूसरे की आवश्यकता है, तथा

किसी को भी दूसरे के काम में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।[13]

अत वह तथाकथित प्रेरितिक विधान से वाक्यों को उद्धृत करना प्रारम्भ करता है।
Si quis episcopu s ecularibus potestatibus usus ecclesiam per ipsis obtineat depona ur et segregentur omnes qui illi Communicant

उसका विचार है कि यह नियम प्रेरितों द्वारा इस अनुमान पर लागू किया गया था कि एक युग ऐसा आएगा जबकि लौकिक सत्ता ईसाई धर्म को अंगीकार कर लेगी तथा अपनी सत्ता को चर्च पर लागू करने एवं अपनी इच्छा तथा सत्ता से पादरियों को नियुक्त करने को आकांक्षित होगी। वह इससे परिचित है कि इन नियमों की प्रामाणिकता पर संदेह किया गया है किन्तु वह यह प्रतिपादित करता है कि वे विभिन्न परिषदों एवं धर्माचार्यों द्वारा स्वीकार किए जाते रहे हैं तथा वह इस पर बल देता है कि बहुत समय तक चर्च ने इन परम्पराओं को अक्षुण्ण बनाए रखा है तथा प्रत्येक चर्च के पादरी एवं जनता ही अपने बिशप को चुनते रहे।[14] यह प्रथा तबतक चलती रही जबतक कि चर्चों की संख्या बहुत नहीं हो गई और वे धनवान नहीं हो गए तथा इसे पोप एवं सम्राटों द्वारा मान्यता प्राप्त रही। प्रथम सम्राट जिन्होंने इन परम्पराओं का उल्लंघन किया उनमें से वे जिनको वह यूटीशियन (Eutychian) कहता है उदाहरणार्थ जीनो तथा एनेस्टेशियस और उनका अनुकरण कुछ उत्तरकालीन पूर्वी रोमन सम्राटों ने किया। ड्यूसडेडिट इस तथ्य से परिचित है कि एक समय रोमन चर्च भी अभिषेक से पूर्व अपने बिशपों के निर्वाचन को राजाओं को सूचित करते थे। फिर वह अनेक पोप सम्बन्धी एवं परिषदीय विज्ञप्तियों को गिनाता है जिन्होंने लौकिक सत्ताधारियों के हस्तक्षेप का निषेध किया था तथा जिनके अनुसार निर्वाचन स्वतन्त्र होना चाहिए।[15] वह पोप निकोलस द्वितीय द्वारा पोप के चुनाव के सम्बन्ध में जारी की गई विज्ञप्ति की इस व्यवस्था के बारे में कुछ कठिनाई अनुभव करता है जिसमें यह कहा गया है कि सम्राटों को सूचना पोप के निर्वाचन के बाद परन्तु उसके अभिषेक से पूर्व देनी चाहिए। इस विज्ञप्ति की इस व्यवस्था के बारे में पहले वह यह तर्क प्रस्तुत करता है कि चाहे यह घोषणा में व्यक्त भी किया गया हो तो भी राजा तथा उनके सलाहकारों द्वारा बाद में निकोलस द्वितीय को पदच्युत करने के प्रयत्न सम्बन्धी आचरण के कारण और तत्पश्चात् पहले पारमा केडेलुअस तदनुरूप रेवन्ना के ग्यूबर्ट को पोप के विरोध में खड़ा करने के कारण अवैध हो गई है। दूसरे वह यह मानता है कि इस घोषणा की प्रतियों में इतनी जोड़-तोड़ हुई है कि वे एक-दूसरे से संगत नहीं हैं। तीसरे यदि निकोलस ने यह आज्ञा दी भी हो तो भी यह अवैध थी क्योंकि वह केवल एक अधिधर्माध्यक्ष था तथा बिशपों की परिषद् की सहायता से भी वह पाँच अधिधर्माध्यक्षों तथा हजारों आचार्यों द्वारा अभिघोषित एवं ईसाई सम्राटों द्वारा परिपुष्ट व्यवस्था को नहीं बदल सकता क्योंकि उनकी घोषणाओं में राजकीय अधिकारियों को बिशपों की नियुक्ति अथवा निर्वाचन में हस्तक्षेप का कोई भी अधिकार प्रदान नहीं किया गया है।[16] तत्पश्चात् वह पोप के लेखों एवं रोमन कानून से अनेक अंश उद्धृत करता हुआ यह सिद्ध करता है कि कोई भी कार्य जो अवैध रूप से और गलती से किया गया है अवैध घोषित करना चाहिए, अत निष्कर्ष निकालता है कि पोप निकोलस की आज्ञा अवैध थी।

वह प्रतिपादित करता है कि यह कहते हुए वह पोप की पावन स्मृति के विपरीत कोई असम्मानजनक बात नहीं कह रहा है क्योंकि वह भी मनुष्य था तथा यह सम्भव है कि वह कोई इस प्रकार का कार्य करने को राजी कर लिया गया हो जो कि वैधानिक एवं न्यायसंगत न हो तथा वह पोप बोनीफेस द्वितीय का एक दृष्टान्त देते हुए बताता है कि किस प्रकार उसने एक गलत जारी की गई विज्ञप्ति का रद्द कर दिया था तथा यह बताता है कि पोप निकोलस द्वितीय भी वैसा ही करता यदि उसने धर्माचार्यों की सगृहीत सम्मति को देखा होता एवं उनको अपनी मान्यता के विपरीत पाया होता।[17]

ह्यूसलैंडिट इसके बाद उस तर्क पर विचार करता है कि बिशप की नियुक्ति स्वेच्छापूर्वक लौकिक सत्ता द्वारा दीर्घकालीन प्रथा से स्वीकृत है और इसके उत्तर में कहता है कि विभिन्न प्रथाओं के प्रचलित होने पर उसी प्रथा को मान्यता दी जानी चाहिए जो कि प्रतिष्ठित युग जितनी पुरानी हो तथा लौकिक राजाओं द्वारा इस प्रथा में लायी गई विकृतियाँ इन अधिकारों को समाप्त नहीं कर सकती।[18] अन्त में वह यह बलपूर्वक कहता है कि राजाओं द्वारा धार्मिक पदों पर नियुक्ति ही धर्म विक्रय की कुप्रथा के प्रचलन एवं पादरियों द्वारा कर्तव्य की अवहेलना का कारण है क्योंकि वे राजसभाओं में अपनी अनुचित सेवाओं के मूल्य स्वरूप प्राथमिकता प्राप्ति के लिए भीड़ करते रहते हैं। वह इस तर्क को राजकीय गिरजों और उनके पादरियों पर आक्रमण के लिए प्रयुक्त करता है।[19]

ह्यूसलैंडिट की मान्यता है कि उस समय इन्हीं कारणों से ग्रेगोरी सप्तम ने सभी बिशप पदों एवं मठों की लौकिक नियुक्तियों को अवैध घोषित कर दिया था तथा घोषणा की थी कि उन सभी व्यक्तियों को जो प्रतिष्ठापन प्रदान करने का प्रयास करेंगे धर्म बहिष्कृत कर दिया जाएगा तथा वह 1080 ई. की रोम की परिषद् की घोषणा को उद्धृत करता है।[20]

यह उल्लेखनीय है कि ह्यूसलैंडिट उसी सिद्धान्त को कस्बों के गिरजाघरों पर व्यक्तिगत आश्रय के प्रश्न पर भी लागू करता है तथा यह मानता है कि कस्बे के पुरोहित को भी कस्बे के पादरियों एवं जनता द्वारा चुना जाना चाहिए तथा किसी को भी उनकी इच्छा के विपरीत नियुक्त नहीं करना चाहिए।[21]

यदि हम विवादास्पद साहित्य के उन प्रमुख तर्कों को संहृत करने का प्रयास करें जिन पर हम विचार कर आए हैं तो हम कह सकते हैं कि यद्यपि साम्राज्यिक दल के प्रतिनिधियों द्वारा बहुत कुछ कहा गया है जो कि बिशपों की नियुक्ति के सम्बन्ध में लौकिक सत्ता को व्यापक अधिकार देने का समर्थन करता है जिनका वे एक लम्बे समय तक उपयोग भी करते रहे हैं तथापि साम्राज्यिक दल के समर्थकों ने पहले में इसे स्वीकार कर लिया था कि बिशप की स्थिति के लौकिक एवं धार्मिक पक्षों में एक अनिवार्य अन्तर है तथा यह माना था कि धार्मिक नियुक्ति को निर्धारित करने के अधिकार के बारे में लौकिक सत्ता का दावा शुद्ध रूप से लौकिक पक्ष से ही सम्बद्ध है। दूसरी ओर ग्रेगोरी सप्तम के समर्थक कभी-कभी यह स्वीकार करने के पूर्णतया विरुद्ध प्रतीत होते हैं कि लौकिक सत्ता का भी धार्मिक पदों पर नियुक्तियों में कोई भी स्थान हो सकता है किन्तु उनका मुख्य बल किसी सत्ता द्वारा स्वेच्छानुसार नियुक्ति करने के निरंकुश अधिकार के

खण्डन पर तथा धर्मप्रदेश के पादरियों और जनता द्वारा स्वतन्त्र चुनाव करने के अधिकार पर है यद्यपि उनके द्वारा भी लौकिक सत्ता के दुरुपयोग के कारण होने वाले व्यावहारिक दोषों पर बहुत ध्यान दिया गया है। इस समय तक उन्होंने साम्प्रदायिक दल के उस तर्क पर जो कि उच्च धर्माधिकारियों की लौकिक पदस्थिति पर बल देता था न तो विमर्श किया था और न इसका खण्डन ही किया था।

ग्यारहवीं शताब्दी की समाप्ति तक यह संघर्ष एक भिन्न स्वरूप प्राप्त करने लगा तथा अब हम इस पर विचार करेंगे।

सन्दर्भ

1 के फ्राक ने M G H Libelli De Lite Vol I पृ 280–284 पर इसका विस्तृत विवेचन किया है।
2 W n ch f T ier Epist la 8
3 Cf M G H Lib De Lit vol 1 pp 529 532
4 W do D S isma e H ld b and L bell D L te 1 p 564
5 Id d d p 566
6 Man g ld Ad G beha d m 50
7 Id d 53
8 Id d 55
9 Id d 56
10 Id id 57 63
11 Id d 64
12 Ca d al Deusd d t C lle t o Can on m e g 93 96 97 196 iv 11 16 17 20 146
13 D sded t L b llus contra invaso res tc p logus
14 Id d i 3 9
15 Id d i 11
16 Id id 12
17 Id d 14
18 Id d 15
19 Id d i 16 cf p 79
20 Id id i 2

चतुर्थ अध्याय

"प्रतिष्ठापन" प्रश्न पर वादविवाद–(2)

हम ग्यारहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों से लेकर पस्कल द्वितीय (Paschal II) तथा हेनरी पंचम (Henery V) द्वारा समझौते के प्रयत्नों तथा समय के विकास पर विचार करना होगा। इस युग की विशेषता एक मध्यस्थतावादी मत का विकास है जो दोनों दलों के तर्कों के युक्ति-संगत तत्त्वों को विभिन्न रूपों में स्वीकार करता है। मध्यस्थ दल की अपेक्षा मध्यस्थ मत शब्द का ही प्रयोग करना अधिक श्रेष्ठ है क्योंकि यह हम उन मनुष्यों में पाएंगे जिनको अपने काल के अधिक सामान्य संघर्ष के सम्बन्ध में जिस पर हम बाद में विचार करेंगे कभी किसी एक महान् दल का कभी दूसरे का समर्थन करते हुए अथवा कभी कभी पूर्णतः किसी भी दल से सम्बन्ध न रखते हुए पा सकते हैं।

वस्तुतः में यह प्रतीत हो सकता है कि ग्रेगोरी सप्तम की 1086 ई० में मृत्यु एवं हेनरी चतुर्थ की 1106 ई० में मृत्यु ने सारी परिस्थिति को ही बदल दिया हो किन्तु जहाँ तक प्रतिष्ठापन का प्रश्न है यह सही नहीं था। ग्रेगोरी सप्तम के उत्तराधिकारियों विशेषत पोप अरबन द्वितीय (Pope Urban II) ने ग्रेगोरी सप्तम द्वारा अपराजक प्रतिष्ठापन के निषेध को दृढ़तापूर्वक बनाए रखा जबकि हेनरी पंचम ने भी पिता की मृत्यु के बाद उसके प्रति अपने अधिकार को बनाए रखा। तथापि यह सम्भव है कि चाहे विरोधी दलों की औपचारिक रूप में तथा बाह्यतः स्थिति वैसी ही दिखाई देती हो किन्तु मूल विरोधियों के हट जाने से परिस्थितियों में एक बड़ी सीमा तक परिवर्तन आ गया तथा मध्यस्थतावादी प्रवृत्तियों को विकसित होने तथा बल प्राप्त करने का अवसर सुगम हो गया।

जिस लेखक में हम यह मध्यस्थतावादी प्रवृत्ति स्पष्टतः दिखाई देती है वह सम्भवतः शार्त्रे (Chartres) का बिशप ईवो (Ivo) है। ईवो अपने युग का सबसे विद्वान व्यक्ति था जैसा कि उसके महान् वैधानिक ग्रन्थों डेक्रेटम (Decretum) तथा पेनोरमिया (Panormia) से पर्याप्त रूप में विदित होता है। उसके पत्रों से स्पष्ट है कि वह प्रतिष्ठापन के प्रश्न पर संघर्ष से उत्पन्न अवस्था से सन्तुष्ट नहीं था तथा वह बिशपों की नियुक्ति में लौकिक सत्ता के योगदान के पूर्ण बहिष्कार को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था। लियोन्स

के आर्चबिशप ह्यू (Hugh) को जिसे वह फ्रांस का धर्माधिपति तथा पोप का दूत मानता है 1096–97 ई में लिखे गए एक पत्र में वह डेम्बर्ट (Daimbert) की सेन्स (Sens) के आर्चबिशप पद पर नियुक्ति से उठने वाले प्रश्न पर विचार करता है। सर्वप्रथम वह लियोन्स के आर्चबिशप द्वारा सेन्स के आर्चबिशप पर प्रभुत्व की मांग का शास्त्र सम्मत न होने के कारण विरोध करता है[1] तदनंतर ह्यू द्वारा उसके अभिषेक पर इस आधार पर उठाई गई आपत्ति का कि उसने फ्रांस के राजा से प्रतिष्ठापन प्राप्त किया है विचार करता है। वह यह कहकर प्रारम्भ करता है कि उसे कोई विश्वसनीय सूचना नहीं है कि डेम्बर्ट ने वैसा किया है साथ ही यह भी मानता है कि यदि उसने वैसा किया भी हो तो यह धर्म का उल्लंघन नहीं है। पोपों ने स्वयं उन व्यक्तियों के जिनका विधिवत् निर्वाचन हुआ है बिशप पद प्रदान करने में राजाओं का अधिकार स्वीकार किया है तथा वह यह समझता है कि पोप अरबन द्वितीय ने केवल अयाजक प्रतिष्ठापन का निषेध किया है न कि जनता के अध्यक्ष के रूप में राजा द्वारा निर्वाचन में योगदान अथवा पद प्रदान का भी निषेध किया है। वह इस पर बल देता है कि यह पूर्णतया महत्वहीन है कि किस रूप में पद प्रदान किया गया—हाथ से या शब्दों से या धर्म दण्ड से क्योंकि राजाओं का प्रयोजन कोई आध्यात्मिक वस्तु प्रदान करना नहीं था किन्तु उनका अभिप्राय या तो निर्वाचनकर्त्ताओं की अभिलाषा से अपनी सहमति व्यक्त करना है अथवा चर्च की सम्पत्ति और अन्य भौतिक वस्तुओं को उन व्यक्तियों को सौंपना है जिनका निर्वाचन हो चुका है तथा वह संत आगस्तीन के सुपरिचित शब्दों को उद्धृत करता है जिनमें यह कहा गया है कि सभी सम्पत्ति मानवीय कानूनों से नियन्त्रित होती है। पुनः जबकि वह इसको प्रतिपादित करता है कि उसका अभिप्राय पोप के निर्णयों के विरुद्ध अपनी सत्ता स्थापित करना नहीं है जहां तक कि ये तर्कसंगत तथा धर्माचार्यों के अधिकारों के अनुकूल हैं वह यह भी मानता है कि ये नियम अर्थात् राजाओं द्वारा प्रतिष्ठापन का निषेध भी शाश्वत कानूनों की किसी व्यवस्था पर निर्भर नहीं किन्तु केवल पोप के प्रमाण पर निर्भर है।[2] (Quia ea illicita maxime facit presidentium prohibito)।

ईवो द्वारा अपने पत्र में अंगीकार की गई स्थिति बहुत उल्लेखनीय तथा महत्वपूर्ण है। सर्वप्रथम वह अयाजकों द्वारा प्रतिष्ठापन के इस निषेध को जिसे हम प्रशासनिक नियम कह सकते हैं मानता है जिसे जैसा सुविधाजनक हो चाहे क्रियान्वित किया जाए अथवा नहीं और वह इसे चर्च के कानूनों का स्थायी अंग नहीं मानता है। दूसरे वह इस निषेध का यह अभिप्राय नहीं मानता कि राजा का धार्मिक पदों की नियुक्ति में कोई स्थान नहीं है वह मानता है कि जनता के अध्यक्ष के रूप में निर्वाचन में उसका योगदान हो सकता है तथा उसे संपुष्टि या पद प्रदान करने का अधिकार है। तीसरे राजा यह जिस प्रकार करे—यह स्वरूप उसके मत में महत्वहीन है उसका धार्मिक अधिकारों से कोई भी सम्बन्ध नहीं है किन्तु उसका अर्थ या तो चुनाव से सहमति की अभिव्यक्ति के रूप में या उसे धर्म प्रदेश की भौतिक सम्पदाओं को प्रदान करने के रूप में लिया जाना चाहिए और ईवो इस बारे में स्पष्ट है कि ये राजा द्वारा ही प्रदान किए जाने चाहिएं क्योंकि सभी सम्पदा लौकिक सत्ता के अधिकार में है।

कुछ वर्षों बाद सम्भवत 1111 ई अथवा 1112 ई म ईवो सेन्स प्रान्त के प्राच विशप तथा अन्य विशपो के नाम स लियोन्स के प्राचविशप आयोसबरेनस को लिखे एक पत्र म पुन उसी प्रश्न पर विचार करता है। आयोसबरेनस ने पडोसी प्रान्तों के प्राच विशपो एव विशपो की एक परिषद् प्रयाजको द्वारा प्रतिष्ठापन के प्रश्न पर विचार करने के लिए बुलाई थी। ईवो अपने प्रान्त के नाम पर उस परिषद् म सम्मिलित होना इस आधार पर अस्वीकार कर देता है कि धर्माधिपति के अधिकार म राज्य की परिषद् का आह्वान करना नही है साथ ही वह पस्कल द्वितीय के विरुद्ध 1111 ई० म जैसा हम आगे देखेंगे प्रतिष्ठापन का अधिकार सम्राट हेनरी पचम को प्रदान कर दिया था इस काय की सावजनिक चर्चा अथवा निन्दा करने का भी विरोध करता ह किन्तु ईवो तथा दूसरे विशपो को यह यह सूचित कर चुका था कि उसने उस अधिकार को वापिस ले लिया था तथा उसने वह स्वीकृति बाध्य किये जाने पर ही दी थी। ईवो कहता ह कि यह सही नहीं ह कि वे पोप क कार्यों पर विचार करने के लिए परिषद् म एकत्रित हो क्योंकि जबतक वह धम से विचलित न हो तबतक उसका न्याय अथवा निन्दा करने का उनको कोई अधिकार नही ह।[3] वह इस पर बल देता ह कि प्रतिष्ठापन का प्रश्न धमपम या शाश्वत कानून का प्रश्न नही ह किन्तु जसा उसने अपने पूव पत्र म कहा था यह प्रशासनिक व्यवस्था का प्रश्न ह अत यह तकसगत ह कि पोप विभिन्न व्यक्तियो को प्रतिष्ठापन प्राप्त करने क अपराध स दोष मुक्ति की अनुमति उनके द्वारा धम दण्ड समपण कर पुन पोप के हाथो प्राप्त करने पर प्रदान करें। यदि कोई प्रयाजक यह सोच कि दण्ड समपण एव प्राप्ति म किसी प्रकार का सस्कार निहित ह या वह धार्मिक सस्कार का रूप प्रदान कर सकता ह तो वह अधमर्मी ह। अन्त म वह अपनी राय इस प्रकार देता ह कि जहा तक प्रयाजक द्वारा प्रतिष्ठापन दूसरे व्यक्ति के अधिकारो का अतिक्रमण है इसकी समाप्ति यदि यह बिना धार्मिक फूट के हो सके कर देनी चाहिए किन्तु यदि इसका यही परिणाम होगा तो ऐसी कायवाही को स्थगित कर देना चाहिए।[4]

ईवो न इस प्रकार पुन स्पष्ट कर दिया कि वह प्रयाजक प्रतिष्ठापन के प्रश्न को चच की प्रशासनिक व्यवस्था स सम्बन्धित मानता था आवश्यक एव शाश्वत कानून का अग न ी क्योंकि उसका विशप क आध्यात्मिक पद से कोई सम्बन्ध नहीं ह। तथापि यह प्रतीत होता ह कि वह इस निष्कष पर पहुँचा कि धम दण्ड द्वारा प्रयाजक प्रतिष्ठापन लोकनिन्दा का कारण ह अत अच्छा हो यदि किसी गम्भीर अव्यवस्था अथवा सघष को उत्पन्न किए बिना किया जा सके कि इस समाप्त कर दिया जाए। लियोन्स के आयोसबेरेनस ने अपने उत्तर म लिखा ह कि यद्यपि प्रतिष्ठापन का काय धम विरुद्ध नहीं ह तथापि यह मन कि यह अनुताप्त हो सकता ह धम विरोधी ह।[5]

यहाँ शात्र का ईवो उन लोगो के बीच जो कुछ मिलाकर पोप क दल के समथक थे एक मध्यस्थतावादी प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है तथा जसा कि हम देख चुके हैं कि वह स्पष्टतया यह कहता है कि वह प्रयाजक प्रतिष्ठापन क प्रश्न पर पोप के काय की आलोचना की धृष्टता नही कर रहा है हम फ्यूरी क ह्यू को उनका सच्चा प्रतिनिधि मान सकते हैं जो पोप क काय के आलोचक थे किन्तु प्रतिष्ठापन के प्रश्न पर जिनकी स्थिति

मध्यस्थतावादी थी। उसका महत्वपूर्ण ग्रन्थ De Regia Potestate et Sacerdotali Dignitate जिसका हम बाद में पूर्ण वर्णन करेंगे बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में लिखा गया था तथा इंगलैण्ड के हेनरी प्रथम को समर्पित किया गया था। उसमें वह यह कहता है कि राजा को (Praesulatus Honor m) प्रदान करने का अधिकार है जबकि आर्चबिशप आत्मा का उपचार प्रदान करता है तथा वह मानता है कि यह प्रथा उसके समय तक प्रचलित थी। जबकि पादरी एवं जनता चर्च की प्रथा के अनुरूप बिशप को चुनें तो राजा को धर्मद्रोह पूर्वक चुनाव में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए किन्तु वैध रूप में अपनी स्वीकृति यदि निर्वाचित प्रतिनिधि उचित रूप से योग्य है प्रदान करनी चाहिए किन्तु यदि वह अनुपयुक्त व्यक्ति है तो राजा और जनता दोनों को ही अपनी स्वीकृति प्रदान न करने का अधिकार है। चुनाव के बाद राजा को सभी भौतिक सम्पदाएं प्रदान करना चाहिए किन्तु मुद्रा और दण्ड नहीं जो कि आर्चबिशप द्वारा ही दिए जाने चाहिए अन्त वह कहता है कि इस प्रकार लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों सत्ताओं के पास वह बना रहेगा जो उनके अधिकार की वस्तु है।[6]

ह्यू की स्थिति सम्भवत साभिप्राय सभी वादविषयों पर स्पष्ट नहीं है। वह निश्चयपूर्वक नहीं कहता कि निर्वाचन स्वयं पादरी एवं जनता द्वारा ही किया जाए किन्तु राजा की स्थिति के अपने विवरण में वह स्पष्ट कर देता है कि राजा को स्वेच्छा से कार्य नहीं करना चाहिए। वह ईवो की भांति बिशप के आध्यात्मिक-पद जिसे आर्चबिशप द्वारा प्रदान किया जाना चाहिए तथा उनकी लौकिक स्थिति में जिसे वह राजा से प्राप्त करता है बहुत स्पष्टतया विभेद करता है तथा वह यम पैन की भौतिक सम्पदाओं को प्रदान करने में राजा द्वारा दण्ड एवं मुद्रा के प्रयोग की निन्दा करता है।

बिशपों के प्रतिष्ठापन पर एक बहुत महत्वपूर्ण ग्रन्थ सुरक्षित रखा है जो जैसा विचार है 1109 ई का है।[7] इस ग्रन्थ का लेखक अज्ञात है किन्तु यह स्पष्ट है कि वह साम्राज्यिक दल का था वास्तव में यह भी मत है कि यह ग्रन्थ उस पक्ष के समझौते की सम्भावना के न्यूनाधिक सुविचारित सुझाव का प्रतिनिधित्व करता है।[8] लेखक पूर्व दृष्टान्तों की भव्य श्रृंखला प्रस्तुत करके लौकिक सत्ता के बिशप पद पर नियुक्ति के ऐतिहासिक अधिकार की पुष्टि करता है। वह पोप हेड्रियन प्रथम की अप्रामाणिक घोषणा को उद्धृत करता है जिसे जैसा कि हम देख चुके हैं फेरेरा के विडो[9] ने भी प्रस्तुत किया था किन्तु यह सिद्ध करता है कि इसमें बहुत पूर्व ही सम्राटों राजाओं और राजभवनों के मेयरों द्वारा बिशपों की नियुक्ति तथा प्रतिष्ठा होती थी तथा यह प्रथा पोप ग्रेगोरी महान् द्वारा स्वीकार की गई थी।[10] वह इस पर बल देता है कि यह निष्प्रयोजन है कि प्रतिष्ठापन राजा द्वारा शब्दों से अधिकार दण्ड से अथवा किसी अन्य तरीके से ही किया जाय किन्तु वह सुझाव देता है कि अधिकार-दण्ड अधिक उपयुक्त प्रतीक है क्योंकि इसके दोनों प्रकार के अर्थ होते हैं भौतिक भी एवं आध्यात्मिक भी। लेखक स्पष्टत लौकिक सत्ता द्वारा बिशप के प्रतिष्ठापन के अधिकार का सम्बन्ध चर्च की भौतिक सम्पदा एवं शक्ति से जोड़ता है। वह कहता है कि कान्सटेण्टाइन के युग तक चर्च निर्धन था किन्तु अब ईसाई सम्राटों ने उसे बहुत अधिक भौतिक सम्पत्ति तथा शक्तियाँ प्रदान कर दी

तो यह उचित ही था कि राजा जो जनता में से एक है तथा जनता का अध्यक्ष है बिशप को जिसको उसने राज्य की इतनी शक्तियाँ प्रदान कर रखी हैं प्रतिष्ठित करे एवं गद्दी पर बठाए। यदि बिशप उतने ही निधन रहते जैसा कि ग्रेगोरी महान् ने एक बिशप का वर्णन करते हुए लिखा है कि उनके पास एक शीतकालीन लबादा भी नही था तो स्थिति कुछ भिन्न होती तथा उस दशा में उस व्यक्ति से श्रद्धा एवं निष्ठा की शपथ ग्रहण करने की कोई आवश्यकता नहीं होती।[11]

लेखक राजा के प्रतिष्ठापन के अधिकार का सम्बन्ध भौतिक धन सम्पत्ति के स्वामित्व से जोडता है तथा उस स्वरूप को महत्त्व नहीं देता जिसमें आगत यह सम्पत्ति हो किन्तु यह इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि श्रद्धा एवं शपथ से संयुक्त प्रतिष्ठापन जिस रूप में भी हो अभिषेक से पूर्व किया जाना चाहिए। यह इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि धार्मिक पदों पर नियुक्ति में राजकीय सहमति की स्वतन्त्रता को पुष्ट करने के लिए कृतसंकल्प है। उसका सुझाव कि यदि चर्च निधन बना रहता तो राजकीय दावे को अस्वीकार किया जा सकता था संघर्ष को हल करने की दिशा में पस्कल द्वितीय के आश्चर्यजनक सुझाव से कहाँ तक सम्बद्ध हो सकता है इसे जाँचने का हमारे पास कोई साधन नहीं है तथा उस पर हम अगले अध्याय में विचार करेंगे।

अनाम लेखक यह कहता है कि राजाओं के बिशपों के प्रतिष्ठापन के अधिकार को छीनने के पोप के प्रयत्न का परिणाम ईसाई लोगों में अनन्त बड़े भय एवं संकोच को निश्चितरूपेण उत्पन्न करेगा। वह स्वीकार करता है कि यदि इन अधिकारों का दुरुपयोग किया जाए तो पोप को इसमें सुधार लाना चाहिए किन्तु वह निवेदन करता है कि पोप इस पर बल देता है कि यदि वे गलती करें तथा बिशपों की नियुक्ति में स्वेच्छाचार बरतें तो भी उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिए और यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि सर्वों के पादरी का निर्णय किसी मनुष्य द्वारा नहीं किया जा सकता वह उन्हें एक से अधिक बार स्मरण दिलाता है कि जब जब पोप के निर्वाचन के सम्बन्ध में झगड़े हुए हैं तब तब वे पूर्वी रोमन या फ्रैंक सम्राटों के हस्तक्षेप से ही सुलझे हैं।[12]

पिछले ग्रन्थ में हम इस मान्यता के सबसे कट्टर समर्थक रूप में कि राजकीय सत्ता को नियन्त्रित करना अपवित्र था[13] क्रेटिनो के ग्रेगरी की स्थिति पर विचार कर चुके हैं अतः यह आश्चर्यजनक नहीं कि वह बिशपों के प्रतिष्ठापन के राजकीय विशेषाधिकार का दृढता से समर्थन करता है। तथापि उसके मामले में भी यह उल्लेख करना लाभकर होगा कि वह प्रतिष्ठापन का क्या अर्थ समझता है तथा उसके समर्थन में दिए गए उसके तर्कों का क्या स्वरूप है। उसका ग्रन्थ ओरथोडाक्सा डिफेंसियो इम्पारियलिस (Ortho doxa Defensio Imp rialis) हेनरी पंचम के पदारोहण के बाद लिखा गया था तथा यह माना जाता है कि उसका काल 1111 ई होना चाहिए लगभग वही समय जबकि हेनरी पंचम ने पस्कल द्वितीय को कुछ समय के लिए प्रतिष्ठापन का अपना अधिकार मानने को बाध्य कर दिया था।

ग्रेगोरी वास्तव में चरम साम्राज्यिक स्थिति का प्रतिनिधित्व तथा राजा का चर्च के अध्यक्ष के रूप में वर्णन करता है। कभी वह ओल्ड टेस्टामेन्ट से इसका समर्थन करता है

तथा सत क्रिसोस्टम (St Chrysostom) के नाम से आरोपित एक वाक्य से भी जो अप्रामाणिक प्रतीत होता है।[14] हम इस धारणा पर बाद म विचार करना होगा। वह तक प्रस्तुत करता है कि यदि यह ऐसा है तो यह तकसम्मत नही है कि सम्राट को चच के धर्माधिकारियो क पद पर जो कि उसके समासद हैं नियुक्ति स वचित रखा जाए तथा यह उपयुक्त प्रतीत होता है कि बिशप द्वारा अभिषेक से पूव उनको सम्राट द्वारा अधिकार दण्ड एव मुद्रा स प्रतिष्ठित किया जाए।[15]

पुन वह तक करता है कि यदि पोप क विशिष्ट आभूषण कास्टटाइन द्वारा प्रदान किए गए थे इसके लिए वह कास्टेटाइन के दान पत्र (Donation of Constantine) के एक अश को उद्धत करता ह तो यह और भी अधिक उपयुक्त है कि सम्राट बिशप को मुद्रा एव दण्ड प्रदान कर सक।[16] किन्तु वह यह स्पष्ट करने के लिए सावधान है कि प्रतिष्ठापन किसी आध्यात्मिक पद या अधिकार का नही किन्तु केवल लौकिक सम्पत्ति एव अधिकार का प्रतिनिधित्व करता है।[17] अनत वह तक करता है कि एक समय था जबकि चच निधन थे अब वे समृद्ध हैं तथा अपने अधिकार म वे सनिक एव सामन्तो को रखते हैं तथा यह स्थिति राजा क लिए बहुत भयावह होगी यदि वे उसके नियन्त्रण म न रहें इसलिए चच क धर्माधिकारियो का जिन्हे यह अधिकार राजकीय या साम्राज्यिक सत्ता स प्राप्त है अपनी एव अपने सनिको की राजा क प्रति निष्ठा का प्रतिज्ञा करनी चाहिए।[18]

वास्तव म पोप क दल का भी एक लेखक इसी युग म था जिसकी स्थिति हम सम्बन्ध म अनम्य माना जा सकती है वह लूका क बिशप रेंगरियस (Rangerius Bishop of Lucca)। अपन छन्दोबद्ध ग्रन्थ De Anulo et Baculo म वह मानता ह कि धम दण्ड एव मुद्रा पवित्र प्रतीक हैं जिनको एक साधारण व्यक्ति के हाथो म स्वीकार नही करना चाहिए वह अपने विचार क अनुसार उनक आध्यात्मिक महत्त्व का वणन करता ह। उसक अनुसार मुद्रा बिशप एव चच क सगम का प्रतीक है तथा दण्ड अनुशासनात्मक पादरी के पद का।[19] दूसरे स्थान पर इन व्याख्याओ को प्रस्तुत करने क बाद वह इस अस्वीकार करता ह कि य औपचारिक रूप म राजाओ द्वारा दिए गए हैं। वह मानता ह कि पादरी का दण्ड कदापि तलवार क अधीन नही हो सकता अत वह बिशप द्वारा राजा के प्रति शपथ ग्रहण का प्रबल विरोध करता है तथा इस मान्यता का खण्डन करता है कि चच की भौतिक सम्पदा राजा को उसके ऊपर को अधिकार प्रदान करती ह क्योकि ये ईश्वर को दी गई थी तथा पुन मांगी जा सकती है।[20] पुन वह कास्टटाइन के दान पत्र का और पोप को उसके द्वारा प्रदान किए गए महान् सम्मान एव उपहारो का उल्लेख करता है। किन्तु दृढ़तापूर्वक यह अस्वीकार करता है कि इनक कारण पोप को उसकी आध्यात्मिक सत्ता मिली है जो कि जसा वह मानता ह पहले से ही उसके पास थी।[21]

इसमे कोई सन्देह नही कि रेंगेरियस पूणतया मुद्रा एव दण्ड से प्रतिष्ठापन के बारे म अनम्य है तथा चच की भौतिक सम्पदा के बारे मे उसका दृष्टिकोण सराधक नही है।

अब यदि हम उन लेखको क अधिक महत्त्वपूण सिद्धान्तो को जिन पर हम अभी विचार कर आए हैं एकत्रित करने का प्रयत्न करें तो यह कहना तकसगत प्रतीत होगा

कि समग्र रूप स व एव मध्यस्थ प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं अथवा कम स कम वा विषयक प्रश्नों के प्रति स्पष्टतर बाघ का परिचय देते हैं। ईवो यद्यपि प्रधिकांशत पोप क दल का समथक है तथापि वह दूसर दल स इस बात म सहमत है कि राजा का धार्मिक पदों की नियुक्ति म प्रवश्य कोई अधिकार है जबकि प यूरी का ह्यू मानता है कि दण्ड एव मुद्रा के प्रतिष्ठापन की विधि छोड देनी चाहिए तथा ट्रक्टेटस का स्पष्टत रचयिता भी इसस सहमत है कि वसा ही करना चाहिए। केवल केटीनो का ग्रेगोरी यह मानता है कि इसे बनाए रखना चाहिए वह चच क मध्यस्थ के रूप म राजा की स्थिति के बारे म एक सिद्धान्त प्रचलित करता है जिस पर हम बाद म विचार करग किन्तु वह भी इसस सहमत है कि प्रतिष्ठापन किसी आध्यात्मिक शक्ति का प्रतिनिधित्व नहीं करता किन्तु उसका सम्बन्ध केवल भौतिक धन सम्पत्ति स है। वास्तव म यह स्पष्ट है कि लौकिक दावे के समथक इस बात म अधिकाधिक परिचित होते जा रह थे कि उच्चतर पादरियों क पद क राजनतिक महत्व पर ही यह दावा निभर था और य कटीनो क ग्रेगोरी तथा ट्रक्टेटस द्वारा भली भांति व्यक्त किया गया है।

सन्दर्भ

1 I o f Chart Ep t la ad H g m Lib D Lite ol t
2 Id d
3 I of Ch rt Ep d los ra n m Lib D Lite I
4 Id d
5 Iosce n Re po Lb De Lit I
6 H gh f Fle y T t t d R g a Px t t t S d l D g t t 15
7 Cf L b D L ol p 495
8 Cf G rs P H d tsch In est t rst t t K g He h V
9 T tat d I t t Epi o- porum Lib D L t p 498
10 Id d p 499 501
11 Id d p 501
12 Id d p 50_
13 Cf cl p 12
14 G g ry f Cat O th d D f Impe I
15 Id d 3
16 Id d 4
17 Id d 5
18 Id d 7
19 R ge s Liber de A ulo t B cul L b D A I et B cul Lib D L t I p 509
20 Id d 860
21 Id d 1107

पंचम अध्याय

पैस्कल द्वितीय तथा हेनरी पंचम

अब हम प्रतिष्ठापन विवाद के निश्चित समझौते के प्रथम प्रयत्न के इतिहास एवं स्वरूप पर विचार करना चाहिए जो वास्तव में अपनी निर्भीकता एवं साहस के कारण आश्चर्यजनक था। क्योंकि पैस्कल द्वितीय द्वारा पद चिह्न अर्थात् विशेषकर बिशपों एवं मठाध्यक्ष के पद का सम्पूर्ण अर्ध राजनैतिक स्थिति एवं विशेषाधिकारों के समर्पण का प्रस्ताव पोप की ओर से अपने अधिकार में विद्यमान भौतिक सत्ता को सौंप कर चर्च की आध्यात्मिक स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के निश्चित प्रयत्न का प्रतिनिधित्व करता है।

इन वर्षों के जटिल इतिहास का विवेचन करने से पूर्व यह देखना उपयुक्त होगा कि फ्रांस एवं इंग्लैण्ड में पोप एवं लौकिक सत्ताएं बिशपों की नियुक्ति के प्रश्न पर एक निश्चित समझौते तक पहुँचने में समर्थ हो गयीं।

ऐसा प्रतीत होता है कि फ्रांस में पोप द्वारा प्रतिष्ठापन का निषेध धीरे धीरे स्वीकार कर लिया गया तथा सिद्धान्त रूप में निर्वाचन का अधिकार स्वीकृत हो गया यद्यपि यह भी स्पष्ट है कि स्वीकृति या संतुष्टि का अधिकार राजा ने नहीं छोड़ा।

इंगलैंड में एन्सलम ने विलियम रूफस की मृत्यु के पश्चात् 1100 ई० में लौट कर प्रतिष्ठापन एवं राजा के प्रति समादर प्रश्न पर कट्टर रुख अपनाया उसने समादर प्रदान करने से अस्वीकार कर दिया तथा उन बिशपों का अभिषेक करना अस्वीकार कर दिया जिन्होंने राजा से मुद्रा एवं धर्म-दण्ड द्वारा प्रतिष्ठापन प्राप्त किया था। उसे पुनः 1103 ई० में इंगलैंड छोड़ना पड़ा किन्तु उसके हेनरी प्रथम से सम्बन्ध कभी भी विच्छिन्न नहीं हुए तथा अन्ततः एक समझौता हो गया यद्यपि हम उसके समस्त विवरण के बारे में निश्चित नहीं हो सकते।[2]

एक वक्तव्य जिसके बारे में हम निस्संदेह पूर्ण विश्वास रख सकते हैं एन्सलम का है पोप पैस्कल को लिखे गए एक पत्र में जिसमें वह सूचना देता है कि राजा ने अपने चर्चों के प्रतिष्ठापन के स्वत्व को परित्याग किया है तथा राजा In personis eligendis nullaten propria utitur voluntate sed religiosorum se penitus ommittit consilio[3]

इडमर (Eadmer) 1107 ई. की लन्दन की परिषद् में हुए समझौते के बारे में दो विवरण देता है। हिस्टोरिया नोवोरम (Historia Novorum) में वह सूचित करता है कि राजा ने औपचारिक रूप में मुद्रा एवं दण्ड द्वारा प्रतिष्ठापन को त्याग दिया है तथा एन्सलम ने यह वादा किया है कि किसी को भी इस कारण अपने गौरव से वंचित नहीं किया जाएगा कि उसने राजा को समादर प्रदान किया है। अपने एन्सलम के जीवन चरित्र में वह लिखता है—*Rex enim ante-cessorum suorum usu relicto nec personas quae in regiment ecclesiarum sumebantur per se elegit nec eas per dationem virgae pastoralis eccles is quibus praeficiebantur investivit*[4]

चुनाव के बारे में यह वक्तव्य स्पेलमेन (Spelman)[5] द्वारा उद्धृत क्रायलैण्ड की हस्तलिखित प्रति (Croyland MSS) से पुष्ट होता है किन्तु मामसबरी[6] के विलियम तथा ह्यू ग कैन्टर[7] (Huge Cantor) द्वारा इसका पूर्णतया खण्डन किया गया है।

एन्सलम तथा हेनरी के बीच हुए समझौते की शर्तों के बारे में इसके सिवाय कि हेनरी ने मुद्रा एवं दण्ड द्वारा प्रतिष्ठापन करने का दावा छोड़ दिया था निश्चिततापूर्वक नहीं कहा जा सकता जबकि जैसा एन्सलम के पत्र से प्रतीत होता है राजा ने चुनावों में स्वेच्छया हस्तक्षेप से भिन्न होना स्वीकार कर लिया तथा जैसा 1106 ई. में एन्सलम को लिखे गए पत्र से विदित होता है पश्कल द्वितीय ने अनिच्छा से इस सुविधा के अस्थायी होने की आशा करते हुए अनुमति दे दी कि बिशप राजा के प्रति समादर कर सकते हैं।[8]

हेनरी चतुर्थ की 1106 ई. में मृत्यु होने के बाद उसके पुत्र हेनरी पंचम ने जो अभी तक पिता के विरुद्ध पोप के दल के साथ था बिशप पद पर नियुक्तियाँ करने तथा संभवतः उनको प्रतिष्ठापन प्रदान करने की प्रथा पुनः प्रारम्भ कर दी। पोप पश्कल द्वितीय ने जो 1099 ई. में अरबन द्वितीय का उत्तराधिकारी बना ग्रैगोरी सप्तम तथा अरबन द्वितीय की नीति बनाए रखी तथा समय समय पर अयाजक प्रतिष्ठापन के निषेध को दोहराया। इसलिए इस महान् विवाद का कोई समझौता नहीं हुआ किन्तु हेनरी के पदारोहण के बाद एक गोष्ठी की व्यवस्था करने के प्रयत्न हुए ताकि इन विषयों पर विचार किया जाए तथा संभव हो तो किसी हल को ढूंढा जाय।[9]

हम इन वर्षों में घटित होने वाली घटनाओं अथवा समझौता-वार्ता का विस्तार से अध्ययन नहीं कर सकते किन्तु हमें उनकी कुछ अधिक महत्वपूर्ण अवस्थाओं को देखना चाहिए। अक्टूबर 1106 ई. की ग्वासटल्ला (Guastalla) की परिषद् में पश्कल द्वितीय ने अयाजक प्रतिष्ठापन के निषेध को दोहराया परन्तु साथ ही हेनरी पंचम के प्रतिनिधियों के साथ यह भी निश्चित किया कि वह शीघ्र ही जर्मनी आयेगा।[10] परन्तु जैसा जीनबट ने अपने इतिवृत्त (क्रानिकल) में संकेत किया है यह देखकर कि राजा एवं जर्मनी का दृष्टिकोण अनिश्चित है वह फ्रांस की ओर चला गया। हेनरी जर्मनी में सम्बद्ध प्रतिष्ठापन के विषय में जर्मनी क्षेत्र के बाहर हुई परिषद् में औपचारिक विचार पर सहमत नहीं हुआ।[11] किन्तु शीघ्र ही मई 1107 ई. में शालों (Chalons) में एक अनौपचारिक भेंट हुई तथा इस भेंट में जिसका पर्याप्त रूप से विस्तृत विवरण एबट जुगर (Abbot Suger) ने प्रस्तुत किया है ट्रीर के आर्चबिशप द्वारा राजकीय दावे का एक वक्तव्य

प्रस्तुत किया जो कि बहुत उल्लेखनीय है। उसने बताया कि ग्रेगोरी महान् के युग से ही यह साम्राज्य का कानूनी अधिकार रहा है कि चुनाव का निम्न प्रकार अपनाया जाए। औपचारिक चुनाव से पूर्व जिस व्यक्ति का नाम प्रस्तावित करना है उसके बारे में राजा की अनुमति ले ली जाए फिर औपचारिक चुनाव जनता का भाग पादरियों द्वारा निर्वाचन तथा सम्माननीय जन (Honoratiores) की स्वीकृति से हो। अभिषेक के बाद बिशप सम्राट के पास जाए जो मुद्रा तथा दण्ड द्वारा उसे पद चिह्न से प्रतिष्ठित करें तथा वह उसके प्रति समादर तथा निष्ठा प्रदान करे। किसी भी दूसरी स्थिति में उसको नगरों दुर्गों आदि का स्वामित्व न मिले जो कि राजकीय सत्ता की सम्पत्ति है। उसने कहा कि यदि पोप इससे सहमत हो तो साम्राज्य एवं चर्च में शान्ति स्थापित हो जाएगी।[1]

हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि जुगर के वर्णन का प्रत्येक अंश सत्य है किन्तु इसमें सन्देह करने का कोई कारण नहीं है कि सार रूप में यह सत्य है तथा इस स्थिति में इसका बड़ा महत्त्व है क्योंकि ये प्रस्ताव हेनरी पचम की ओर से समझौते की दिशा में वास्तविक प्रगति के सूचक हैं। इस वक्तव्य में दो बातें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं पहली तो यह कि राजा नियुक्ति का अधिकार नहीं वरन् चुनाव से पूर्व राय लिए जाने तथा निषेधाधिकार के अधिकार मांगता है दूसरा जबकि हेनरी दण्ड एवं मुद्रा से प्रतिष्ठित करने का स्वत्व बनाए रखता है यह अभिषेक के बाद होगा पूर्व नहीं तथा इसका सम्बन्ध निश्चित रूप से धर्माध्यक्षीय पद की सामान्य प्रवृत्ति से न होकर केवल पद चिह्न प्रदान करने से है।

जुगर के वर्णन से प्रतीत होता है कि तत्काल तो राजकीय प्रस्तावों पर गंभीर ध्यान नहीं दिया गया। वह पीयासेन्जा (Piacenza) के बिशप को पोप के नाम पर यह कहता हुआ बताता है कि यदि चर्च राजा की राय के बिना बिशप को नहीं चुन सकता तो यह चर्च को दास बना देने के समान होगा–राजा के द्वारा मुद्रा एवं दण्ड से प्रतिष्ठापन दैवी अधिकारों का अतिक्रमण तथा निष्ठा का समारोह बिशप की गरिमा के विपरीत था। जुगर कहता है कि जर्मनों ने यह वक्तव्य अत्यन्त अरुचिपूर्वक सुना और धमकी दी कि झगड़े का निपटारा यहां नहीं अपितु रोम में तलवारों से होगा।[13]

मई के अन्त में पस्कल ने ट्रोयेस (Troyes) में एक परिषद् बुलाई तथा वहाँ बिशप के स्वतन्त्र चुनाव के बारे में आज्ञप्ति प्रचलित की तथा धार्मिक नियुक्तियों में जनसाधारण के हस्तक्षेप की निन्दा की[14] किन्तु उसी समय यह तय किया गया कि हेनरी पचम अगले वर्ष इटली आए तथा सारे प्रश्न पर एक सामान्य सभा में विचार किया जाए।[15] यह व्यवस्था भंग हो गई किन्तु पोप एवं हेनरी के बीच बातचीत चलती रही तथा डा पाइज़र (Dr Peiser) की राय में Tractatus de Investitura ग्रन्थ जिस पर हम पिछले अध्याय में विचार कर आए हैं इसी युग का है तथा राजकीय पक्ष द्वारा समझौते की दिशा में एक निश्चित प्रगति का प्रतीक है।[16] 1109 ई में हेनरी ने महत्त्वपूर्ण बिशपों का एक राज प्रतिनिधिमण्डल पोप को अपने रोम आने के इरादे की घोषणा करने के लिए भेजा पस्कल ने दूतों का अच्छा स्वागत किया तथा पडरबार्न के एनल्स (Annals of Paderborn) के अनुसार उनको विश्वास दिलाया कि वह धर्मविधि सम्मत एवं धार्मिक अधिकारों के अतिरिक्त कोई मांग नहीं करेगा तथा किसी भी प्रकार से राजा के

अधिकारों को कम करने का कोई भी प्रयत्न नहीं करेगा।[17]

1110 ई. के अगस्त में हेनरी पंचम ने एक विशाल सेना लेकर इटली को प्रस्थान किया तथा वह के अन्त तक वह ऐरेजो (Arezzo) जा पहुँचा तथा वहीं से ही पस्कल से पत्र-व्यवहार करने लगा। एक्वापेन्डेंते (Acqupendente) से उसने पुनः दूत भेजे जो पोप के प्रतिनिधियों के साथ सुत्री (Sutri) में उसके पास लौट आए।

इसके बाद उनमें होने वाली समझौते की वार्ता के प्रमुख विषयों को समझाने के लिए एर्डहार्ड द्वारा उनका अपने क्रानिकल में दिया हुआ संक्षिप्त विवरण उपयोगी होगा। पोप के दूतों ने घोषणा की कि वह राजा का अभिषेक करने तथा उसे सभी सम्मान एवं सद्भाव प्रदान करने को प्रस्तुत हैं यदि राजा प्रयाजक प्रतिष्ठापन को निषेध करके चर्च की स्वतन्त्रता का वादा करे। ऐसा करने में पोप ने वादा किया कि चर्च भी सभी रियासतें, काउन्टशिप, चर्च आदि तथा अपने अधिकार में सभी पद चिह्नों को समर्पित करने के लिए तैयार है। राजा ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया किन्तु इस शर्त पर कि यह व्यवस्था Firma et autentica ratione consilio quoque vel concordia totius aecclesiae ac regni principum assensu स्थापित की जानी चाहिए, अर्थात् राजा चाहता था कि इस समझौते को सम्पूर्ण चर्च का अनुमोदन तथा स्वीकृति एवं साम्राज्य के सभी राजाओं की सहमति प्राप्त होनी चाहिए। एर्डहार्ड यह और कहता है कि राजा को विश्वास नहीं था कि यह प्राप्त हो सकती थी।[18]

समझौते की बातचीत एवं बाद की घटनाओं का वर्णन हमारे पास दो रूपों में है। पहला पस्कल द्वितीय के एक समर्थक द्वारा जो कि उनका प्रत्यक्षदर्शी था लिखा गया एक विवरण जो तथा पस्कल द्वितीय के रजिस्टर में सम्मिलित कर दिया गया तथा फिर एनाल्स रोमेनी (Annales Romani) में शामिल किया गया। दूसरा हेनरी पंचम का सभी ईसाइयों को सम्बोधित एक विश्व-पत्र। इनमें केवल घटनाओं का वर्णन ही नहीं अपितु कुछ अधिक महत्वपूर्ण दस्तावेज भी हैं जिनमें वह अधिकार पत्र भी सम्मिलित है जिसके लिए प्रयत्न किया गया था।

सबसे पहले महत्वपूर्ण दस्तावेज वे हैं जिनमें हेनरी पंचम तथा पैस्कल द्वितीय के पारस्परिक वादे हैं। हेनरी पंचम ने वादा किया कि पद चिह्न के बारे में पोप द्वारा समझौते में स्वीकृत कार्यों को कर देने पर वह प्रतिष्ठापन के बारे में सभी स्वत्वों को छोड़ देगा चर्च उन बातों और सम्पदाओं के विषय में स्वतंत्र रहेगा जो कि राज्य की नहीं थीं तथा वह संत पीटर की विरासत और सम्पत्ति को वैसे ही बनाए रखेगा जैसा कि चार्ल्स, लुई, हेनरी एवं अन्य सम्राटों ने किया था।[19]

पस्कल द्वितीय ने पीटर लियोनिस (Peter Leonis) के द्वारा जो रोम का अध्यक्ष (Prefect of Rome) था यह प्रतिज्ञा की कि यदि राजा दस्तावेज में कहे गए अपने वादे को पूरा करेगा तो पोप राजा के अभिषेक के दिन सभी उपस्थित बिशपों को आदेश देगा कि वे चार्ल्स, लुई, हेनरी तथा उनके पूर्ववर्तियों के युग में साम्राज्य के अधिकार में विद्यमान पद चिह्नों को राजा और साम्राज्य को लौटा दें। उसने वादा किया कि वह लिखित रूप में सत्ता एवं न्याय द्वारा तथा धर्म बहिष्करण के दण्ड के प्रावधान सहित आदेश देगा कि

कोई भी उपस्थित एव अनुपस्थित विशप अथवा उनके उत्तराधिकारी उन पद चिह्नों में जसे नगर ड्यूको एव काउटो की रियासतें आदि जिन पर साम्राज्य का स्पष्ट अधिकार था [0] अनधिकार पूण हस्तक्षेप नही करेगा। पीटर लियोनिस ने शपथ ली कि यदि पोप अपनी प्रतिज्ञा पूरी न करेगा तो वह राजा का साथ देगा। [1]

इन पारस्परिक प्रतिज्ञाओ से हमे एक घोषणा की तुलना करनी चाहिए जो कि हेनरी के विश्व पत्र मे सम्मिलित है। 'कान्सटीटयूशन्स' के सम्पादक ने यह सुझाव दिया है कि पस्कल को ये घोषणाए अभिषेक के दिन जारी करनी थी। इस दस्तावेज म केवल पद चिह्नो को लौटाने की आपत्ति की औपचारिक घोषणा ही नहीं है अपितु उन परिस्थितियो पर एक तकसम्मत वक्तव्य भी है जिनके कारण पोप ने ऐसा किया। वह घोषणा करता है कि जबकि किसी भी पुरोहित को राज्य के कार्यों तथा राज्य की सभाओं में भाग नही लेना चाहिए तथा किसी पीडित व्यक्ति की सहायता करने के अतिरिक्त राज्य के न्यायालय म उपस्थित नही होना चाहिए हेनरी के साम्राज्य मे विशप एव एबट निरन्तर लौकिक कार्यों म व्यस्त रहते हैं क्योंकि उनके द्वारा राजा से नगर रियासतें और दूसरी सम्पदाए स्वीकार की गई हैं जो राज्य की सेवा स सम्बन्धित हैं। इसके ही कारण वह इस प्रथा का विकास बताता है कि विशपो का अभिषेक तबतक न हो जबतक कि वे राजा द्वारा 'प्रतिष्ठापन' प्राप्त न कर लें। यह धम विक्रय का तथा निर्वाचन के बिना विशप पदों पर नियुक्ति का कारण रहा है तथा इन्ही दोषो के उपचार के लिए ग्रेगोरी सप्तम एव अरबन द्वितीय ने अयाजक प्रतिष्ठापन का निन्दा की थी तथा वह उनके काय का समथन करता है। अत वह आज्ञा देता है कि चार्ल्स 'दि ग्रेट' हेनरी तथा राजा के अन्य पूर्वाधिकारियों के समय स साम्राज्य के अधिकार मे विद्यमान सभी पद चिह्न सौंप दिए जाए और कोई भी विशप या एबट भविष्य म राजा के किसी विशेष अनुग्रह के बिना उनका दावा न करें तथा पोप की गद्दी पर उसका कोई भी उत्तराधिकारी इस विषय मे सम्राट या उसके राज्य को न सताए। तब वह आज्ञप्ति करता है कि अपनी बलि तथा अन्य सम्पदाओ सहित जो स्पष्टत साम्राज्य की सम्पत्ति नही है राज्यारोहण के दिन हेनरी द्वारा की गइ प्रतिज्ञा के अनुसार सभी चच स्वतत्र हो जाएँगे।

यह स्पष्ट है कि इन पारस्परिक प्रतिज्ञाओ मे 'प्रतिष्ठापन' के सघष को समाप्त करने का एक ऐसे ढग का प्रयत्न है जिसे लगभग क्रान्तिकारी माना जा सकता है। हम देख सकते हैं कि यह स्वीकार किया गया है कि 'प्रतिष्ठापन' का प्रश्न ऐसी परिस्थितियों के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ था जो किसी सीमा तक दोनो पक्षो की माग के औचित्य को सिद्ध करती हैं। पोप स्वीकार करता है कि यह सत्य है कि विशपो के पास बडी राजनैतिक शक्तियाँ थीं जिनके कारण यह दावा उठा कि विशप का अभिषेक राजकीय स्वीकृति तथा प्रतिष्ठापन के बिना नही हो सकता तथा उसकी मान्यता है कि इसके परिणामस्वरूप धम विक्रय का उदय एव बहुधा निर्वाचन की स्वतत्रता का पूण विनाश हो गया। अत सम्पूर्ण विपत्ति के मूल को नष्ट करने के लिए पस्कल प्रस्ताव करता है कि चच को पद चिह्नों को त्याग देना चाहिए जबकि इसके बदले म हेनरी ने प्रतिष्ठापन को त्यागने की प्रतिज्ञा की है। ये प्रस्ताव वास्तव मे क्रान्तिकारी एव दूरगामी थे। वास्तव म उनका

अभिप्राय यह नहीं था कि चर्च अपनी सारी सम्पत्ति त्याग देवें वे दशमांश तथा अपनी अधिकांश भूमि रख सकते थे या किन्तु यदि इनको व्यावहारिक रूप मिल जाता तो चर्च की राजनीतिक स्थिति प्रधान परिवर्तित हो जाती विशेष जर्मनी म विशेषतया परन्तु एक बड़ी सीमा तक सभी यूरोपीय देशों म।

हेनरी पंचम का विज्ञप्ति पत्र इस समझौते की बातचीत एव बाद में घटित होने वाली घटनाओं दोनों के ही सम्बन्ध म उसके आचरण के समर्थन मे लिखा गया था। अत उसे हम सर्वप्रथम प्रस्तावों के सम्बन्ध म अपने दृष्टिकोण को दुनिया को समझाने का हेनरी का प्रयत्न समझना चाहिए। वह अपने आपको चर्च की सेवा के लिए उत्सुक एव उसकी न्यायोचित इच्छाओ के अनुरूप कार्य करने वाला बताते हुए उसे प्रारम्भ करता है। पस्कल न उसे ऐसे न्याय सुझाए जो उसके साम्राज्य को विस्तृत एव गरिमा मण्डित बनायें किन्तु वास्तव म वह कपट पूर्वक साम्राज्य एव चर्च की यथार्थ स्थिति को नष्ट करने का प्रयास कर रहा था। वह कहता है कि पस्कल ने बिना किसी औपचारिक विचार (Absque omni audientia) के साम्राज्य से बिशपों और मठाध्यक्षों के उस प्रकार के प्रतिष्ठापन को छीनने का प्रस्ताव किया है जो चार्ल्स के समय से तीनसौ वर्षों से कुछ अधिक ही उसके अधिकार म है। जब राजकीय दूतों ने पूछा कि उस दशा में राजकीय सत्ता का क्या होगा क्योंकि उसके पूर्वज लगभग प्रत्येक वस्तु चर्च को प्रदान करते रहे हैं पस्कल ने उत्तर दिया कि राजा उन सब सम्पत्ति और पद चिह्नों को ले ले या बनाए रखे जिनको कि चार्ल्स लुई हेनरी तथा उसके अन्य पूर्ववर्तियों ने चर्च को प्रदान किया था तथा व यदि दशमांश एव बलिभेंट बने रहे तो उसमें सन्तुष्ट रहेंगे। राजकीय दूतों ने उत्तर दिया कि राजा चर्चों के प्रति ऐसा दुर्व्यवहार करने तथा धर्म द्रोह का आरोप स्वीकार करने को तैयार नहीं है। पोप ने विश्वास पूर्वक प्रतिज्ञा की तथा उसके प्रतिनिधियों ने उसके लिए शपथ ली कि वह स्वयं (Cum iusticia et auctoritate) चर्च से इन वस्तुओं को लेकर राजा और साम्राज्य को हस्तांतरित कर देगा। तब राजकीय दूतों ने वादा किया कि यदि पोप अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर देगा—यद्यपि वे जानते थे कि वैसा नहीं किया जा सकता—तो राजा चर्चों के प्रतिष्ठापन' के अधिकार को छोड़ देगा।[22]

सर्वप्रथम यह स्पष्ट है कि हेनरी पंचम इसके लिए उत्सुक था कि उसे बिशपों एव मठाधीशों को अपनी राजनैतिक स्थिति एव सत्ता से वंचित करने के प्रस्ताव के लिए उत्तरदायी नहीं समझा जाए परन्तु यह पोप ही था जिसकी ओर से यह प्रस्ताव आया था तथा दूसरे वह यह विश्वास दिलाना चाहता था कि उसने कभी नहीं सोचा था कि पोप अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सकेगा। जैसा कि हम देख चुके हैं एक्कहार्ड कहता है कि राजा की स्वीकृति इसी शर्त पर दी गई थी कि पोप की प्रतिज्ञा की पुष्टि सलाहकारों द्वारा हो तथा उस चर्च एव साम्राज्य के राजाओं की सहमति प्राप्त हो तथा यह सम्भव प्रतीत होता है कि यही उन वाक्यांशों का अभिप्राय है जिनको जैसा हेनरी सूचित करता है पोप के वादे म दो बार दोहराया गया है नामत कि ऐसा (cum iusticia et auctoritate) किया जाए। जैसा हम देखेंगे कि रोमन एव जर्मन दोनों बिशपों एव मठाध्यक्षों

के इसी विरोध को ही हेनरी इस प्रस्तावित समझौते की असफलता उत्पन्न करने वाला बताता है।

अब हम उन वास्तविक घटनाओं के विचार की ओर प्रवृत्त होते हैं जो हेनरी के रोम आगमन पर घटी। हेनरी के विश्व पत्र मे जब वह नगर मे प्रविष्ट हुआ तो उस पर कपट पूर्वक आक्रमण का वर्णन है किन्तु वह कहता है कि अपने आप को विचलित किए बिना वह सत पीटर के फाटक तक गया तथा वहाँ यह बताने के लिए कि वह ईश्वरीय चर्च को कोई हानि नहीं पहुँचाना चाहता उसने एक वक्तव्य जारी किया। तब उसने माँग की कि पोप अपना वचन पूरा करें जसा उसकी प्रतिज्ञा में निहित है–cum iusticia et auctoritate जब पोप ने अपने वचन को लागू करने का प्रयत्न किया तो उसके सामने ही जर्मन एव रोमन बिशप। मठाध्यक्षों तथा सभी चर्च पुत्रों ने उसका विरोध किया तथा उसकी घोषणा को धर्म विद्रोह कह कर उसकी निन्दा की।[23]

दुर्भाग्य से हेनरी का विश्व पत्र इसी बिन्दु पर विच्छिन्न है। एक्कहार्ड का वर्णन जो मुख्यतया किसी स्काटलैण्डवासी डेविड (David the Scot) के द्वारा रचित विवरण पर आधारित है जिसे हेनरी अपने साथ लाया था[4] पोप के प्रस्तावों पर राजाओं के उपद्रवपूर्ण विरोध का वसा ही वर्णन करता है जिसके कारण चर्चों के भ्रष्ट होने तथा उसकी धर्म वृत्ति (beneficia) की हानि होने की सम्भावना थी।[5]

रोमन विवरण में दिया गया वृत्तान्त अधिक विस्तृत है। राजा के रोम में आने तथा पोप द्वारा सत पीटर के गिर्जा की सीढ़ियों पर उसके स्वागत करने और उसे सम्राट घोषित करने के वर्णन के बाद उसके अनुसार वे सभा चर्च मे प्रविष्ट हुए तब पोप ने हेनरी से उसके लिए प्रतिष्ठापन के अधिकार का त्याग एव अन्य वादे पूरे करने को कहा जबकि वह अपनी ओर से उसकी पूर्ति करने के लिए तयार था जिसके लिए उसने वादा किया था। हेनरी चतुर्थ उसे तुरत पूरा करने के बजाय अपने बिशपों एव राजाओं के साथ चर्च के उस भाग को चला गया जो सेक्रेटेरियम (secretarium) के पास था तथा उनके साथ वहाँ विचार करने लगा। अत में एक दीर्घ विलम्ब के बाद जर्मन बिशप लौट आए तथा घोषणा की कि auctoritate et iustitia निश्चित समझौते की पुष्टि नहीं की जा सकती। पोप ने यह कहते हुए उत्तर दिया कि सीजर की वस्तुएं सीजर को ही लौटानी चाहिए तथा जो भी ईश्वरीय सेवा मे सलग्न हैं वे लौकिक विषयों में अपने को सलग्न न करें किन्तु वे जसा रोमन विवरण कहता है अपनी कपट पूर्णता एव दुराग्रह पर अड़े रहे।[26]

पोप पर आरोपित तर्कों का अभिप्राय स्पष्टतया बिशप पद के उन अधिकारों का समर्पण प्रतीत होता है जो कि इनके आध्यात्मिक पद से सम्बद्ध नहीं थे। अत यह प्रतीत होता है कि उस समझौते का अर्थ जिसका पुष्टीकरण जर्मन बिशपों ने स्वीकार नहीं किया उनके अनुसार पद चिह्नों का समर्पण था और जब वे कहते थे कि उसकी पुष्टि नहीं हो सकती तब उनका अभिप्राय था कि उसके लिए चर्च की सहमति आवश्यक थी एव वह प्रदान नहीं की जाएगी। इस प्रकार समझौते की बातचीत टूट गई और इसके बाद की घटनाओं पर हम सक्षिप्त विचार करेंगे। यह वाग्विवाद सारे दिन मध्याह्नकाल तक चलता रहा तब पोप के मित्रों ने प्रस्ताव किया कि वह तुरन्त सम्राट का राज्याभिषेक

करें तथा आगे की बातचीत अगले सप्ताह तक के लिए स्थगित कर दी जाए। हेनरी के प्रतिनिधि इससे सहमत नहीं हुए तथा अन्त में पोप और उसके साथियों को बन्दी बना लिया गया। दूसरे दिन रोमवासियों ने जर्मन सेनाओं पर प्रबल आक्रमण किया तथा तीसरे दिन हेनरी रोम से पोप और कार्डीनलों को अपने साथ लेकर लौट गया। पोप को बन्दी बनाकर रखा गया तथा हेनरी ने माँग की कि वह औपचारिक रूप से 'प्रतिष्ठापन' के राजकीय अधिकार को स्वीकार करे किन्तु साथ ही उसने यह भी घोषणा की कि वह अधिकार जिसका कि वह दावा कर रहा है चर्चों अथवा बिशपों के धार्मिक कर्त्तव्यों से सबद्ध नहीं किन्तु केवल पदचिह्नों से संबध रखता है। अन्त पस्कल ने रोमन क्षेत्र के विनाश, रोम नगर एवं चर्च के विनाश के कारण निरन्तर उसको किए जा रहे आवेदनों से अभिभूत होकर तथा सुरक्षा धर्म में फूट पड़ने की आशंका को देखकर यह कहते हुए समर्पण कर दिया कि चर्च की स्वतन्त्रता के लिए वह यह समय करने को विवश हुआ है जो कि अपनी जीवन रक्षा के लिए भी वह कदापि नहीं करता।[27]

समझौते की वास्तविक शर्तों को सम्मिलित करने वाले दस्तावेज रोमन विवरण एवं एक दूसरे राजकीय प्रतिलेख में हैं। वे शर्तें जिनके अन्तर्गत पोप की ओर से पहली बार छूट दी गई थी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। पोप अपने घोषणा-पत्र (PrivilIgum) द्वारा निम्न व्यवस्थाओं की पुष्टि की प्रतिज्ञा करता है। बिशप या मठाध्यक्ष का राजा की सहमति से धन विक्रय के बिना स्वतन्त्र चुनाव होगा। फिर राजा उसको दंड एवं मुद्रा द्वारा प्रतिष्ठित करेगा। बिशप अथवा मठाध्यक्ष जिसे इस प्रकार स्वतन्त्र रूप से 'प्रतिष्ठित' किया गया है उस व्यक्ति द्वारा स्वतन्त्र रूप से अभिषिक्त होगा जिसका कि यह अधिकार है। जिसने राजा से प्रतिष्ठापन प्राप्त नहीं किया है ऐसे किसी भी व्यक्ति का अभिषेक नहीं हो सकेगा चाहे उसे पादरियों तथा जनता ने चुन लिया हो। आर्चबिशपों एवं बिशपों को उन लोगों का अभिषेक करने की अनुमति है जिनको राजा द्वारा प्रतिष्ठापन प्राप्त है। इस प्रकार राजकीय दावे के सामने यह पूर्ण समर्पण था किन्तु यह उल्लेखनीय है कि हेनरी पंचम ने स्वतन्त्र निर्वाचन के अधिकार को सिद्धान्त रूप में मान लिया था तथा अपने लिए केवल सहमति देने अथवा न देने का अधिकार सुरक्षित रखा। यह छूट औपचारिक मानी जा सकती है किन्तु महत्त्वहीन नहीं।

वास्तविक घोषणा पत्र में प्रतिज्ञा की शर्तों को दोहराया गया है किन्तु उसमें कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन भी हैं। उसमें कहा गया है कि प्रतिष्ठापन का अधिकार पस्कल के पूर्ववर्तियों द्वारा पुराने सम्राटों को प्रदान किया गया था तथा इस प्रकार स्पष्टतया अप्रामाणिक प्रलेखों की प्रामाणिकता को स्वीकार किया गया है जिनके अनुसार पोप हैड्रियन प्रथम एवं पोप लियो तृतीय द्वारा इन अधिकारों को प्रदान किया गया था। हम पहले ही परेरा के विडो द्वारा इनका उल्लेख देख चुके हैं।[28] तथापि इसके लिए दिया गया कारण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है जो लगभग यह है कि बिशपों एवं मठाध्यक्षों को पदचिह्नों का प्रदान इतने बड़े पैमाने में किया गया है कि साम्राज्य की सुरक्षा उन पर निर्भर है।[29] पदचिह्नों का साम्राज्य के लिए महत्त्व का उल्लेख उस वक्तव्य से मेल खाता है जिसे हम अभी देख चुके हैं, कि हेनरी पंचम द्वारा 'प्रतिष्ठापन' अधिकार के दावे में केवल

पद चिह्नो का ही उल्लेख था विशप के आध्यात्मिक पद का न ी।

एक्कहार्ड इन घटनाओ का सक्षिप्त वर्णन करता है तथा प्रसन्नतापूर्ण अभिव्यक्ति से समापन करता है कि अत म पृथ्वी पर ईश्वर की गरिमा एव शांति प्राप्त हुई तथा विभाजन का दीर्घ रोग प्रवाह दूर हो गया[30] किन्तु उसकी प्रसन्नता अपरिपक्व थी क्योंकि पोप के इस काय का तुरन्त ही चच के एक विशाल भाग द्वारा खडन किया गया तथा कुछ समय म ही पस्कल द्वितीय ने अपने द्वारा प्रदान की गई सुविधाओ का निराकरण करने के लिए अपने को विवश पाया।

सन्दर्भ

1 Cf the excellent d scussions of the subject in p Imbert de l Tou de France du IX au XII Sicele 11 1 6
2. I owe the ref e e th oughout to F M k wer D Ve fass ng d r Ki che on E gland N te 23 24 pp 19 20
3 Eadm r H sto a Novorum (p 191)
4 Sp lman Conc li p 28
5 Will m of Malmesbury G sta ol i p 493
6 H go C tor History f F r Bish p of Yo k p 110
7 Eadmer H to a N um p 178
8 Id d (p 186) V ta Anselmi 63
9 इस पर श्री गर्सो पाइस ने बहुत अच्छा शोध लेख लिखा है जिससे मुझे बहुत सहायता मिली है। Der Deutsche Investiturstreit unter Konig Heinrich V Berlin 1883
10 Regebe t Chron A D 1106
11 Id id A D 1107
12 Suger V ta Lud VI (M G H S S ol xx i p 80
13 Id id
14 Ekkeh rd Chronicon 1107
15 Id d 1107
16 Cf p 103
17 An al Pad bo nenses 1110
18 Ekkeha d Ch o on 1111
19 M G H Legum Sect IV Constitut ones vol I 83
20 Id 85
21 Id 86
22 Id 100
23 M G H Legum Sect IV Constit t nes I I 100 o
24 Ekk h d Chron c n (a) 1110
25 Ekkeh d Chr nicon (a) 1111
26 Id 99
27 Id id
28 देख भाग 2 अध्याय 3।
29 Id 96 P l g m Paschal s II De I ett r
30 Ekkeha d Ch nicon (a) 1111

षष्ठ अध्याय

पैस्कल द्वितीय के कार्यों एव प्रस्तावो पर विचार

कुछ समय के लिए तथा दबाव मे आकर पस्कल द्वितीय ने सम्राट हेनरी पचम की मांगो के आगे आत्म समर्पण कर दिया था तथा प्रतिष्ठापन के अधिकार को स्वीकार कर लिया था किन्तु वह तात्कालिक ही था। एक वर्ष के भीतर ही समर्पण के विरुद्ध चर्च ने अपने रोष को इतने प्रबल शब्दो मे व्यक्त किया कि पस्कल द्वितीय उसे वापस लेने को स्वय विवश हो गया।

उसके कार्य के विषय मे समकालीन वाद विवाद पर विचार करना महत्वपूर्ण है क्योंकि उससे यह सकेत मिलता है कि समझौते का मार्ग वास्तव मे क्या रहा था तथा पद चिह्न के समर्पण पर उसके प्रस्ताव द्वारा उठाये गये या सुझाए गए विवाद पर विचार करना भी महत्वपूर्ण है।

उग्र पोपवादी दल की मनोदशा का अच्छा परिचय सेगनी के ब्रूनो (Bruno of Segni) द्वारा उस समय मे लिखे गये कुछ पत्रो मे मिलता है। इनमे से एक मे जो स्वय पस्कल को सम्बोधित है ब्रूनो उसके प्रति अपने प्रेम और निष्ठा को प्रतिपादित करते हुए भी उससे प्रार्थना करता है कि उसे ईसा से ज्यादा प्रेम करना चाहिए तथा वह स्पष्ट एव हिंसा की परिस्थितियो मे किए गए समझौते की निन्दा करता है। वह पस्कल द्वारा स्वय पहले किए गए प्रयासो प्रतिष्ठापन के निषेध का अपने समर्थन मे उल्लेख करता है तथा उसे पोप की आज्ञा से संगत बताता है तथा वह उन मनुष्यो को धर्मद्रोही कहकर उनकी निन्दा करता है जो रोम के चर्च की निष्ठा एव सिद्धांतो का विरोध करते हैं।

वही दृष्टिकोण और भी प्रबलतर शब्दो मे वेन्डोम के मठाध्यक्ष जियोफ्री (Geoffrey) के द्वारा पस्कल को सम्बोधित एक पत्र मे व्यक्त किया गया है जिसे हेनरी पचम को रियायत देने के बाद तथा 1112 ई की लेटरन परिषद् मे उसके प्रत्याहार से पूर्व लिखा

गया था। वह कहता है कि चर्च श्रद्धा पवित्रता एव स्वतन्त्रता पर ही जीवित है किन्तु प्रयाजक प्रतिष्ठापन के प्रति उदारता इन सबको नष्ट कर देती है तथा वह स्पष्ट शब्दों में कहता है कि यद्यपि चर्च के धर्मगुरु की चाहे उसका चरित्र दोषयुक्त भी हो तब भी आज्ञा माननी चाहिए किन्तु यदि वह धर्मद्रोही हो जाए तो उसे धर्मगुरु नहीं मानना चाहिए।[1] यह एक मनोरम वक्तव्य है तथा बलपूर्वक इस सत्य का दृष्टान्त प्रस्तुत करता है कि चर्च के ऐसे प्रसिद्ध अधिकारी थे जिनके इस प्रश्न पर इतने दृढ विचार थे कि वे चर्च की स्वतन्त्रता तथा पवित्रता के लिए विनाशकारी समझी जाने वाली इस व्यवस्था को स्वीकार करने की अपेक्षा स्वय पोप के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए तयार थे।

यह निस्सदेह बहु प्रचलित भावना थी तथा इसी को सम्मानपूर्वक उपस्थित करने के लिए ही पस्कल द्वितीय बाध्य हुआ जबकि उसने हेनरी पचम से किये गये समझौते को निरस्त कर दिया किन्तु यह एक गम्भीर त्रुटि होगी यदि हम यह सोचें कि मध्यस्थतावादी प्रवृत्ति जिस पर हमने पाँचवें अध्याय मे विचार किया पराजित तथा शक्तिहीन हो गई थी। इसके विपरीत यह फ्रान्स का ईवो के दृष्टिकोण में जीवित रही तथा यह अधिक उल्लेखनीय है कि वह ऐसे व्यक्तियो के वाक्यो में भी अभिव्यक्त होने लगी जो प्रयाजक प्रतिष्ठापन का दृढनिश्चयपूर्वक विरोध करने पर बल देते थे।

हम शाश्र के ईवो की लियोन्स के आर्च बिशप आयोसेरेनुस (Ioscerranus) को सम्भवत 1112 ई० की कौंसिल एव पोप द्वारा प्रतिष्ठापन की छूट को औपचारिक रूप से वापस करने से पूर्व लिखे गए पत्र में स्थिति पर पहले ही विचार कर चुके हैं। वह उसे स्वीकार नहीं करता था कि प्रयाजक प्रतिष्ठापन धर्मद्रोह है तथा मानता है कि उसकी अनुमति अथवा विरोध चर्च की प्रशासनिक व्यवस्था का अग है न कि शाश्वत विधि का। सम्भवत पस्कल के कार्यों के प्रबल विरोध का प्रभाव हम ईवो के मन पर पड़ा हुआ देख सकते हैं वास्तव मे वह अब इस मत का समर्थक प्रतीत होता है कि अच्छा हो यदि प्रयाजक प्रतिष्ठापन को समाप्त कर दिया जाय किन्तु उसमे यह शर्त जोड़ देता है कि यह तभी किया जाय जबकि बिना धर्म मे फूट डाले यह सम्भव हो सके।[2]

इसमे अधिक उल्लेखनीय दृष्टिकोण इस ग्रन्थ का है जो सभवत प्रत्याहार के तुरन्त बाद लिखी गई थी। लेखक मुद्रा एव दण्ड द्वारा प्रतिष्ठापन के विरुद्ध तर्कों को सशक्त रूप में प्रस्तुत करता है और कहता है कि ये आध्यात्मिक वस्तुओ के प्रतीक हैं तथा राजाओं द्वारा प्रदान नहीं किये जा सकते। दूसरी ओर वह यह स्वीकार करता प्रतीत होता है कि राजा ही पद चिह्नो को प्रदान कर सकता है[3] तथा वह सुझाव देता है कि वह राजदण्ड से वसा कर सकता है जो देश पर उसके अधिकार का प्रतीक है जिससे कि वह ड्यूक पद काउन्ट पद और अन्य पद चिह्न प्रदान करता है।[4] यह उल्लेखनीय है कि लेखक उस वास्तविक रूप को जताता है जिसके अन्तर्गत वार्म्स के समझौते द्वारा सम्राट को पद चिह्न प्रदान करना था।[5]

इन रियायतों तथा पस्कल द्वितीय के प्रस्तावो द्वारा उठाए गए प्रश्नो पर सबसे उल्लेखनीय एव सबसे विस्तृत वाद विवाद नानान्तुला के प्लेसीडस (Placidus of Nonantula) के एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ में मिल सकता है जो सम्भवत 1111[6] ई० के

अन्त मे लिया गया है क्योंकि वह केवल प्रतिष्ठापन ही नहीं वरन् सम्पूर्ण चर्च सम्पत्ति पर विचार करता है। प्रथम दर्शन में उसका मत सबसे अधिक सीमा तक अनम्य प्रतीत होता है क्योंकि वह इसे पूर्णत अस्वीकार करता है कि लौकिक सत्ता के दावे के पीछे वास्तव में कोई भी आधार है। किन्तु ध्यानपूर्वक परीक्षण से हमारा यह निर्णय संशोधित हो जाता है तथा वह यह सुझाता प्रतीत होता है कि जबकि वह अयाजक प्रतिष्ठापन की समाप्ति चाहता है तथापि वह इस मामले में किसी मध्यमार्ग को अपनाने को अस्वीकार नहीं करता तथा चर्च सम्पत्ति के बारे में उसके तर्क राजकीय दावे के विपरीत न होकर पोप द्वारा पदचिह्नों को सौंपने के प्रस्ताव के विरुद्ध हैं।

वह वास्तव में दृढ़तापूर्वक पस्कल द्वारा सम्राट को प्रतिष्ठापन का अधिकार सौंपने का खण्डन करता है तथा माँग करता है कि उसे यह छूट अस्वीकार कर देनी चाहिए।[7] वह इसे नहीं मानता कि अभिषेक के कारण सम्राट को बिशप अथवा मठाध्यक्ष को नियुक्त करने का कोई अधिकार मिलता है।[8] वह इस दावे से परिचित है कि पोप हेड्रियन प्रथम ने औपचारिक रूप से प्रतिष्ठापन का अधिकार चार्ल्स महान् को प्रदान किया था तथा वह स्पष्टत इस प्रदान की प्रामाणिकता को पूर्णतया खण्डन करने की स्थिति में नहीं था यद्यपि वह उसका उल्लेख करते हुए प्राय सन्देह व्यक्त करता है। अत वह यह तर्क करता है कि उसका जो अर्थ तथा अधिकार था या उसका सम्बन्ध किन्हीं तात्कालिक परिस्थितियों में था जिनके कारण वह उस समय उपयोगी रहा होगा किन्तु इस समय उत्पन्न अनिष्ट के कारण इसे रद्द कर देना चाहिए अथवा इसे पोप हेड्रियन द्वारा मानवीय दुर्बलताओं एवं त्रुटि के कारण प्रदान किया गया था क्योंकि आठवीं धर्म सभा (Eighth Synod) में पोप हेड्रियन ने स्वयं चर्च के चुनावों में लौकिक सत्ताधारियों द्वारा हस्तक्षेप की स्पष्टतया निन्दा की है। पोप स्वयं भी जबकि उनको अधिकार प्राप्त है novas conder leges उन कानूनों को नहीं बना सकते जिन्हें ईश्वर उसके प्रतिनिधियों अथवा उनके अनुयायी आचार्यों ने स्थापित किया है।[9] अत वह स्पष्टतापूर्वक एवं बलपूर्वक अयाजक प्रतिष्ठापन के विरोध की माँग करता है तथा वह अनेक सुपरिचित वैधानिक नियमों को उद्धृत करता है जो यह व्यवस्था करते हैं कि बिशप को धर्म क्षेत्र के पादरी एवं जनता के द्वारा चुना जाए[10] और दूसरे स्थान पर वह यह जोड़ देता है कि बिशप का निर्वाचन पोप और उसके प्रतिनिधियों अथवा आर्च बिशपों के निर्णय पर आधारित है।[11]

अत अब तक यह भली भाँति प्रतीत होता है कि प्लसीडस पूर्णतया अनम्य था किन्तु जब हम थोड़ा अधिक पर्यवेक्षण करते हैं तो यह विचार संशोधित हो जाता है। वह स्वीकार करता है कि उन लोगों के दावों में कुछ बल है जो यह प्रतिपादित करते हैं कि यह अविचारपूर्ण है कि सम्राट अथवा राजा को बिशप के निर्वाचन में किसी भी प्रकार के योगदान से वंचित रखा जाय जबकि जनता को इसकी अनुमति है और वह इसकी पुष्टि करता है कि उसका यह अभिप्राय नहीं है। धर्म-क्षेत्र के अन्य लोगों के समान ही सम्राट अथवा राजाओं का इन निर्वाचनों में अपना भाग है अर्थात् विशेषतया उन क्षेत्रों में जिनके वे पुत्र हैं परन्तु स्वामी या अधिपति के रूप में नहीं तथा इस अर्थ में उनको

निवाचन का पुष्टि करना चाहिए उनको अपना भौतिक तलवार स उसका रक्षा करनी चाहिए क्योकि यह उनका उचित कतव्य है कि जो आध्यात्मिक तलवार से भयभीत नही हात उनको भौतिक तलवार के आतक द्वारा विवश करें। यह महत्वहीन नही है यद्यपि यह वक्तव्य स्पष्टत सावधानी स बचकर किया गया है किन्तु प्लसीडस इसमे और भी आग बढ जाता है। हम यहा पर चच का सम्पत्ति क बार म उसक विचारो का विवरण देंगे किन्तु इसी समय हम यह देखना चाहिए कि वह निस्सकोच यह स्वीकार करता है कि इस सम्पत्ति के स्वामित्व क साथ लौकिक सत्ता क प्रति कुछ कत्तव्य भी जुडे हैं जिन्हे चच को पूरा करना चाहिए। यह कहता है चच को नजराना देना चाहिए[12] तथा राजा की और प्रकार की सेवा करनी चाहिए जिनकी प्लसीडस विशष रूप से व्याख्या नहा करता विशषतया उन दशाओ म जबकि चच को सम्पत्ति प्रदान करते समय उसके द्वारा कुछ विशष अधिकार सुरक्षित रख गए हो।[13] वह एक स्थान पर स्वीकार करता है कि यदि राजा अपन अधिकारान्तगत किसी वस्तु को एक बिशप को देना चाहता है तो उचित रीति से वह उसी रूप म प्रतिष्ठापित कर सकता है जसे कि वह दूसर मनुष्यो को करता किन्तु उस मु । एव दण्ड क द्वारा वसा नही करना चाहिए।[14] एक अन्य स्थल पर वह एक निश्चित प्रस्ताव करता है तथा यह आशा व्यक्त करता है कि उसम राज्य तथा याजकीय सत्ता (*sacerdotium*) क बाच पुन शान्ति स्थापित हो सकती है यदि यह व्यवस्था हो जाए कि सद्धान्तिक रूप स बिशप क निर्वाचन प्रतिष्ठा एव अभिषक के बाद उन स्वय या अपन किसी प्रतिनिधि के द्वारा सम्राट क पास उपस्थित होकर चच को उसे सौंपी गई सम्पत्ति क बार म राजकीय निर्देश (praeceptum) प्राप्त करने चाहिए। सम्राट को तब प्रसन्नतापूवक अपन पूवजो द्वारा चच का प्रदत्त वस्तु का उसका प्रदान एव पुष्टि करनी चाहिए तथा बिशप एव चच क प्रति राजकीय सरक्षण की प्रतिज्ञा करनी चाहिए।[1]

यह स्पष्ट है कि प्लसीडस तथा Disputatiovel Defensio Paschalis Papae क लेखक की स्थिति पोप की नीति क समथको की ओर स समझौते का और वास्तविक प्रगति का प्रतिनिधित्व करती है—वास्तव म यह स्पष्ट है कि व किसी सीमा तक फरेरा क विडो (Wido of Ferrara) जस मनुष्यो की मान्यताओ क प्रमुख पक्षो क महत्व को समझत थ।

हम कुछ समय क लिए प्लसीडस द्वारा चच की सम्पत्ति की प्रकृति क सम्पूण निरूपण के बार म विचार करन क लिए प्रवृत्त होना चाहिए। यह हम सभव प्रतीत होता है कि मुख्यतया यह पस्कल द्वितीय क पदचिह्नो के समपण सम्बन्धी प्रस्ताव इतन दूरगामी थे कि उन पर प्रकाश डालन वाली कोई भी वस्तु जिस हम पा सकें वह न महत्वपूर्ण होगी।

उस ग्रन्थ की भूमिका म जिसका हम वणन कर रह हैं प्लसीडस कुछ ऐस लखको के वाक्याशो को उद्धत करता है जो लौकिक सत्ताधारियो क पक्ष से यह कहते हैं कि क्योकि चच आध्यात्मिक है अत उसको कोई भौतिक सम्पत्ति वास्तविक चच भवना के अतिरिक्त नहा है तथा यदि चच के लोग भौतिक सम्पदा चाहते हैं तो चच के कानूनो स उनको प्राप्त नही कर सकते। यदि लौकिक शासको के उपहारो को छोड दें तो पादरी के पास वेदी पर लाए हुए वलि दशमाश एव पहली उपज क अतिरिक्त कुछ नहा होना

चाहिए। अन्य सभी सम्पदा का स्वामित्व राजा का है अत जो उसमे बिशप पद या मठाध्यक्ष का पद प्राप्त करना चाहते हैं उनको उससे ही व प्राप्त करने चाहिए अथवा जो उसकी सम्पत्ति है उस पर से अधिकार समाप्त कर देना चाहिए। यदि पादरी दशमांश चन्दी उपज एव बलि से सतुष्ट हो तो मामला उनके ही हाथों में है किन्तु यदि व उस सम्पत्ति को चाहते हैं जो पहले चच को प्रदान की गई थी तो व उस राजा से ही प्राप्त कर सकते हैं।

प्लसीडस इन सभी सिद्धान्तो को सभी सच्चे कैथोलिकों के लिए तिरस्करणीय बताकर उनकी निन्दा करता है क्योंकि यह पवित्र आत्मा है जिसने कि चच को केवल आध्यात्मिक ही नहीं भौतिक वस्तुए भी प्रदान की है तथा आग्रह करता है कि बिशपों को ईश्वर को समर्पित छोटी एव बडी सभी सम्पत्ति अपने अधिकार मे रखनी चाहिए। जो चच को प्रदत्त है वह ईसा को प्रदत्त है तथा जो उसे लूटते हैं वे देवद्रोह के दोषी हैं। जो चच की सम्पत्ति है वह बिशपों के अधिकार में रहनी चाहिए जो कि किसी भौतिक सत्ता द्वारा नहीं अपितु धम सेत्र के पादरियों एव जनता द्वारा निर्वाचित एव दूसरे बिशपों द्वारा पुष्टीकृत है। चच नजराने के अलावा राजा को किसी भी वस्तु का देनदार नहीं है।[16]

य मान्यताए ग्रन्थ के मुख्य भाग में और अधिक विस्तृत की गई हैं। जो एक बार चच को दिया गया है वह स्थायी रूप से उसी का है।[17] चच की भौतिक वस्तुओं को आध्यात्मिक वस्तुओं से उसके दो टुकडे किए बिना पृथक नहीं किया जा सकता क्योंकि जैसे कोई भी मनुष्य शरीर के बिना जीवित नहीं रह सकता उसी प्रकार चच का भी भौतिक वस्तुओं के बिना ससार में अस्तित्व नहीं है।[18] वह कहता है कि कुछ लोग यह मानते हैं कि चच पूर्ण शान्ति से अपने दशमांश पहली उपज एव बलि का ही स्वामी है तथा दुग आगीर आदि जैसी अचल सम्पत्ति उसी सीमा तक उसकी हैं जहाँ तक कि बिशप ने उसको सम्राट के हाथों से प्राप्त किया है। प्लसीडस की मान्यता है कि यह मिथ्या है क्योंकि जो चीज एक बार ईश्वर को सौंप दी जाए वह सदा के लिए उसी की सम्पत्ति है।[19] वह पुन इस तक का उल्लेख करता है अर्थात् चच ईश्वर के लिए स्वय निर्मित है तथा ईश्वर एव उसके पुरोहितों की ही सम्पत्ति है व वस्तुए जो सम्प्रति गौरवपूर्ण चच के स्वत्व में हैं जैसे ड्यूकी काउटशिप तथा नगर आदि अथ मे सम्राट की सम्पत्ति हैं कि जब तक प्रत्येक बिशप के पदारोहण के समय उसको उनके प्रदान का नवीकरण न किया जाए तबतक वह उन्हें नहीं पा सकता तथा इससे यह भी परिणाम निकलता है कि उसके द्वारा ही 'प्रतिष्ठापन' प्रदान किया जा सकता है।[20]

प्लसीडस इन मान्यताओं का बलपूर्वक खण्डन करता है तथा यह प्रतिपादन करता है कि कान्सटेण्टाइन के पूर्व चच के अधिकारान्तगत स्वल्प सम्पत्ति हो न हो किन्तु उसके समय से चच द्वारा प्राप्त सभी महान् सम्पत्ति पर चच का स्वत्व है क्योंकि वे सभी ईश्वर को समर्पित हैं[21] तथा वह अभिषेककर्त्ता आर्चबिशप द्वारा धर्म-दण्ड को बिशप या मठाध्यक्ष को प्रदान करने के नियम की इसी रूप में व्याख्या करता है कि उसमें न केवल जनता पर शासन के ही अधिकार की अपितु ईश्वर द्वारा स्वय चच के भौतिक सम्पत्ति

को भी उसको प्राप्ति हुई है।[22] दूसरा तत्व जो वह प्रस्तुत करता है महत्त्वपूर्ण है और मामन यह है कि चर्च की सम्पत्ति विभिन्न की सम्पत्ति है तथा पादरी आवश्यक भोजन एवं वस्त्र प्राप्त करने के प्रयोजन के अतिरिक्त व्यक्तिगत उपयोग के लिए उसका प्रयोग नहीं कर सकता तथा इसलिए वह राजा को नहीं दी जा सकती।[23]

यह तत्व यद्यपि स्थिति का द्योतक है किन्तु हमें उन बातों को भी ध्यान में रखना चाहिए जिन पर हम विचार कर चुके हैं जिनमें कि पास्कल उसके पूर्वजों द्वारा की गई सम्पत्ति के बारे में सम्राट के पुनः अधिकारों को स्वीकार करने का प्रस्ताव करता है। हम पर उसका यह प्रभाव पड़ता है कि वास्तव में उसका प्रयोजन उन सिद्धान्तों का खण्डन है जो पैरिस द्वितीय द्वारा पादरियों के समर्पण के प्रस्तावों से निकले रहे हों।

यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है कि इस प्रश्न पर वास्तव में कोई और तत्कालीन विवरण हम उपलब्ध नहीं है। 1176 ई० तथा 1167 ई० के बीच में लिखे गए राइखर्सबर्ग के गैरहोह (Gerhoh) के ग्रन्थों में इस प्रश्न पर वास्तव में बहुत महत्त्वपूर्ण विवाद उपलब्ध होता है किन्तु कुछ विस्तार से उस पर बाद में विचार करना ही हमें उचित प्रतीत होता है। यद्यपि यह सम्भव है कि विभिन्न द्वारा उन लिखों के स्वत्व के दावों पर संदेह को प्रकट करने वाला उसके वास्तव उसी प्रकार के थे जैसे ... द्वितीय के हम इस विषय में पूर्णतया आश्वस्त नहीं हो सकते। तथा किसी भी दशा में यह विषय इतना बड़ा और महत्त्वपूर्ण है कि उसके पृथक विवेचन की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1 Bruno Bishop of Segni Epistolae
2 Godfrey Abbot of Vendome Ibid ep 4
3 Disputatio vel Defensio ... P pao ... Dn lite v 1 ii p 665
4 देखें भाग ... अध्याय 7
5 ... Nonantula ... De Hon ... Dn lite v 2 ii p 566 Preface by Editor
6 Id 118
7 Placido of Nonantula De Hon ... Eccle 1ae 73
8 Ibid ... gue
9 Ibid 3 25 ...
10 Id id 73
11 Id id 17
12 Id id ... gue and 118
13 Id id 46
14 Id id 86
15 Id id 23
16 Id id ...
17 Id id 7
18 Id id 4
19 Id id 43
20 Id id 151
21 Id id 11
22 Id id 55
23 Id id 71

सप्तम अध्याय

वॉर्म्स का समझौता

प्रतिष्ठापन के प्रश्न पर समझौते का पहला प्रयत्न असफल हो गया था तथा कुछ वर्षों के लिए ऐसा प्रतीत होने लगा कि मामले की कोई प्रगति नहीं हुई। मार्च 1112 ई. में लेटरन की परिषद् में पस्कल ने उन परिस्थितियों का वर्णन किया जिनके कारण विवश होकर वह हेनरी पंचम को रियायत देने को विवश हुआ था तथा उसको स्पष्ट करते हुए कि वह उसे धर्म-बहिष्कृत नहीं करेगा उसने यह परिषद् पर छोड़ दिया कि यह किस प्रकार निरस्त की जा सकती है। परिषद् के अंतिम दिन उसने ग्रेगरी सप्तम तथा अरबन द्वितीय की घोषणाओं की परिपुष्टि की तथा परिषद् ने औपचारिक रूप से विशेषाधिकार (Privilegium) को निरस्त किया किन्तु अधिक कट्टर पंथ के सदस्य इससे संतुष्ट नहीं थे तथा सितम्बर 1113 ई. में वियन के आर्चबिशप गाइडो (Guido) ने जो कि बाद में पोप कैलिक्स्टस द्वितीय बना (Calixtus II) वियेन (Vienne) में एक परिषद् बुलाई[1] जिसने यह घोषणा की कि अयाजक प्रतिष्ठापन अधर्म था तथा औपचारिक रूप से हेनरी पंचम को धर्म-बहिष्कृत कर दिया। तदनन्तर पस्कल को पत्र लिखकर उससे इच्छापूर्वक अनुरोध किया कि इन कार्यों की पुष्टि करे तथा सूचना दी कि ऐसा न करने पर वे उसकी आज्ञा न पालन करने को बाध्य होंगे।[2] स्पष्टतः पस्कल ने इसे स्वीकार करने के लिए अपने को विवश पाया तथा गाइडो को अपने उत्तर में उसने वियेन की परिषद् की कार्यवाही की संपुष्टि कर दी।[3] 1116 ई. में लेटरन की परिषद् में पस्कल ने पुनः घोषणा की कि हेनरी के प्रदत्त विशेषाधिकार अमान्य हैं तथा उनको धर्म बहिष्कृत कर दिया जो अयाजक प्रतिष्ठापन ग्रहण अथवा प्रदान करते थे। कार्डीनल कूनो (Cardinal Kuno) ने सूचना दी कि उसने हेनरी पंचम को हंगरी, लारेन, सैक्सोनी तथा फ्रांस की कई परिषदों में धर्म-बहिष्कृत कर दिया है।[4] एक्हार्ड के विवरण से स्पष्ट है कि पोपवादी दल पुनः जर्मनी के बिशपों में सर्वोच्च हो गया था तथा जर्मनी में राजनैतिक अव्यवस्था पुनः द्रुतगति से बढ़ रही थी।[5]

21 जनवरी 1118 ई. को पस्कल द्वितीय का देहावसान हो गया तथा यह स्पष्ट हो गया था कि रोम में हेनरी की 1111 ई. की सफलता केवल दिखावटी थी तथा

उस आधार पर समझौता होना असम्भव था। उसके उत्तराधिकारी के रूप में जिलेसियस द्वितीय (Gelasius II) 24 जनवरी को निर्वाचित हुआ। एकहार्ड के अनुसार पहले तो हेनरी पंचम ने इसकी अनुमति दे दी किन्तु बाद में यह स्वीकार कि जिलेसियस ने अपने को उसकी सहमति से नहीं लिया है उसने ब्रगा के आर्चबिशप मॉरिस (Maurice) को एक नए पोप के रूप में स्थापना कर दी। जिलेसियस तथा अनेक दूसरे कार्डिनल कापुआ (Capua) चले गए तथा 7 अप्रैल को हेनरी पंचम एवं विरोधी पोप को धर्म बहिष्कृत कर दिया गया।[6] पोप के प्रतिनिधियों ने जर्मनी में कोलोन में एक परिषद् बुलाई तथा उसमें धर्म-बहिष्कृति की घोषणा कर दी। एकहार्ड सूचना देता है कि राजाओं ने वर्ज़बर्ग (Wurzburg) में एक सभा बुलाने का प्रस्ताव किया जिसमें हेनरी को व्यक्तिगत रूप से स्पष्टीकरण देने का अनुरोध किया जाए अन्यथा यदि वह उपस्थित होना स्वीकार न करे तो उसे पदच्युत किया जाए।[7]

29 जनवरी 1119 ई० को जिलेसियस द्वितीय का देहावसान हुआ तथा 22 फरवरी को वियेन का आर्चबिशप गाइडो (Guido) जो जन्म से स्वयं एक ड्यूक का पुत्र था तथा हेनरी को दी गई रियायतों का सबसे कट्टर विरोधी था कैलिक्सटस द्वितीय के रूप में पोप निर्वाचित हुआ।[8] यह निर्वाचन क्लूनी (Cluny) में जहाँ कि जिलेसियस की मृत्यु हुई थी कार्डिनलों, दूसरे रोमन पादरियों तथा जनसाधारण द्वारा किया गया तथा तत्काल ही रोम में विद्यमान कार्डिनलों एवं पुनः जर्मनी के ट्रिबुर (Tribur) नामक स्थान पर बुलाई गई परिषद् ने इसकी पुष्टि कर दी।[10] कैलिक्सटस ने शरद् ऋतु में रीम्स में एक परिषद् बुलाई तथा हेनरी पंचम के साथ किसी प्रकार के समझौते की दिशा में प्रयत्न करने का निश्चय किया गया।

इन परिस्थितियों में 'अभिषेक' के प्रश्न पर समझौता करने का दूसरा प्रयास किया गया तथा इसका विस्तृत विवरण हमारे पास लिखित रूप में है। इसका सूत्रपात दो प्रसिद्ध फ्रांसीसी पादरियों शाम्पू के विलियम (Champeaux) जो अब शालों का बिशप (Chalons) था तथा क्लूनी के मठाधीश पोन्स द्वारा किया गया था। वे स्ट्रासबर्ग में हेनरी पंचम के पास गए, तथा उससे बिशपों एवं मठाधीशों के 'अभिषेक' के अधिकार का त्याग करने की आवश्यकता पर बल दिया किन्तु यद्यपि शाम्पू के विलियम ने कहा कि न तो अभिषेक के पूर्व न बाद में उसने राजा के हाथ से कोई चीज ग्रहण की है। उसने उसी समय उसे यह भी विश्वास दिलाया कि वह निष्ठापूर्वक धर्म के राज्य को हर रूप में सैनिक सेवा तथा शुल्क प्रदान करता है जैसा कि जर्मन बिशप प्रदान करते थे। हेनरी ने उत्तर दिया कि इस सम्बन्ध में अधिक कुछ भी नहीं चाहिए तथा उन लोगों ने शान्ति स्थापित करने का प्रयास करने का वचन दिया।[11] इस आधार पर सम्मेलन का वास्तविक प्रारम्भ हुआ समझौते की शर्तें निश्चित की गईं तथा स्ट्रासबर्ग में मान ली गईं जिनकी पुष्टि कैलिक्सटस तथा हेनरी को एक बैठक में करना था जो 24 अक्टूबर को मूसों में निश्चित की गई। इन शर्तों के अन्तर्गत हेनरी को सभी चर्चों के ऊपर अभिषेक का अधिकार त्यागना एवं उन लोगों के चर्चों पर सम्पत्तियों को लौटाना स्वयं प्राप्त करना था जो कि युद्ध के दौरान खो दिए। इन शर्तों के बदले में यदि कोई ... हो तो यदि वह

धार्मिक वस्तुओं से सम्बन्धित हो तो धार्मिक निर्णयों के द्वारा यदि लौकिक हो तो लौकिक निर्णयों द्वारा निश्चित होना था। पोप ने भी सम्राट की ही भाँति हेनरी एवं उसके समर्थकों से शांति रखने एवं उनकी सम्पत्ति उन्हीं शर्तों के अन्तर्गत जैसी सम्राट ने मानी थीं लौटाने की प्रतिज्ञा की।[1] एक क्षण के लिए ऐसा प्रतीत होने लगा कि समझौता हो गया है किन्तु यह स्पष्ट है कि या तो प्रयोग किए गए शब्दों के अभिप्राय के बारे में कोई भ्रम था या विचार करने पर सम्राट का विश्वास हो गया कि वह बहुत अधिक समर्पण कर रहा है।

कलीक्सटस द्वितीय 18 अक्टूबर को राम्स पहुँचा तथा उसने अस्थायी रूप से परिषद् का उद्घाटन किया जिसमें फ्रांस का राजा और मठाध्यक्षों के अतिरिक्त दो सौ पन्द्रह बिशप एवं आर्चबिशप उपस्थित थे। वह 23 अक्टूबर को माउजों के लिए रवाना हो गया तथा हेनरी पंचम ने भी निकट ही शिविर स्थापित किया। उनकी भेंट से पूर्व ही पोप के दल में हेनरी द्वारा स्वीकार की जाने वाली शब्दावली के बारे में सन्देह उठ चुके थे। इसमें कहा गया था कि हेनरी को सभी चर्चों के सभी प्रतिष्ठापनों को त्याग देना था किन्तु यह समझाया गया कि यह शब्दावली द्वयर्थक है तथा इसकी व्याख्या की आवश्यकता है ताकि इसका आश्रय लेकर वह चर्चों की सम्पत्ति पर दावा न कर सके अथवा इस प्रकार की सम्पत्ति द्वारा प्रतिष्ठापित करने के अधिकार का दावा न कर सके। यह भी आग्रह किया गया कि पोप की प्रतिज्ञा का अभिप्राय यह समझा जा सकता है कि वह साम्राज्यिक दल के उन सभी बिशपों को मान्यता देता है जो उन बिशप पदों पर भी थोपे गए थे जिन पर पहले से ही वैधानिक बिशप आसीन थे या जिनको धर्मविधि के अनुसार पदच्युत किया जा चुका था। शाम्पू का विलियम कलूनी के मठाध्यक्ष आस्टिया के कार्डीनल बिशप (Cardinal Bishop of Ostia) वीवियर्स के बिशप (Bishop of Viviers) तथा दूसरे पोप के दूत सम्राट के पास भेजे गए तथा उन्होंने समझौते का प्रारूप का अर्थ पोप के समर्थकों ने जिस रूप में समझा था उस प्रकार प्रस्तुत करने का कार्यारम्भ किया। सम्राट ने पहले तो साफ मना कर दिया कि उसने इनमें से किसी भी चीज की प्रतिज्ञा की थी। शाम्पू के विलियम ने घोषणा की कि वह शपथ लेकर कह सकता है कि सम्राट ने इन सब बातों को स्वीकार किया था तथा उसने सम्राट के कथन का यही अभिप्राय समझा था। अन्त जब सम्राट यह स्वीकार करने को विवश हो गया कि यह सत्य है तो उसने शिकायत की कि उसने उनकी राय से जो प्रतिज्ञाएं की हैं उनका पालन साम्राज्य को गम्भीर हानि पहुँचाए बिना नहीं किया जा सकता। शाम्पू के विलियम ने उत्तर देते हुए उसे विश्वास दिलाया कि पोप साम्राज्य की सत्ता को कम नहीं करना चाहता तथा उसने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि बिशप सम्राट की सैनिक एवं अन्य सेवाएं उसी प्रकार करते रहेंगे जैसे कि वे करते आए हैं।[13] हेनरी ने तब एक दिन की अवधि माँगी ताकि वह राजाओं से राय ले ले किन्तु जब पोप के दूत दूसरे दिन पहुँचे तो उसने निर्णय उस समय तक के लिए फिर विलम्बित करने की प्रार्थना की जबतक कि वह साम्राज्य के राजाओं से सामान्य राय ले सके जिनकी स्वीकृति के बिना वह प्रतिष्ठापन का अधिकार समर्पित नहीं कर सकता। शाम्पू के विलियम ने रोष

पूर्वक समझौते की वार्ता भंग कर दी तथा पोप रान्म्स को लौट आया तथा कुछ दिनों बाद 29 अक्टूबर को उसने कुछ आज्ञप्तियाँ घोषित की जिनके लिए वह परिषद् की स्वीकृति चाहता था।

किन्तु परिषद् में तुरन्त इस पर गंभीर मतभेद हो गया। पोप के द्वारा प्रस्तावित द्वितीय घोषणा की शब्दावली इस प्रकार थी। Investituram omnium ecclesiarum et ecclesiasticarum possessionum per manum laicam fieri modis omnibus prohibemus

किन्तु जनसाधारण की ओर से और यहाँ तक कि कुछ पादरियों की ओर से भी इसका इतना अधिक विरोध किया गया कि सारे दिन बहस चलती रही। यह माना गया कि इन शर्तों के अन्तर्गत पोप दशमांश एव दूसरे गिरजे से सम्बन्धित लाभों को समाप्त करना चाहता है जो कि अयाजक वर्ग के पास प्राचीनकाल में थे। इसका विरोध इतना बढ़ा था कि दूसरे दिन पोप ने इस घोषणा को दूसरे रूप में प्रस्तुत किया। Episcopatuum et abbatiarum investituram per manum laicam fieri [illegible] nitus prohibemus Quicunque igitur laicorum deinceps investire presumpserit anathematis ultioni subiaceat Porro qui investitus fuerit honore quo investitus est absque ulla recuperationis spe omnimodis careat

इस रूप में आज्ञप्ति एकमत से स्वीकृत हो गई तथा एक अन्य आज्ञप्ति के द्वारा गिरजाघरों का उन सब सम्पत्तियों पर अधिकार पुष्ट कर दिया गया जो राजाओं एव दूसरे ईसाई लोगों ने उनको प्रदान की थी तथा जो भी उनको छीनने का प्रयत्न करेंगे उन्हें अभिशप्त कर दिया गया।[14]

कुछ समय के लिए समझौते का प्रयास विफल हो गया किन्तु यह देखना महत्वपूर्ण होगा कि हैस्सो के वर्णन से विदित होने वाली विफलता के कारण एव परिस्थितियाँ क्या थीं। शाम्पू के विलियम तथा क्लूनी के मठाध्यक्ष ने प्रतिष्ठापन के अधिकार के पूर्ण समर्पण का प्रस्ताव किया तथा सम्राट को विश्वास दिलाया था कि इससे बिशपों या मठाध्यक्षों के राजनैतिक दायित्वों में कोई अन्तर नहीं आएगा। हेनरी ने प्रस्ताव को इस रूप में स्वीकार कर लिया कि वह गिरजाघरों से प्रतिष्ठापित करने के अधिकार को समर्पित करता है। पोप के सलाहकारों को इस पर संदेह हुआ कि उसका अभिप्राय यह भी हो सकता है कि चर्च की लौकिक सम्पत्ति एव उसके प्रदान के बारे में सम्राट ने अपना स्वत्व सुरक्षित रखा है तथा इस वाक्य की व्याख्या की आवश्यकता पर बल दिया। हैस्सो यह नहीं बताता कि शाम्पू के विलियम तथा उसके सहयोगियों ने निश्चित रूप से क्या अर्थ निर्णय हेनरी को बताया वह केवल यही कहता है कि हेनरी ने उसे अस्वीकार कर दिया किन्तु हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि व्यवस्था के अन्तर्गत प्रतिष्ठापित करने के सभी स्वत्वों का यहाँ तक कि लौकिक सम्पदाओं के सम्बन्ध में भी समर्पण था। हेनरी ने इसकी संपुष्टि करना अस्वीकार कर दिया तथा यह तर्क दिया कि ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न पर उसे सम्पूर्ण राजाओं की सभा की सम्मति लेना आवश्यक है। यदि घटनाओं का यह विवरण सत्य

है तो यह प्रतीत होगा कि यद्यपि समझौता वार्ता असफल हुई तथापि यह तथ्य भी प्रकाश में आया कि सम्राट लौकिक प्रतिष्ठापन एवं धार्मिक प्रतिष्ठापन में विभेद करने को तैयार है वह विभेद जिस पर इस विषय के अन्य लेखकों ने जैसा कि हम देख चुके हैं बल दिया था। हैस्सो का विवरण इससे भी आगे बढ़ जाता है क्योंकि वह यह भी बताता है कि पोप के अनुयायियों में गहरा मतभेद था। यह इस तथ्य में स्पष्ट है कि केलीक्सटस को उस ढांचे को बदलना पड़ा था जिसमें कि उसने अपनी प्रतिष्ठापन विषयक घोषणा का राइम्स की परिषद् में प्रस्ताव किया था। इस प्रस्तावित प्रथम रूप में स्पष्टतया उसका सम्बन्ध केवल चर्चों के ही अधिकार प्रतिष्ठापन से नहीं अपितु चर्चों की सम्पत्ति से भी था किन्तु उसके विरुद्ध पादरियों एवं अधिकार वर्ग की भी भावना इतनी प्रबल थी कि उसे वापस लेना पड़ा तथा घोषणा ऐसे रूप में स्वीकार करनी पड़ी थी कि प्रश्न अनिश्चित ही बना रहा। सम्भवत हमारा निष्कर्ष ठीक ही है कि पोप के क्षेत्र में भी लौकिक एवं धार्मिक प्रतिष्ठापन में विभेद के महत्त्व को स्वीकार किया जाने लगा था।

कुछ समय के लिए यद्यपि समझौते का प्रयास विफल हो गया था तथापि विफलता की परिस्थितियां इस प्रकार की थी कि जैसा हम देख सकते हैं जो उन शर्तों पर समझौते की संभावना की ओर संकेत कर रही थी जो तीन वर्ष बाद वार्म्स में वास्तव में स्वीकार कर ली गई। निसंदेह औपचारिक रूप से तो वार्ता भंग पूर्णत थी क्योंकि केलीक्सटस ने न केवल हेनरी एवं विरोधी पोप को धर्म बहिष्कृत ही किया अपितु हेनरी की प्रजाओं को निष्ठा की शपथ से भी मुक्त कर दिया जब तक कि वह प्रायश्चित्त न करे एवं चर्च को संतुष्ट न करे।[15] इस प्रकार केलीक्सटस ने पुन उस तत्त्व पर बल दिया जो हेनरी चतुर्थ के युग में स्पष्टतया प्रस्तुत नहीं किया गया था किन्तु यह देखना महत्त्वपूर्ण होगा कि यह ऐसे सम्राट के विरुद्ध किया गया था जिसने एक विरोधी पोप को स्थापित करके स्वयं पोप पद के सम्बन्ध में वैसे ही अधिकार का दावा किया था।

सौभाग्यवश हम कुछ समकालीन रचनाओं द्वारा केलीक्सटस के प्रथम वर्षों में एवं पस्कल द्वितीय के पोपकाल के अंतिम वर्षों में मतप्रवाह को जान सकते हैं। हम पहले ही वेनडोम के एबट ज्योफ्री द्वारा पस्कल द्वितीय को सम्बोधित कटु तथा आक्रामक शब्दावली को उद्धृत कर चुके हैं जबकि उसने हेनरी पंचम के सामने आत्मसमर्पण किया था तथा वह 1119 ई के पूर्व तक अधिकार प्रतिष्ठापन की निंदा कटुतम शब्दों में करता रहा। 1116 ई से 1118 ई के बीच उसने रेनाल्ड को जिसने एंगर्स के बिशप चुने जाने का दावा किया था पत्र लिखा जिसमें उसने सर्वप्रथम पादरी के निर्वाचन के बारे में तथा बाद में अधिकार प्रतिष्ठापन के विषय में विचार प्रकट किए। ज्योफ्री कहता है कि रेनाल्ड का निर्वाचन अनियमित एवं अवैध था उसे सूचना दी गई थी कि रेनाल्ड का निर्वाचन जन साधारण द्वारा अव्यवस्थित रूप में किया गया था जिन्होंने तत्पश्चात् पादरियों को स्वीकृति देने के लिए भयभीत तथा विवश करने का प्रयत्न किया था। इसके बाद उन सिद्धांतों का विवेचन है जिनके आधार पर किसी निर्वाचन को उचित माना जा सकता है। ज्योफ्री कहता है बिशप पद की सम्पूर्ण नियुक्ति निर्वाचन एवं अभिषेक पर निर्भर है क्योंकि अभिषेक से पूर्व न्यायोचित निर्वाचन होना चाहिए। अ रितिको का चयन एवं अभिषेक स्वयं

ईसा द्वारा किया गया था। अब यह काय ईसा के पादरियो द्वारा किया जाना चाहिए। चुनाव में पादरी ईसा के प्रतिनिधि हैं तथा अभिषेक के समय विशप। दूसरे अर्थात् जन साधारण किसी विशेष व्यक्ति को विशप बनाने की मांग कर सकते हैं किन्तु न तो उसे चुन सकते हैं न उसका अभिषेक कर सकते हैं।[17] ज्याफ्री की स्पष्ट इच्छा है कि किसी भी न्यायोचित नियुक्ति के निर्वाचन की आवश्यकता पर दृढता से बल दिया जाए तथा निर्वाचन का यथार्थ काय पादरी तक ही सीमित रहे। अत्यन्त उग्रतापूर्वक वह अयाजक प्रतिष्ठापन का खण्डन करता है तथा मानता है कि कैथोलिक सिद्धान्त वही था जो ग्रेगोरी सप्तम ने घोषित किया था यद्यपि वह अयाजक प्रतिष्ठापन के धम विरोधी काय मे एव विक्रय म विभेद करता है किन्तु वह मानता है कि पहला दूसरे से अधिक शरारत भरा है क्योंकि लौकिक अधिकारी उस अधिकार का दावा इसी कारण करते हैं कि उसके द्वारा वे या तो धमपदो को वेचकर रुपया उगाह सकें अथवा विशप को अपने अधीनस्थ की श्रेणी मे ले आए। मुद्रा एव धम दण्ड द्वारा प्रतिष्ठापन उसके अनुसार एक सस्कारगत क्रिया थी।[18]

एक दूसरे ग्रन्थ मे जो यह सोचा जाता है कि कुछ बाद मे लिखा गया था ज्याफ्री अपने पूवकथित विचारो को ही अधिकाशत दोहराता है तथा दृढतापूर्वक यह भी कहता है कि इस विषय मे चच के कानूनो को बदलने का अधिकार रोम (पोप) को भी नहीं है।[19] वह स्पष्टतया पश्कल द्वितीय के काय का उल्लेख करता है तथा यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह शात्र के ईवो द्वारा प्रतिनिधित्व की गई स्थिति का भी खण्डन करना चाहता है।

अब तक ज्याफ्री की स्थिति उग्र तथा अनम्य थी किन्तु एक ग्रन्थ मे जिसका रचना काल सभवत 1119 ई है। हमे एक नए स्वर एव भिन्न दृष्टिकोण के दशन होते हैं। माउर्जें तथा राम्स के परिषद् की समझौता वार्ताओं से इस ग्रन्थ के सम्बन्ध का निर्धारण आसान नही है क्योंकि कुछ सीमाओं तक उसके सिद्धान्त एव प्रस्ताव उनसे कही आगे चले जाते हैं जो सम्भवत केलीक्सटस स्वीकार करने को प्रस्तुत था तथा वह स्पष्टतया सम्राट के विरुद्ध किसी भी कठोर कदम की निन्दा करता है। ग्रन्थ दो पाठो मे उपलब्ध है[20]–एक सक्षिप्त रूप जिसमे केलीक्सटस को मुद्रा एव दड द्वारा अयाजक प्रतिष्ठापन रूपी धम विरोध मे *दृढता से डटे रहने के लिए प्रेरित किया गया है तथा दूसरा वृहद् रूप जिसमे ज्याफ्री यह* तक करता है कि एक दूसरे प्रकार म प्रतिष्ठापन को स्वीकार किया जा सकता है। वह बलपूवक कहता है कि गिर्जों की सम्पत्ति के विषय म अयाजक प्रतिष्ठापन के पक्ष मे कोई भी वधानिक या धम विधि-सम्मत अधिकार नहीं है तथा वह यह सिद्ध करना प्रतीत होता है कि यह तकसगत नहीं है कि जो वस्तुए चच को एक बार दे दी गई हैं पुन प्रदान की जाए किन्तु वह यह स्वीकार करता है कि सभी सम्पत्ति पर अधिकार मानवीय कानूनों के अन्तगत है। दवी कानूनो से मनुष्य राजाओ तथा सम्राटों के अधीन है तथा मानवीय कानूनो को छोडकर अय किसी कानून स चच सम्पत्ति को नहीं रख सकता तथा वह सत आगस्टीन के द्वारा व्यक्तिगत सपत्ति के स्वरूप के विषय म कथित उन प्रसिद्ध सूक्तियों को उद्धत करता है जिनका हमने कई बार उल्लेख किया है।[21] अत वह मानता है कि इसके विरुद्ध कोई तक नहीं है कि यथोचित धमविधि के अनुसार निर्वाचन एव अभिषेक के

पश्चात् राजा किसी रूप में चर्च की सम्पत्ति क्यों न प्रदान करे।[23] तथा यह भी तर्क देता है की इस सविधा के द्वारा चर्च और राज्य में शांति पुनः स्थापित हो सकती है। वह बिना सोचे धर्म-बहिष्कार के उपयोग के विरुद्ध चेतावनी से इसे समाप्त करता है जिसका स्पष्टतः आशय इस विषय में सदेह प्रकट करना था कि क्या सम्राट को धर्म-बहिष्कृत करना उस दशा में भी बुद्धिमत्तापूर्ण है जबकि वह चर्च से समझौता करना अस्वीकार कर दे तथा वह संत पीटर और संत पाल के यहूदियों के पूर्वाग्रहों को अनुमोदित करने के कार्य का उल्लेख करता है।[24]

इस ग्रन्थ द्वारा अन्तर्निहित स्थिति बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह आक्र के ईवो द्वारा अपने पत्रों में प्रतिष्ठापन के विषय में भौतिक सम्पत्ति के लौकिक सत्ता से सम्बन्ध का तथा किसी रूप में लौकिक सम्पत्तियों सहित प्रतिष्ठापन को स्वीकार करने की सम्भावनाओं के विवरण का स्मरण कराता है।[4] तथा मानातुला के प्लसीडस के कुछ सुझावों में भी उसकी स्थिति लगती है किन्तु उसका ऐतिहासिक महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है जबकि हम ग्यायो द्वारा अपने पहले ग्रन्थों में अंगीकृत उग्र स्थिति का स्मरण करते हैं। जैसा हम कह चुके हैं कि हमें इस बात का ज्ञान नहीं है कि मार्जन तथा राइम्स में हुए विचारविमर्श से ग्रन्थ का ठीक सम्बन्ध क्या था किन्तु निश्चित रूप से वह इस तथ्य को प्रकट करता है कि पोप के दल में भी समझौते की दिशा में एक पक्ष उदित हो गया था तथा इसके द्वारा इसको समझाने में भी सहायता मिलती है कि किस प्रकार केलिक्सटस केवल चर्च ही नहीं वरन् चर्च की सम्पत्ति के बारे में भी अमाजक प्रतिष्ठापन की निन्दा करके अपने प्रस्तावों को वापिस लेने के लिए तथा बिशप पदों एवं मठों के प्रतिष्ठापन की अस्पष्ट निन्दा के प्रतिरूपण के लिए विवश हुआ।

दो और सक्षिप्त ग्रन्थ जो एक हस्तलिखित प्रति के अनुसार ग्यायो द्वारा पोप केलिक्सटस को संबोधित थे उसी समय की अथवा कम से कम 1119 ई एवं 1122 ई के बीच की रचनाएं हैं तथा यह युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि वे उस मध्यस्थवादी स्थिति का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसे ग्यायो ने उस समय अंगीकार कर लिया था। इनमें से पहले में वह मानता है कि कभी-कभी चर्च के अधिकारियों को ऐसे विधान भी देने चाहिए जिसके अन्तर्गत ऐसा कार्य किया जाए अथवा उसका अनुमोदन किया जा सके जो पूर्णतया अनिन्द्य न हो ताकि ईसाई सम्प्रदाय पर आने वाले किसी गम्भीर खतरे को टाला जा सके तथा दृष्टान्तस्वरूप संत पाल द्वारा टिमोथी (Timothy) के शुद्धिकरण (Circumcising) को तथा संतपीटर द्वारा कुछ गैर यहूदियों (Gentile) को यहूदी कानूनों के पालन की अनुमति को प्रस्तुत करता है। इस प्रकार के विधान चर्चों एवं मठों की प्रथाओं को भी बदल सकते हैं। वह कहता है कि यह सत्य है कि इनके द्वारा उसको स्वीकृति नहीं देनी चाहिए जो वास्तव में बुरा है तथा यदि पोप भी ऐसा करे तो वह अपेनेवनीयमाना मथाया वाली बात होगी किन्तु यह उचित रूप से स्पष्ट होता है कि वह अपने पूर्व ग्रन्थों में वर्णित नियम का खण्डन या कम से कम संशोधन कर रहा है।[25]

इनमें से दूसरे ग्रन्थ में ग्यायो चर्च के जीवन के लिए आवश्यक प्रमुख परिस्थितियों का संक्षेप से वर्णन करता है। वह कहता है कि चर्च को विश्वजनीन स्वतंत्र एवं पवित्र होना चाहिए विश्वजनीन इसलिए कि वह न तो खरीदा जाए और न बेचा जाए

स्वतन्त्रता की वह लौकिक सत्ता के अधिकार में न हो शुद्ध क्योंकि उसे घूसखोरी द्वारा विकृत नहीं बनाया जा सके। जब किसी चर्च को खरीदा या बेचा जाता है तो उसके प्रति आस्था विचलित हो जाती है क्योंकि मनुष्य सोचते हैं कि जिसे ईश्वर ने सभी मूल्यों से परे बनाया है उसे भी मनुष्य द्वारा खरीदा जा सकता है। जब चर्च लौकिक सत्ता के अधिकार में होता है तो वह उस स्वतन्त्रता के अधिकार पत्र को खो बैठता है जो ईसा ने अपने रक्त में आम पर उसके लिए लिखा है। जब चर्च रिश्वत से दूषित हो जाता है तो उसकी पावनता नष्ट हो जाती है।[26] याफी ने अपने पुराने ग्रन्थों में भी इन वाक्यों का प्रयोग किया है तथा इनका यहाँ कोई विशेष महत्त्व नहीं है किन्तु यह भी सम्भव है कि वे उन आवश्यक बातों वस्तुओं को सम्मिलित करने के लिए प्रयोग किए गए हों जो याफी के मन में किसी भी समझौते में ध्यान में रखने होंगे तथा वह यह सुझाता प्रतीत होता है कि जब तक मूल सिद्धान्त सुरक्षित रहें दूसरे बाद विषयों पर समझौता किया जा सकता है।

अनन्तर फार्डीनन्द पीटर लियोनिस को सम्बोधित एक ग्रन्थ में जिसका काल सम्भवतः 1122 ई० हो सकता है याफी अपने पुराने ग्रन्थों का सार प्रस्तुत करता है अर्थात् विशेषतः अपने दूसरे एवं तीसरे ग्रन्थों में वर्णित अयाजक प्रतिष्ठापन की निन्दा और यह भी स्वीकार करता है कि जैसा उसने चौथे ग्रन्थ में कहा है कि धर्मविधि के अनुकूल निर्वाचन एवं स्वतन्त्र अभिषेक के बाद भौतिक सम्पत्ति द्वारा अयाजक प्रतिष्ठापन को भी स्वीकार किया जा सकता है।[27] यह ध्यान देने की बात है कि इस ग्रन्थ में दिया गया नवीन विचार केवल यही है कि निर्वाचन एवं अभिषेक दोनों ही स्वतन्त्र होने चाहिए तथा शपथ ग्रहणानन्तर अभिषेक स्वतन्त्र नहीं है। यह निर्णय उचित ही प्रतीत होता है कि इसका वार्म्स के समझौते की शर्तों के बाद विकास से सम्बन्ध है।

वेनेडोम के याफी की स्थिति में यह परिवर्तन जो कि इन ग्रन्थों में उपलब्ध होता है बहुत महत्त्वपूर्ण है तथा स्पष्टता से यह बताता प्रतीत होता है कि मातृर्नें की समझौता वार्ता के भंग होने पर भी दोनों ओर से एक समझौते की आकांक्षा की सम्भावना ने वास्तविक प्रगति हुई थी जो कि दोनों सिद्धान्तों को जिनके लिए पोप प्रयत्नशील थे तथा लौकिक सत्ता के उचित स्थान को मान्यता प्रदान करे। यह धारणा इसी युग के दो ग्रन्थों की परीक्षा से पुष्ट होती है—ह्यू गोमेटेलस (Hu_o Metellus) के पोप और राजा के संघर्ष विषयक छन्द तथा ह्यूनाल्ड (Hunald) के मुद्रा और दण्ड विषयक छन्द य लेखक महत्त्वपूर्ण नहीं थे किन्तु उनका दृष्टिकोण कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

ह्यू गोमेटलस राजा को इस पर बल देते हुए प्रदर्शित करता है कि पूर्ववर्ती पोपों द्वारा राजकीय प्रतिष्ठापन की प्रथा को स्वीकृति दी गई थी तथा इसका अभिप्राय पद चिह्नों के प्रदान से है। राजा पूछता है कि यदि वह इनको धर्म-दण्ड के प्रतिकात्मक प्रदान कर तो क्या हानि हो सकती है? पोप उत्तर देता है कि उसके पूर्वाधिकारियों द्वारा वास्तव में अयाजक प्रतिष्ठापन को सहन किया था किन्तु अनिच्छापूर्वक क्योंकि उन दिनों के राजा चर्च के उपकारक थे तथा यह मानता है कि मुद्रा एवं दण्ड पादरी के पद के प्रतीक थे तथा लौकिक सम्पत्ति के प्रतिष्ठापन को सूचित करने के लिए इनका प्रयोग उचित नहीं है। तब राजा पस्कल द्वितीय द्वारा दी गई सुविधा को अपने समर्थन में प्रस्तुत करता

है किन्तु पोप उत्तर देता है यह अवधानिक था क्योंकि दवाव में प्रारम्भ किया गया था। तब राजा सुझाव देता है कि यदि चर्च अपने पद चिह्नों को त्यागने को तयार हो प्रतिष्ठापन के अधिकार को छोड़ देगा तो वह भी अपने क्योंकि पुराने काल में चर्च के पास थे नहीं थे किन्तु पोप उसके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करता। इस प्रकार प्रश्न की समाप्ति दोनों दलों के मध्य इस समझौते से होती है कि यह विषय तर्क एवं बुद्धि द्वारा विचारणीय है।[28]

ह्यू नाउड पोप की मान्यता का वर्णन करता है कि मुद्रा एवं दण्ड धार्मिक कृत्यों के पवित्र चिह्न थे। राजा इस सिद्धान्त से सहमत हो जाता है कि धार्मिक वस्तुएं पुरोहित द्वारा ही प्रदान की जानी चाहिए तथा वह केवल उन चिह्न प्रदान करने के अधिकार का ही दावा करता है। ह्यू नाउड का निष्कर्ष है कि पोप और सम्राट दोनों ही व्यर्थ लड़ रहे हैं क्योंकि दोनों में से कोई भी दूसरे को हानि नहीं पहुँचाना चाहता है।[29]

माउज की समझौता वार्ता भंग हो चुकी थी किन्तु शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि कोई समझौता ढूंढने का प्रयत्न फिर से प्रारम्भ करना होगा। सन् 1121 ई. में जब हेनरी ने मेंज पर आक्रमण के लिए प्रस्थान किया तो मेंज के आर्कबिशप ने जो जर्मनी में पोप के दल का प्रधान था सेक्सन राजाओं का सहायता के लिए आह्वान किया। किन्तु वास्तविक संघर्ष के प्रारम्भ होने के पहले ही दोनों पक्ष के नेता एक दूसरे से समझौते की वार्ता करने लगे तथा हेनरी को यह मनाने को राजी कर लिया गया कि झगड़े का निपटारा दोनों ओर के प्रमुख व्यक्तियों के निर्णय से ही जाए। यह निश्चित हुआ कि सम्पूर्ण साम्राज्य के राजाओं की एक सभा वरसवर्ग में माइकेलमास (Michaelmas) नामक स्थान पर इस समझौते का निश्चय करने के लिए हो।[30] सक्सन इतिहासकार इस सभा में लिए गए निर्णयों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करते हैं। सम्राट को पोप के पद के आगे समर्पण करना था तथा उसके व चर्च के बीच संघर्ष का समझौता राजाओं की राय एवं सहायता से इस प्रकार होना था कि चर्च को तथा साम्राज्य को वस्तुएं उनके पास रहें तथा चर्च की सम्पत्ति चर्च के पास रहे। जो बिशप धर्मविधि के अनुसार निर्वाचित एवं अभिषिक्त हैं वे शांति पूर्वक पोप की उपस्थिति में होने वाली सभा तक अपने अपने पदों पर बने रहें। राजाओं ने सम्राट के विरुद्ध चर्च की प्रतिष्ठापन विषयक शिकायतों का निपटारा इस प्रकार करने की इच्छा व्यक्त की कि साम्राज्य का गौरव अक्षुण्ण बना रहे। सम्राट किसी के विरुद्ध यदि भविष्य में संघर्ष में नया लेने के लिए कार्यवाही करें तो राजा इसके लिए राजी हुए कि स्वयं सम्राट की स्वीकृति एवं अनुमति से वे एकमत होकर यद्यपि अत्यन्त आदरपूर्वक एवं सावधानी से उसे वैसा न करने की चेतावनी देंगे। अगर फिर भी सम्राट ने उनकी राय की अवहेलना की तो वे एक दूसरे से किए समझौते के अनुसार कार्य करेंगे।[31]

यह विवरण सबसे अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह विशेषतः राजाओं के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है अर्थात् वे चर्च एवं सम्राट दोनों को ही एक तर्कसंगत समझौते के लिए विवश करने को कृत निश्चय थे। एक्केहार्ड इस कार्यवाही का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता है तथा यह महत्वपूर्ण सूचना भी देता है कि इस सभा द्वारा जो कुछ निश्चय हुआ

उसकी सूचना रोम को देने एवं पोप से सामान्य परिषद् का सम्मेलन बुलाने का अनुरोध करने के लिए दूतों को नियुक्त किया गया।[32]

पोप द्वारा दूतों को उत्तर देने में कुछ विलम्ब हुआ किन्तु फरवरी 1122 ई. में उसने हेनरी को ऐसे शब्दों में लिखा जो पूर्णतया शांतिकर तो नहीं थे तथापि समझौते की दिशा में एक नए प्रयत्न के परिचायक थे। कैलीक्सटस ने हेनरी को न केवल सम्राट कहकर ही किन्तु सजातीय के रूप में सम्बोधित किया तथा उससे चर्च को शांति प्रदान करने का अनुरोध किया तथा उसे यह विश्वास दिलाया कि जो भी साम्राज्य की या उसकी सम्पत्ति है ऐसी किसी भी वस्तु को लेने की उसकी इच्छा नहीं है। साथ ही उसने यह चेतावनी भी दी कि यदि वह चर्च को उसकी न्यायोचित वस्तु प्रदान करने को राजी नहीं होता तो वह धार्मिक एवं बुद्धिमान लोगों के द्वारा चर्च के योग क्षेम की व्यवस्था करेगा तथा उसमें होने वाली हेनरी की हानि का विचार नहीं करेगा।[33]

बिशपों एवं राजाओं का एक नया प्रतिनिधिमंडल हेनरी पंचम द्वारा भेजा गया जिसमें स्पायर्स का बिशप तथा फुल्डा का मठाध्यक्ष (Abbot of Fulda) सम्मिलित थे जिसने हेनरी की साम्राज्य एवं चर्च के बीच समझौते और शांति की इच्छा यदि यह साम्राज्य के गौरव को क्षति पहुँचाए बिना प्राप्त की जा सके। इसके प्रत्युत्तर में कैलीक्सटस ने ओस्टिया के कार्डीनल बिशप लैम्बर्ट को दो अन्य कार्डीनल सहित जर्मनी में अपने प्रतिनिधि के रूप में इन निर्देशों सहित भेजा कि वे समझौता करने का प्रयास करें तथा उन्होंने हेनरी को बिशपों की एक परिषद् में भेंट करने के लिए आमंत्रित किया जो प्रस्ताव के अनुसार मालिक के जन्मोत्सव (Nativity of Virgin) मेंज में सम्पन्न होने वाली थी।[34]

परिषद् की बैठक सितम्बर में वाम्स में हुई थी। विचार विमर्श लगभग 1 मास तक चलता रहा। हम मेंज के आर्चबिशप एडलबर्ट द्वारा पोप कैलीक्सटस को कुछ समय बाद लिखे गए एक पत्र से विदित होता है कि समझौता वार्ता पहले तो बहुत कठिन थी। हेनरी पहले तो मुद्रा एवं दण्ड द्वारा प्रतिष्ठापन के अधिकार को त्यागने को राजी नहीं हुआ क्योंकि वह उसे अपना कुलक्रमागत अधिकार मानता था तथा उपस्थित प्रधाजक धू[illegible] ने भी राजा के स्वत्व का समर्थन किया। अनेक कार्डिनलों से राय लेने के बाद जिसे एडलबर्ट उनकी अनिच्छुक सहमति कहता है यह निश्चित हुआ कि जर्मनी में बिशपों का निर्वाचन सम्राट की उपस्थिति में हो तथा हम यह अनुमान कर सकते हैं कि इस समझौते को ध्यान में रखकर हेनरी ने मुद्रा एवं दण्ड से प्रतिष्ठापन के अधिकार को त्यागना स्वीकार कर लिया।[3]

समझौते की सबसे महत्त्वपूर्ण व्यवस्थाएं जो अन्त में स्वीकृत हुई ये थीं हेनरी ने मुद्रा एवं दण्ड से प्रतिष्ठापन के सभी दावों को समाप्त कर दिया तथा साम्राज्य के सभी चर्चों को स्वतन्त्र चुनाव एवं अभिषेक का अधिकार प्रदान कर दिया। दूसरी ओर पोप ने हेनरी को यह अधिकार प्रदान किया कि जर्मन साम्राज्य में साम्राज्य के जितने भी बिशप पद एवं मठ हैं उनका चुनाव उसकी उपस्थिति में किन्तु हिंसा एवं धन दिये बिना हो तथा विवादग्रस्त चुनाव की दशा में प्रधान चर्च एवं सम्प्रान्तीय बिशपों की राय लेकर वह [illegible] को अपनी स्वीकृति एवं समर्थन दे। निर्वाचित बिशप अथवा

मठाधीश उसस पद चिह्न को राज दण्ड सहित प्राप्त करें तथा उसके प्रतिगान म वाञ्छित वधानिक कत्तव्यो का पालन करें। साम्राज्य के दूसरे भागों म बिशप अथवा मठाधीश अपने अभिषेक के छ मास की अवधि म सम्राट द्वारा अधिकार दण्ड से पद चिह्नो को प्राप्त करे तथा सभी वधानिक कत्तव्यो का पालन करे केवल अपवाद उनके विषय म था जो पूणत रोमन चच स सम्बधित थ।

यदि हम समझौते की प्रमुख शर्तों का मूल्यांकन करने का प्रयास करें जिसने की धार्मिक एव लौकिक सत्ता के पचास वर्षों स चले आ रहे बिशपों एव मठाधीशों की नियुक्ति सम्बन्धी सघष को समाप्त कर दिया तो हम कह सकते हैं कि यह स्पष्ट है कि मुख्यत यह उस मध्यस्थतावादी प्रवृत्ति की विजय का प्रतीक था जिसके विकास को ढूंढने का हमने प्रयास किया है तथा इसमें दोनों दलो म स किसी के भी उग्रवादी पक्ष की पूर्ण विजय नहीं थी। जब हम समझौते के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने का प्रयास करें तो हम बहुत सावधान रहना चाहिए तथापि हम सभवत निम्न निष्कष निकाल सकते हैं। सम्राट ने मुद्रा एव दण्ड से प्रतिष्ठापन के अधिकार को सौंपकर तथा स्वतन्त्र निर्वाचन एव अभिषेक के अधिकार को स्वीकार करके यह स्पष्ट कर दिया कि धार्मिक पद एव सत्ता को प्रदान करने का उसे कोई अधिकार नहीं है इस विषय म उसने बिशप क्षेत्र एव प्रान्त मे अधिकार को मान लिया। दूसरी ओर चच ने सामन्ती सम्पत्ति तथा सत्ता को बिशपों एव मठाधीशों को लौकिक सत्ताधीश के अधिकारों का प्रयोग करते हुए प्रदान करने या न करने के उसके न्यायोचित दावे को स्वीकार कर लिया। इस व्यवस्था द्वारा कि निर्वाचन उसकी उपस्थिति म हो चच ने यह स्वीकार किया कि उच्च धार्मिक पदों की नियुक्ति से सम्राट को पूर्णतया पृथक नहीं किया जा सकता जिनमें कि वास्तव म धर्मविधि की व्यवस्था के अनुसार भी प्रयोजक वग का न्यायोचित एव वधानिक स्थान है। विवादग्रस्त निर्वाचनों के निर्धारण की व्यवस्था द्वारा निस्सदेह सम्राट को अधि धर्माध्यक्ष एव सम्प्रान्तीय बिशपों की राय मे निदेशित होना था किन्तु चच ने यह स्वीकार किया कि सम्राट को ऐसे निर्णयों म महत्वपूर्ण योगदान का अधिकार था। सभवत चच द्वारा दी गई सबसे महत्वपूर्ण सुविधा इस व्यवस्था म थी कि निर्वाचित बिशप अथवा मठाधीश अपने पद चिह्नों को अभिषेक स पूव सम्राट स प्राप्त कर क्योंकि सम्भवत इसका अभिप्राय य था कि निर्वाचित व्यक्ति के विषय मे किसी दुस्तर विरोध की स्थिति म सारे मामले पर पुनर्विचार किया जा सके। दूसरी ओर सम्राट की ओर से महत्वपूर्ण सुविधा वह थी जो जमन साम्राज्य के बाहर के बिशप पदों एव मठों के बारे म दी गई। यहाँ उसने निर्वाचन म किसी भाग का दावा नहीं किया तथा यह व्यवस्था स्वीकार कर ली कि अभिषेक के पश्चात् अर्थात् कायवाही के सम्पूर्ण होने के बाद बिशप या मठाध्यक्ष पद चिह्नों के लिए प्राथना करें तथा निस्सदेह वह सम्राट तथा इटली के बिशप पदों के मध्य सम्बन्धो म बहुत बड़ा परिवतन था।

हम साम्राज्य तथा पोप पद के बीच महान् सघष के प्रथम पक्ष पर विचारपूर्ण कर चुके है किन्तु इस सघष के दौरान दूसरे प्रश्न उठ खड़े हुए तथा दूसरे दावे किए गए जो

कि मध्यकाल म लौकिक सत्ता एव धार्मिक सत्ता के मम्बन्धो के अधिक परिपूण पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा हमे अब उनके विचार के लिए उन्मुख हाना चाहिए।

स दभ

1 Ma Corc lt a xxı 51
Ma s C n ıl a ı 75
3 Id ıd 76
4 Ekkeha d Ch n on ( ) 1116
5 Id d (a) a 1118
6 Id d ( ) 1119
7 Id d ( ) 1119
8 Mon m ta Bamb g a pp 348 352
9 Ekkeha d Chr n con (a) 1119
10 Id ıd
11 Hes o–R lat o
12 Id ıd
13 Id d
14 Id ıd
15 Id d
16 पेइ भाग 2 अध्याय 6।
17 Ge ffr y of Vendome L bellus ı
18 Id ıd
19 Id L bell
20 Cf d t r n L b De L te
21 Cf ol pp 139 142
22 Geoffr y d V dome L bellus ı p 691
3 Cf p 98
24 Cf p 136
25 Id L bell
26 Id L bellus x
27 Id L bellus vı
28 H go Metellus Cert men Pap e et Reg
2) Hu ld C on d Anulo t B culo
30 Ekk h d Chr n con (1121)
31 M G H Legem Sect IV Cons t tut nes vol ı 106
3 Ekk h d Chronicon (a) 1121
33 Cal t II Epistolae 168 (Mıgn V 1 163)
34 Mon B mbergens p 383
35 Id d p 519
36 L gem Sect I Constit tiones ı 107

तृतीय खण्ड

पोप पद एव साम्राज्य का राजनतिक सघर्ष

प्रथम अध्याय

ग्रेगोरी सप्तम की स्थिति तथा दावे

इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड म हमने नवी शताब्दी मे धार्मिक एव लौकिक सत्ता के सम्बन्धो की अपनी दृष्टि स एक युक्ति सगत व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया तथा यह सिद्ध किया कि यह सार रूप म पाचवी शताब्दी मे पोप जिलेसियस प्रथम द्वारा प्रतिपादित सिद्धातो की स्वीकृति का ही प्रतिनिधित्व करते हैं अर्थात् दोनो सत्ताए दिव्य हैं तथा दोनो अपने अपने क्षेत्र म सर्वोच्च हैं तथा अपने निश्चित क्रिया-कलापो के विषयो म एक दूसरे पर अधिकार का दावा नही कर सकता। यह पूर्णतया सत्य है तथा हमने इसे निस्सकोच स्वीकार करने का प्रयास किया है तथा इसके लिए पर्याप्त दृष्टान्त भी प्रस्तुत किए हैं कि वास्तविक व्यवहार मे नवी शताब्दी म दोनों सत्ताओं के क्षेत्र पूर्णतया पृथक नही थे तथा हम पुन पुन प्रत्येक का उन विषयो म हस्तक्षेप करते हैं जो दूसरे के अधिकार क्षेत्र मे थ। किन्तु हम यह प्रतीत नही होता है कि इसने उस युग म मनुष्यो के मन के सामान्य निर्णय को अथवा उनके इस विश्वास की वास्तविकता को किसी भी रूप म प्रभावित किया कि धार्मिक एव लौकिक सत्ताए अपने एक दूसरे से सम्बन्धो म पूर्णतया स्वतत्र हैं।

यद्यपि यह सत्य है तथा इस पर हमने कुछ बल भी दिया है कि नवी शताब्दी म जिलेसियस के सिद्धान्तों की पुनरुक्ति म हम कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन एव परिवर्धन पाते है। जिलेसियस ने कहा है कि पुरोहित का सौंपा गया भार राजा को सौंप गए भार से अधिक है क्योंकि उसे निर्णय के दिन उस राजा की आत्मा के विषय मे भी लेखा देना होगा। आर्लियन्स का जोनास (Jonas of Orleans) पुरोहित के व्यक्तित्व को उत्कृष्ट बनाता है क्योकि वह यह देखने के लिए उत्तरदायी है कि राजा अपने पद के दायित्व का निर्वाह करने म भी अपना कर्त्तव्य का पालन कर रहा है तथा राम्स का हिंकमार (Hincmar of Rheims) कहता है कि विशप का गौरव राजा से अधिक है क्योंकि विशप ही राजा का अभिषेक करता है। किन्तु जिलेसियन पदावली म सबसे मूलभूत

सशोधन मार्सेलियस के जोनास तथा बिशपो ने 829 के रिलेशियो (Relatio) म किया है जहाँ वे कहते हैं पुरोहित तथा राजा के दोनो महान् पद लौकिक नही जसा कि जिलेसियस न कहा है किन्तु विश्वव्यापी चच के पद हैं जो कि ईसा का शरीर है। यह सशोधन कहाँ तक सुविचारित एव सुचिन्तित था हम नही कह सकते किन्तु यह क्रम महत्त्वपूण नही है। इसकी विपमता उचित प्रकार स मिलेविस के ओपटाटस (Optatus of Milevis) की सूक्तियो मे की जा सकती है जहाँ कि वह डोनटिस्टो (Donatists) को साम्राज्य के प्रति सम्मान के अभाव के लिए फटकारता है। वह कहता है कि चच राज्य अर्थात् रोमन साम्राज्य के अन्तगत है साम्राज्य चच के अन्तगत नहीं।[1]

यह अवधारणा निश्चित रूप म व्यापक महत्त्व का है तथा मध्य युग के सम्पूण राजनतिक एव चच सम्बन्धी सिद्धातो की प्रतीक है। अपनी दूसरी पुस्तक म हमने टूरनाई के स्टीफन (Stephen of Tournai) के जो बारहवी शताब्दी के उत्तराद्ध का प्रसिद्ध धम शास्त्री है एक वाक्याश को उद्धृत किया है जिसमे इस सिद्धान्त को बहुत प्रभावशाली ढग स प्रस्तुत किया गया है। वह कहता ह कि एक राज्य मे तथा एक राजा के अधीन दो जन-समूह दो जीवन प्रणालियाँ दो सत्ताए हैं यह राज्य चच है राजा ईसा मसीह है तथा दो जन समूह चच की दो व्यवस्थाए हैं अर्थात् पादरी एव जन साधारण दो जीवन प्रणालियाँ धार्मिक एव लौकिक है दो सत्ताए पुरोहित पद एव राजपद हैं द्विविध विधान दवी तथा मानवीय कानून हैं प्रत्येक को उसका देय प्रदान करो तथा सभी वस्तुओं म सामञ्जस्य बना रहेगा।

राज्य केवल एक है यह है ईसा का चच तथा इस राष्ट्रमडल का ईसा स्वय राजा है किन्तु वह अपनी सत्ता दो व्यक्तियो को सौंपता है पुरोहित को तथा राजा को अकेले एक को नही। स्टीफन के मन म अपने अपने क्षेत्र म एक पर दूसरे की सत्ता का कोई प्रश्न नही है न ही वह एक की तलना म दूसरे की प्राथमिकता का कोई प्रश्न ही उठाता है। तथापि यह प्रतीत होता है कि जब राज्य की एक चच के रूप मे कल्पना की गई तो इस प्रश्न को पूरी तरह स टालना सभव नहा ह। कुछ भी हो नवी शताब्दी मे भी मार्सेलियस के जोनास तथा राइम्स के हिंक्मार ने किसी सीमा तक उस वास्तविक स्वरूप की पूव कल्पना की जो यह प्रश्न वास्तव मे ग्रहण करने वाला था। जोनास जसा कि हम देख चुके हैं पुरोहित के व्यक्तित्व को उत्कृष्ट बताता ह क्योकि उसका दायित्व यह देखना ह कि राजा अपना कत्तव्यपालन कर रहा ह तथा हिंक्मार बिशप के गौरव को सम्राट के गौरव स बढकर बताता ह क्योकि बिशप राजा का उसके पद पर अभिषेक करता है। इन दो वाक्यो म ही हम पोप तथा चच के उन दावो का प्रथम अकुर देख सकते हैं जिनकी हम अब परीक्षा करनी ह।

इस पुस्तक के पहले खण्ड म हमने सम्पेर मे लौकिक सत्ता की तुलना म धार्मिक सत्ता की उत्कृष्टता की अवधारणा के तथा लौकिक सत्ता के निर्धारण म उसको कुछ सत्ता अवश्य ह इस धारणा के कुछ दृष्टातो को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया ह। सभवत सबस महत्वपूण वाक्य रोडोल्फस ग्लेबर (Rodolphus Glaber) का ह जो ग्यारहवी शताब्दी के पूर्वाद्ध म लिखते हुए कहता है कि कोई भी तबतक सम्राट स्वीकार नही

किया जा सकता जबतक पोप उसके चरित्र का उपयुक्त स्वीकार न कर तथा वह उसमे साम्राज्य के प्रतीकों को प्राप्त न कर ले।[5] कुछ समय बाद हम पाते हैं कि सशोधनवादी पोप तथा उसके मित्र उन वाक्यों का प्रयोग कर रहे थे जिनका यथार्थ अर्थ तो निर्धारित करना कठिन है किन्तु जो कम से कम बहुत महत्त्वपूर्ण है। पोप लियो नवम[6] ने कुस्तुन्तुनिया के अधिधर्माध्यक्ष को प्रधान धर्माध्यक्ष को सबोधित एक पत्र में जिसमे उसने रोम के धर्मपीठ का सभी चर्चों पर अधिकार का दावा किया है यह भी कहा है कि रोम के धर्मपीठ का साम्राज्य भौतिक भी है तथा स्वर्गिक भी रोम के धर्मपीठ का राजकीय पौरोहित्य है तथा वह इसकी पुष्टि कान्सटैन्टाइन के दान के प्रमाण से करता है। दुर्भाग्यवश वह उस अर्थ की स्पष्ट व्याख्या नहीं करता जिसमे उसने इस वाक्य में सम्बद्ध किया है। प्रथम पुस्तक में हमने उन तर्कों को प्रस्तुत किया है जिनके आधार पर हम आश्वस्त हुए हैं कि मूल रूप में तथा नवीं शता में जिस राजनतिक सत्ता का उल्लेख है उससे अभिप्राय केवल रेवेना के विशेष प्रदेश तथा इटली में अन्य बाइजेन्टाइन क्षेत्रों के बारे में पोप के दावे से था। क्या पोप लियो नवम ने इस दान पत्र के वाक्यों को इसी अर्थ में अथवा अधिक सामान्य अर्थ में ग्रहण किया था यह स्पष्ट नहीं है।

कुछ वर्षों के बाद पुन हम पाते हैं कि पीटर डेमियन जैसा कि हम देख चुके हैं ऐसे वाक्यों का प्रयोग करता है जिनका कि अभिप्राय निश्चित करना बड़ा कठिन है। वास्तव में वह अत्यन्त स्पष्टता से स्वीकार करता है कि राजकीय सत्ता को स्वय ईश्वर से अधिकार प्राप्त हुए हैं तथा वह अत्यन्त आग्रहपूर्वक राजा एव पुरोहित के कार्यों की प्रकृति में विभेद करता है तथा जब वह दो तलवारों की चर्चा करता है तो उनमें से एक पर राजा का और दूसरी पर पुरोहित का अधिकार बताता है तथा कुछ समय पश्चात् प्रचलित इस सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं करता कि दोनों पर ही वास्तव में पुरोहित का अधिकार है।[6] दूसरी ओर हेनरी चतुर्थ को लिखे गए एक पत्र में विरोधी पोप कडेलियस के विरुद्ध रोमन धर्मपीठ की सहायता की माँग करते हुए वह कहता है कि राजा का तभी सम्मान होना चाहिए जबकि वह सृष्टिकर्ता की आज्ञा मानता है किन्तु जब वह दैवी आदेशों का उल्लघन करता है तो प्रजा द्वारा उसकी अवमानना विधिसम्मत है। दूसरे स्थान पर वह पोप को राजाओं का राजा तथा सम्राटों का राजा कहता है जो कि गौरव और सम्मान में सभी प्राणियों से उच्चतर है एवं अन्य स्थान पर वह रोम के चर्च की स्थापना ईसा द्वारा बताता है जिसने पीटर को पार्थिव एव स्वर्गिक साम्राज्य के कानून सौंपे तथा इसकी पुनरावृत्ति वह दूसरे ग्रन्थ में करता है जहाँ वह ईसा द्वारा पीटर को स्वर्ग एव पृथ्वी दोनों के कानून सौंपता हुआ बताता है।[7] इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में हम इन वाक्यों पर पहले ही विचार कर आये हैं द्वितीय पुस्तक में इनमें से कुछ की बारहवीं शताब्दी के धर्म विधियों द्वारा व्याख्या का भी हमने वर्णन किया है[8] तथा हम केवल इसी बात को दोहरा सकते हैं कि यह कहना अत्यन्त कठिन है कि पीटर डेमियन का इनसे क्या अभिप्राय था।

इस युग के सर्वाधिक प्रख्यात सुधारवादी पादरियों में से अन्य के द्वारा ऐसे वाक्यों का प्रयोग किया गया है जो इस कारण ध्यान देने योग्य हैं क्योंकि वे धार्मिक सत्ता के उत्तरकालीन दावों का सर्वाधार इंगित करते हुए प्रतीत होते हैं। कार्डिनल हम्बर्ट दोनों

व्यवस्थाओं के साथ क्षेत्रों में विभेद करता है पादरी लौकिक विषयों में उसी प्रकार हस्तक्षेप नहीं कर सकता जिस प्रकार अधाजक वृन्द धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। यद्यपि एक अन्य स्थल पर वह कहता है कि यदि हम पादरी एवं राजा के गौरव की यथार्थ रूप में तुलना करें तो हम कह सकते हैं कि पौरोहित्य आत्मा के तुल्य है तथा राज्य शरीर के तुल्य क्योंकि वे दोनों एक दूसरे से प्रेम करते हैं तथा दोनों को एक दूसरे की आवश्यकता है। जिस प्रकार आत्मा शरीर की तुलना में महान् है तथा शरीर पर नियन्त्रण रखती है उसी प्रकार पौरोहित्य का सम्बन्ध राज्य से है क्योंकि सभी वस्तुओं का इसी प्रकार ठीक रखा जा सकता है इसलिए आत्मा की तरह पुरोहित भी मनुष्यों को जो कार्य करने चाहिए उनके विषय में चेतावनी देता है जिस प्रकार राजा को पुरोहित की आज्ञा माननी चाहिए वैसे ही जनसाधारण को राजा की आज्ञा माननी चाहिए पुरोहित को जनता को शिक्षा देनी चाहिए तथा राजा को उन पर शासन करना चाहिए।[9]

हम नहीं सोचते कि यह ठीक ठीक कहना सम्भव है कि पीटर डेमियन तथा हम्बर्ट और दूसरे सुधारवादी चर्च के सदस्यों का इस प्रकार के वाक्यों से क्या अभिप्राय था हमें इसमें भी सन्देह है कि उनका वास्तव में इनसे कोई सुनिश्चित अर्थ था। तथापि इनको महत्वहीन तथा उपेक्षणीय नहीं समझा जा सकता इनके महत्त्व के भान के लिए किसी नवीन परिस्थिति की आवश्यकता थी सम्भवतः हमको कहना चाहिए कि एक नवीन परिस्थिति तथा एक दृढ़संकल्प स्वभाव की।

इस पुस्तक के पिछले खण्ड में हमारे द्वारा विवेचित समय परिवर्तन के साथ साथ नई परिस्थितियाँ विकसित हुई थी। हेनरी तृतीय के देहावसान तक यह स्पष्ट है कि चर्च के सुधारवादी दल को मुख्यतया राजकीय सत्ता का सामान्य तथा सम्पूर्ण समर्थन प्राप्त था किन्तु उसकी मृत्यु के साथ इसमें परिवर्तन आ गया। हेनरी चतुर्थ की अवयस्कता के काल में सम्राट की सत्ता का घोर दुरुपयोग हुआ तथा जब हेनरी चतुर्थ ने स्वयं शासन सम्भाला तो इसकी केवल पुष्टि (पुष्टि मात्र) ही हुई।

हम यहाँ हेनरी के व्यक्तिगत चरित्र के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की सत्यता पर विचार नहीं करते हैं—उसके राजनैतिक एवं धार्मिक शत्रुओं के वक्तव्यों को हम सावधानी से ग्रहण करना चाहिए। किन्तु यह निर्विवाद है कि व्यक्तिगत आचरण एवं चर्च से सम्बन्धित कृत्यों के द्वारा उसने अप्रसन्नता के गम्भीर कारणों को जन्म दिया। यहाँ केवल उस महान् लोकापवाद का उल्लेख करना पर्याप्त होगा जो तब फैला जब 1069 ई० में हेनरी ने अपनी पत्नी को तलाक देने की इच्छा सार्वजनिक रूप से व्यक्त की। मेन्ज का आर्चबिशप सीगफ्रिड के पोप एलेक्जेण्डर द्वितीय को लिखे गए एक पत्र में उस रोष का वर्णन करता है जो इस समाचार के कारण फैला।[10] उसी आर्चबिशप के दूसरे पत्र में हम उस समय पादरियों से सम्बन्धित अपवादों से हेनरी के सम्बन्ध का अच्छा उदाहरण पाते हैं। एलेक्जेण्डर द्वितीय ने धर्म विक्रय के आरोप के आधार पर सीगफ्रिड को कान्सटन्स के निर्वाचित बिशप का अभिषेक करने का निषेध कर दिया था तथा सीगफ्रिड सूचित करता है कि हेनरी उस पर इस कारण बहुत क्रुद्ध था तथा उसे भय था कि यदि पोप

ने उसे राजकीय कोष से नहीं बचाया तो हेनरी उसके विरुद्ध और भी कार्यवाही करेगा।[11] वास्तव मे यदि हम हेनरी चतुर्थ के ग्रेगोरी सप्तम को 1073 ई म स्वयं लिखित पत्र के वक्तव्यों को स्वीकार करें तो यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि वह व्यक्तिगत एव धार्मिक दोनों प्रकार के गंभीर दोषों से अनभिज्ञ था अथवा अभिन्न रूप मे चित्रित कराना उसे स्वीकार्य था।[12]

जब 1073 ई म हिल्डब्राड ग्रेगोरी सप्तम के रूप म पोप निर्वाचित हुआ तो चर्च के सुधारवादी दल एव साम्राज्य के तथा फ्रांस के भी राज्याधिकारियों के मध्य मतभेद बहुत बढ़ चुके थे तथा यद्यपि यह सत्य है कि काफी समय तक हिल्डेब्रण्ड ने पोप पद की नीतियों के निर्धारण मे महत्वपूर्ण योगदान किया था यह कहना भी सत्य है कि उसकी नीति पोप पद पर उसके अभिषिक्त होने के बाद से स्पष्ट एव अधिक दृढ़ हो गई। सुत्री की परिषद् के समय से पोप ने स्थिरतापूर्वक सुधार की नीति अपनाई थी विशेषत दो प्रश्नों के विषय मे—एक तो वह जिसके साथ यहाँ हमारा प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है पादरियों का विवाह तथा दूसरा चर्च के पदों का क्रय या विक्रय अर्थात् धर्म विक्रय। अबतक यह मुख्यत उन पादरियों के विरुद्ध जो कि धर्म विक्रय के अपराधी थे कठोर कार्यवाही के रूप मे अभिव्यक्त किया जाता रहा किन्तु ग्रेगोरी सप्तम के पदारोहण काल से पोप ने अपने आक्रमण का लक्ष्य लौकिक सत्ताधारियों को बनाया जो उसके निर्णयानुसार मुख्यत इस प्रकार की परिस्थितियों के लिए उत्तरदायी थे।

कभी-कभी यह भी माना गया है अथवा सुझाव दिया गया है कि यह न्यूनाधिक रूप मे लौकिक सत्ता के ऊपर धार्मिक सत्ता की श्रेष्ठता को बनाए रखने के निश्चित एव सुविचारित उद्देश्य के कारण था हमे इसमे संदेह है कि इसका कोई न्यायोचित आधार है जिस पर यह निर्णय आधारित हो तथा हमारे विचार म इतिहासकार के लिए अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण यह होगा कि वह पोप की नवीन नीति के वास्तविक विकास के निरीक्षण तक अपने को सीमित रखे। यद्यपि यह सत्य है कि नयी नीति का विकास द्रुत गति से हुआ तथा वास्तव म पदारोहण के प्रथम वर्ष मे ही ग्रेगोरी सप्तम ने यह प्रदर्शित कर दिया कि वह पोप पद के द्वारा कभी भी दावा की गई या प्रयोग की गई प्रत्येक शक्ति का उपयोग सुधार के लिए करने को कटिबद्ध था।

नई नीति का यदि हम इसे यह संज्ञा प्रदान कर सकते हैं सर्वप्रथम फ्रांसीसी राजतन्त्र के सम्बन्ध म रूप निश्चित हुआ तब 1076 ई तक हेनरी चतुर्थ के साथ पूर्ण विच्छेद नहीं हुआ था। अत हमे ग्रेगोरी सप्तम के पोप पद के आरम्भिक वर्षों म फ्रांस से उसके सम्बन्धों के निरीक्षण से अध्ययन आरम्भ करना चाहिए।

एक पिछले अध्याय म हम उस कठोर कार्यवाही का वर्णन कर चुके हैं जो पोप लियो नवम ने फ्रांसीसी चर्च मे धर्म विक्रय के विरुद्ध की थी।[13] जब हिल्डेब्रण्ड पोप बना तो उसने इस दोष को फ्रांस मे प्रचलित पाया तथा उसके निर्णय के अनुसार स्वयं राजा फिलिप प्रथम ही इस दोष का मूल कारण था। अपने पदारोहण के वर्ष 1073 ई म ग्रेगोरी सप्तम ने शालों के बिशप को एक पत्र लिखा जिसमे उसने फिलिप को अपने काल के सभी राजाओं मे से दुष्ट एव शासक तथा चर्चों की स्वतन्त्रता का सबसे बड़ा विनाशक

तथा इससे पहिले राजकीय धर्म विक्रय का विशेषतः दोषी बताकर निन्दा की थी। वह स्पष्टतः इसका अपराध उस पर आरोपित करता है क्योंकि वह फ्रेंच राज्य को रोमन चर्च के प्रति निष्ठा एवं भक्ति में हानिकारक बताता है। वह राजा की निन्दा करने मात्र तक ही सीमित न रह कर उसे स्पष्ट शब्दों में धमकी देता है कि यदि फिलिप न अपने गलत तरीकों में सुधार नहीं किया तो वह राज्य का सामान्य धर्म बहिष्कार कर देगा तथा इस प्रकार फ्रांसीसी जनता को विवश कर देगा[14] कि वह राजा के प्रति आज्ञा पालन को समाप्त कर दे।

हम वास्तव में एक नई नीति के आश्चर्यजनक प्रमाण उपलब्ध होते हैं कि रोमन धर्मपीठ अब एक पोप के अधीन है जो अपने अधिकार में विद्यमान सभी साधनों को अपनाकर चर्च की परिस्थितियों में सुधार लाने को कृतनिश्चय है। इस पत्र में प्रकट नीति और संकल्प आगामी वर्षों में और विकसित हो गए। सितम्बर 1074 ई० में ग्रेगोरी सप्तम ने राइम्स सेन्ज व बोर्डो के आर्चबिशपों शार्त्र के बिशप तथा फ्रांस के अन्य बिशपों को पत्र लिखकर राजा की दुष्टता को रोक सकने की असफलता के लिए उनको फटकारा और उनको आज्ञा दी कि एकमत होकर उसका प्रतिवाद करें तथा उसके समक्ष उसके कार्यों की दुष्टता की निन्दा करें। यदि वह उनकी बात पर ध्यान न दे तो उसे चेतावनी दे दें कि वह पादरी की तलवार से नहीं बच सकेगा तथा वे रोम का आज्ञा पालन करते हुए अपने को उसकी आज्ञा पालन तथा धार्मिक सभा से पृथक कर लें तथा सारे फ्रांस में दैवी उपासना के सार्वजनिक कार्यों को निषिद्ध कर दें और अन्त में फिर भी यदि फिलिप पश्चात्ताप न करे तो उसने अपना निश्चय प्रकट किया कि वह उसे फ्रांस के राजत्व से वंचित करने के लिए अपनी शक्ति भर कोई उपाय उठा नहीं रखेगा।[15]

उसी वर्ष के नवम्बर में ग्रेगोरी ने प्वातू के सामन्त (Poitou) विलियम को लिखा तथा उसे फिलिप से मिलकर उसके अन्यायों के विशेषतया फ्रांस में इटली के व्यापारियों को लूटने के सम्बन्ध में उसके आचरण के विषय में प्रतिवाद करने को कहा और उसे निर्देश दिया कि यद्यपि इस समय वह उसके पश्चात्ताप को स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत है किन्तु यदि उसने अपने बुरे तौर-तरीकों को नहीं सुधारा तो उसको तथा उसकी आज्ञा का पालन करने वाले सभी को वह धर्म बहिष्कृत कर देगा। पुनः उसी वर्ष 1074 ई० के दिसम्बर में उसने राइम्स के आर्चबिशप मेनेसस (Manasses) को उसी विषय में पत्र लिखकर राजा के नए एवं अभूतपूर्व अपराध की कि उसने इटली एवं दूसरे देशों के व्यापारियों को लूटा है निन्दा की तथा उसे चेतावनी दी कि यदि वह ऐसे अपराध करता रहा तो वह पोप और रोमन चर्च को सदैव कट्टर शत्रु के रूप में पाएगा। फरवरी 1075 ई० में रोम की परिषद् में उसने आदेश दिया कि जबतक फिलिप अपने संशोधित व्यवहार के बारे में पोप के दूतों को जमानत नहीं देता जो कि फ्रांस को भेजे जाने वाले थे वह धर्म बहिष्कृत रहेगा।[16]

ग्रेगोरी सप्तम के इस पत्र की शब्दावली में लौकिक सत्ताओं के प्रति पोप के एक नए दृष्टिकोण धर्म विक्रय के अपराधी केवल पादरियों के प्रति ही नहीं किन्तु यदि उसके लिए उत्तरदायी हों तो लौकिक सत्ताधारियों से भी निपटने और राजाओं को धर्म-बहिष्कृत

एव पदच्युत करने के पोप के अधिकार के आरोपण के दर्शन होते हैं। बहुत बाद तक इन दावों का तर्कसंगत स्पष्टीकरण ग्रेगोरी के द्वारा नहीं किया गया किन्तु यह उल्लेखनीय है कि 1074 ई. में हंगरी के राजा सॉलोमन को लिखे गए एक पत्र में वह इस पर बल देता है कि ईसा ने पीटर को दुनिया के समस्त राज्यों का राजा बनाया था तथा एक प्रलेख में जिस पर 1075 ई. की तारीख पड़ी है तथा जिसमें पोप की सत्ता की प्रकृति के बारे में सारे कथनों का सार है हम इस सिद्धान्त का प्रबल समर्थन पाते हैं कि पोप शासकों को पदच्युत कर सकता है तथा ऐसे शासकों की प्रजाओं को उनके प्रति राजभक्ति से मुक्त कर सकता है।[17] वास्तव में इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि पोप निरन्तर ही राजाओं पर भी अपने आध्यात्मिक अधिकार का वैसा ही दावा करता आया था जैसा साधारण मनुष्यों पर किन्तु यह अवधारणा कि इसके अन्तर्गत राजाओं को पदच्युत करने का अधिकार भी आता है पूर्णतया भिन्न थी। हमारी प्रथम पुस्तक में हमने कुछ लेखकों को उद्धृत किया है जो यह सिद्ध करते हैं कि यह परिकल्पना अपरिचित नहीं थी तथा कम से कम कभी कभी नवीं शताब्दी में स्वीकार भी की जाती रही थी किन्तु ग्रेगोरी सप्तम की इतनी दृढ़ शब्दावली निश्चित रूप से एक नवीन विश्वास एवं नई नीति की परिचायक प्रतीत होती है।[18]

यदि नई नीति सबसे पहले पोप एवं फ्रांसीसी राजतन्त्र के सम्बन्धों में दिखाई दी तो उसका विकास साम्राज्य के सम्बन्धों के विषय में हुआ। हम यहाँ ग्रेगोरी सप्तम एवं हेनरी चतुर्थ के बीच महान् संघर्ष के विस्तृत इतिहास को प्रस्तुत करने का दावा नहीं करते किन्तु हमें उसकी दिशा का उस सीमा तक अनुसरण करना चाहिए जहाँ तक कि वह संघर्ष के आधारभूत सिद्धान्तों को समझने के लिए अनिवार्य हो। हम 1069 ई. में अपनी पत्नी को तलाक देने के हेनरी चतुर्थ के प्रस्ताव तथा धर्मपद विक्रय में उसके संपर्क से उत्पन्न काफी गम्भीर नोकझोंक का पहले उल्लेख कर चुके हैं। जब 1073 ई. में हिल्डेब्रांड का पोप पद पर अभिषेक हुआ तब तक हेनरी चतुर्थ व्यक्तिगत रूप से एवं स्पष्ट शब्दों में धर्म बहिष्कृत नहीं हुआ था किन्तु उसने धर्म-बहिष्कृत लोगों के सम्पर्क से अपने को पृथक करने को अस्वीकार कर लिया था उसकी अवहेलना की इसलिए वह अप्रत्यक्षत चर्च के निषेधाधीन था। तथापि यह ध्यान देने योग्य है कि हिल्डेब्रांड ने यह सावधानी बरती कि हेनरी चतुर्थ के रुष्ट का कोई कारण न दे तथा ऐसा प्रतीत होता है कि उसके वास्तविक अभिषेक से पूर्व उसके राय लिए जाने के दावे को स्वीकार कर लिया।[19]

पोप की गद्दी पर पदारोहण के समय हेनरी के प्रति ग्रेगोरी का दृष्टिकोण लारेन के ड्यूक गाडफ्रे को लिखे गए पत्र में भलीभाँति प्रकट होता है। वह उसे विश्वास दिलाता है कि हेनरी का हित उससे अधिक कोई नहीं चाहता तथा उसे यही प्रसन्नता होगी यदि हेनरी न्यायपालन में उसकी राय एवं प्रार्थना का ध्यान रखे किन्तु वह स्पष्टतया यह भी कहता है कि किसी भी व्यक्ति के प्रति सम्मान की भावना उसे उनका न्याय करने से ईश्वर से जो घृणा करते थे विमुख नहीं कर सकती।[20] पुनः ल्यूका के निर्वाचित बिशप एन्सलम को 1073 ई. के सितम्बर में लिखे गए पत्र में वह उसे तबतक हेनरी से प्रतिष्ठापन प्राप्त करने का निषेध करता है जबतक कि उसने धर्म-बहिष्कृत लोगों के साथ सहभागिता के

लिए ईश्वर के प्रति प्रायश्चित न कर लिया हो तथा पोप से शांति न कर ली हो।[21]

ग्रेगोरी का सत्तारोहण हेनरी चतुर्थ के विरुद्ध सेक्सनों के महान् विद्रोह के भड़क उठने के साथ ही साथ हुआ। इस ग्रन्थ की तीसरी पुस्तक में हमने राजनैतिक विचारों के विकास व इतिहास के सम्बन्ध में उसका महत्व प्रदर्शित किया है। हम यहां पहले कही हुई बात की पुनरुक्ति नहीं कर सकते न हम परिस्थितियों का विस्तृत विवेचन कर सकते हैं किन्तु जर्मनी की राजनैतिक परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है क्योंकि निस्सन्देह पोप की स्थिति के विकास में उनका बहुत बड़ा योगदान था। निस्सन्देह चाहे वह आंशिक रूप में ही रहा हो विद्रोह के भय ने ही उसे इतनी विनम्रता से तथा पश्चात्ताप-पूर्वक अपने को 1073 ई० के उस पत्र द्वारा अभिव्यक्त करने को विवश किया जिसे हम पहले उद्धृत कर चुके हैं। वह अत्यन्त नम्रता से यह स्वीकार करता है कि उसने सत्ता का दुरुपयोग किया है तथा वह धर्म विक्रय का अपराधी है उसने ग्रेगोरी से मन्त्रणा देने की प्रार्थना की तथा आज्ञापालन की प्रतिज्ञा की।[22] एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पत्र में जो सितम्बर 1073 ई० में मेग्डेबर्ग के आर्चबिशप तथा दूसरे सेक्सन राजाओं को जो हेनरी के विरुद्ध विद्रोह कर रहे थे लिखा गया था हेनरी तथा उसकी प्रजाओं के बीच ग्रेगोरी के हस्तक्षेप का सर्वप्रथम महत्वपूर्ण दृष्टान्त है। वह उनमें उत्पन्न हुए संघर्ष तथा परिणामस्वरूप होने वाली जर्मनी की बर्बादी पर क्षोभ प्रकट करता है तथा स्पष्टतया पुनः शांति स्थापित करने के लिए वास्तविक रूप में अभिलाषी है किन्तु यह उल्लेखनीय है कि उसने प्रारम्भ से ही उनके तथा राजा के प्रति सत्ता एवं मध्यस्थ की स्थिति अंगीकार की है। वह उनसे कहता है कि उसने राजा से प्रार्थना की है तथा चेतावनी दी है कि पीटर तथा पाल नामक प्रेरितों के नाम पर वह तबतक संघर्ष से विरत रहे जबतक कि वह संघर्ष के कारणों को जानने के लिए दूतों को भेजकर शांति स्थापित नहीं कर देता है तथा वह उसी शांति की शर्त का पालन करने के लिए उनको भी प्रतिबन्धित करता है। वह उनको विश्वास दिलाता है कि वह न्याय को स्थापित करने का प्रयास करेगा तथा किसी भी व्यक्ति के भय या आदर से ऊपर उठकर धर्मामनीय सत्ता का संरक्षण उस पक्ष को देगा जिसके साथ अन्याय हुआ है तथा जिसकी हानि हुई है।[23] इस पत्र का स्वर शिष्ट किन्तु अधिकारपूर्ण है।

यह प्रतीत होगा कि हेनरी ने चर्च से कोई समझौता नहीं किया था किन्तु जून 1074 ई० में हेनरी चतुर्थ की माता साम्राज्ञी एग्नेस को ग्रेगोरी द्वारा लिखे गए एक पत्र से यह स्पष्ट होता है कि इस समय तक हेनरी को चर्च की सहभागिता में पुनः स्वीकार कर लिया गया था तथा इस प्रकार जैसा ग्रेगोरी कहता है उसके साम्राज्य का एक बड़ा भारी खतरा टल चुका था क्योंकि हेनरी जबतक उस धर्म सहभागिता से बहिष्कृत था ग्रेगोरी उससे भेंट नहीं कर सकता था तथा प्रजाओं से उसके सम्बन्ध अत्यन्त कठिन थे।[24] दिसम्बर 1074 ई० में हेनरी को लिखे गए उसके एक पत्र में हमारे पास एक बयान है जो कि मित्रतापूर्ण है परन्तु साथ ही कठोर भी जिसमें वह उसे चेतावनी देता है कि वह न्यायपूर्वक अपने राज्य को तभी तक बनाए रख सकता है जबतक कि वह ईसा के चर्च की सुरक्षा एवं पुनरुद्धार के लिए अपने अधिकारों का उपयोग करे।[5] उसी समय के एक दूसरे पत्र में हम ग्रेगोरी की हेनरी के प्रति जब कि उसने पश्चात्ताप तथा सुधार का पूर्ण

आश्वासन मिल गया था भावनाओं की अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। वह हेनरी के प्रति अविरत स्नेह की अभिव्यक्ति करता है तथा इस पर खेद प्रकट करता है कि मनुष्य उनमें फूट के बीज बो रहे हैं तथा उससे अनुरोध करता है कि उसकी स्वय की इच्छा ईसा की समाधि तक एक सेना के साथ जाने एव पूर्वीय ईसाइयो की सहायता करने की है तथा यदि ईश्वर की कृपा से वह ऐसा कर सका तो चच को हेनरी के सरक्षण मे छोड देने का इच्छुक है ताकि वह माता की भाँति उसका सरक्षण करे तथा उसके गौरव की सुरक्षा करे। वह इस प्राथना से समाप्त करता है कि ईश्वर उसे सभी पापो से मुक्त करे तथा उसके आदेशो के अनुरूप जीवन-यापन की उसे प्रेरणा दे तथा उसे शाश्वत जीवन की ओर लाए।[26] अनस्ट्रट (Unstrut) मे हेनरी की सेक्सनो पर विजय के उपलक्ष्य मे लिखे गए पत्र मे वह प्रसन्नता व्यक्त करता है कि दवी निर्णय ने उसे सेक्सनो पर जो अन्यायपूर्वक उसका प्रतिरोध कर रहे थे यह विजय प्रदान की है साथ ही वह इस पर खेद भी प्रकट करता है कि इतना अधिक ईसाई रक्त बहा है तथा उसे विश्वास दिलाता है कि वह उसके प्रवेशार्थ चच को खोलने तथा ऐसे व्यक्ति के रूप मे उसका स्वागत करने को तयार है जो एक ही साथ चच का स्वामी तथा पुत्र है यदि वह अपनी स्वय की मुक्ति का विचार करने तथा ईश्वर को सम्मान एव गौरव प्रदान करने को तयार हो।[27]

किन्तु जनवरी 1076 ई मे हम देखते हैं कि ग्रेगोरी एव हेनरी के बीच सम्बन्धो मे गम्भीर तनाव आ गया था। इसी मास की आठवीं तारीख को उसने पुन धम-बहिष्कृत लोगो से उसे पृथक रहने का उपदेश दिया तथा फर्मो एव स्पोलेटो (Fermo and Spoleto) के बिशप पद ऐसे व्यक्तियों को प्रदान करने के लिए उसकी शिकायत की जिनको ग्रेगोरी पहचानता भी नही था।[28] कुछ सप्ताहों के बाद अन्तिम विस्फोट हुआ तथा ग्रेगोरी सप्तम एव हेनरी चतुथ एक दूसरे के विरुद्ध खुली लड़ाई को तत्पर हो गए। इन परिस्थितियों का विवरण हसफील्ड के लेम्बट ग्रेगोरी सप्तम एव ब्रूनो ने दिया है। लेम्बट के अनुसार पोप के दूत जमनी मे आए तथा हेनरी को उस पर लगाए गए आरोपो का उत्तर देने के लिए लेन्ट (Lent) के दूसरे सप्ताह में रोम मे होने वाली परिषद् म उपस्थित होने को निमन्त्रित किया तथा घोषणा की कि यदि वह ऐसा नही करेगा तो चच निणय द्वारा उसे चच से निकाल दिया जाएगा। हेनरी इस घोषणा से बहुत विचलित हो गया तथा उसने दूतों को तुरन्त ही धृष्टतापूवक विदा करके अपने साम्राज्य के सभी बिशपो तथा मठाध्यक्षों को सेप्टुएजेसिमा (Septuagesima) रविवार को वम्स नामक स्थान पर बुलाया जहाँ वे ग्रेगोरी की पदच्युति पर विचार कर सकें क्योंकि यह उसकी एव साम्राज्य की सुरक्षा के लिए आवश्यक हो गया था। ग्रेगोरी ने 1 अगस्त 1076 को जमनी के श्रद्धालुओ को लिखे गए पत्र मे हेनरी चतुथ से सम्बन्धो का एक विस्तृत विवरण प्रस्तुत करके यह बताया है कि उसने हेनरी को चेतावनी देते हुए लिख दिया है कि यदि वह अपने को धम-बहिष्कृत लोगो के सम्पक से अलग नही रखता तो उसे चच से पृथक मान लिया जाएगा तथा भत्सना के कारण क्रुद्ध हेनरी ने जमनी व लम्बार्डी के कई बिशपो को इसके लिए फुसला लिया है कि वे पोप की गद्दी का आज्ञा पालन छोड दें।[29]

परिषद् निश्चित दिन हुई तथा उसकी कायवाही का सबस अच्छा ज्ञान उन पत्रो पर

विचार करने से होगा जो कि स्वयं बिशपों एवं हेनरी चतुर्थ ने निर्णयों की घोषणा करते हुए लिखे थे। हम बिशपों के पत्रों में वर्णित सभी विषयों पर विचार नहीं कर सकते किन्तु उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण निम्न थे। इन पत्रों में उनके द्वारा आरोप लगाया गया कि उसने (ग्रेगोरी ने) सभी चर्चों में उपद्रव खड़ा कर दिया है जनता को बिशपों एवं पादरियों के विरुद्ध कर दिया है तथा बिशपों की नियुक्ति को स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने का अधिकार हथिया लिया है तथा किसी भी व्यक्ति को जिसके अपराध के प्रति उनका ध्यान आकर्षित किया गया हो बांधने या मुक्त करने के अधिकार का भी उन्हें निषेध कर दिया है। उनके द्वारा सुझाव दिया गया कि पोप पद पर उसका निर्वाचन अनियमित है तथा पोप निकोलस द्वितीय के घोषणा पत्र के बिल्कुल विरुद्ध है। उस पर किसी स्त्री से अपवादपूर्ण सम्बन्ध एवं उसे धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप करने की छूट देने का आरोप लगाया गया। अतः उन्होंने निश्चय किया कि वे उस पोप के रूप में मान्यता नहीं देंगे।[30]

हेनरी ने ग्रेगोरी के लिखे गए पत्र में कहा कि पहले उसने उन बिशपों पर आक्रमण किया है जो उसके मित्र हैं और इसके बाद स्वयं उस पर (हेनरी पर) आक्रमण के लिए तैयार हो गया है तथा उसकी आत्मा और साम्राज्य को छीनने की धमकी दे रहा है। परिणामस्वरूप उसने साम्राज्य के सभी प्रमुख लोगों की एक सभा बुलाई है और उनके द्वारा यह निश्चय किया गया है कि ग्रेगोरी को पोप नहीं स्वीकार किया जाए। हेनरी ने ने उनके निर्णय की पुष्टि कर दी है तथा ग्रेगोरी के पोप-पद पर दावे को अस्वीकार कर दिया है तथा उसे आदेश देता है कि उस रोम नगर के धर्मपीठ को छोड़ दे जिसका कि वह ईश्वरीय प्रदान द्वारा तथा रोमन जनता की शपथपूर्ण सहमति द्वारा साम्राज्यिक प्रतिनिधि है।[31] रोमन जनता को सम्बोधित अपने पत्र में हेनरी ने अपने पूर्व पत्र का उल्लेख किया है तथा उनका ग्रेगोरी के विरुद्ध विद्रोह करने एवं उसे पोप पद से उतारने के लिए आह्वान किया है ताकि हेनरी द्वारा सभी बिशपों एवं रोमन नागरिकों की सहमति से नया पोप नियुक्त किया जा सके जो चर्च के घावों को भर सके।[32]

सम्भवतः यह उल्लेखनीय है कि बिशपों का पत्र मूलतः धार्मिक शिकायतों तथा ग्रेगोरी के चुनाव की तथाकथित अनियमितताओं पर बल देता है जबकि हेनरी का मुख्यतः पोप द्वारा उसे धर्म बहिष्कृत करने की धमकी तथा उसे पदच्युत करने की आरोपित धमकी का वर्णन करता है। हम नहीं कह सकते हैं कि क्या उसका यह अभिप्राय धर्म बहिष्कृत करने की धमकी में छिपा था केवल मात्र जिसका वर्णन लेम्बर्ट ने किया है अथवा ग्रेगोरी का कोई इस प्रकार का वक्तव्य था जैसा कि हेनरी के पत्र में उसके शब्दों से विदित होता है (Scilicet ut tuisverbis utar)। हेनरी ने स्पष्टतया आरोप लगाया है कि ग्रेगोरी ने उसे पदच्युत करने की धमकी दी थी। यह इस ग्रन्थ की विषय-वस्तु के बाहर की बात है कि इस प्रश्न पर विचार किया जाए कि कहाँ तक बिशपों की यह मान्यता तर्कसंगत थी या नहीं कि ग्रेगोरी उन पर नए अधिकारों का दावा कर रहा है। निस्सन्देह यह सत्य है कि पोप उत्तरी चर्च की दशाओं को सुधारने के प्रयत्नों में अपनी गतिविधि को एक बड़ी सीमा तक बढ़ा रहा था किन्तु सद्धान्तिक रूप में यह कितनी नवीन वृद्धि की परिचायक थी यह दूसरी बात है।

हमारा सम्बन्ध यहाँ लौकिक एवं धार्मिक सत्ता में सम्बन्धों से है तथा अब वोम्स की परिषद् की कार्यवाही से हट कर रोम में फरवरी में हुई ग्रेगोरी की परिषद् की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। इस परिषद् में संत पीटर को सम्बोधित एवं स्तुति की पदावली का प्रयोग करके ग्रेगोरी ने गम्भीरता से हेनरी को धर्म बहिष्कृत कर दिया उसे जर्मनी व इटली के सम्राट पद से पदच्युत कर दिया तथा सभी प्रजाजनों को उनकी निष्ठा की शपथ से मुक्त कर दिया। इसने यह इन आधारों पर किया कि हेनरी ने ईश्वर की आज्ञा मानने से अस्वीकार कर दिया है उन लोगों में सम्मिलित हो गया है जो धर्म बहिष्कृत हैं तथा उसने चर्च में विभाजन का प्रयत्न किया है उसने इस अधिकार का दावा संत पीटर के नाम पर किया जिसे ईसा ने स्वर्ग और धरती पर बाँधने या मुक्ति की शक्ति सौंप दी है।[33]

अन्ततः संघर्ष एक खुला युद्ध हो गया तथा यूरोप की सबसे महान् लौकिक सत्ता रोम की धार्मिक सत्ता के विरुद्ध हो गई। अब हम उन प्रलेखों की परीक्षा करते हैं जिनमें हेनरी तथा ग्रेगोरी ने अपने कार्यों का औचित्य सिद्ध किया है। सबसे पहला महत्त्वपूर्ण वक्तव्य जिस पर हमें विचार करना चाहिए ग्रेगोरी का 27 मार्च 1076 को लिखा गया हेनरी का पत्र है जो उसने सम्भवतः फरवरी में रोम की परिषद् द्वारा अपने धर्म बहिष्कृत एवं पदच्युति के बारे में सुनकर लिखा था। वह इस पत्र में उसे पोप के रूप में नहीं किन्तु झूठे साधु हिल्डेब्राण्ड के रूप में सम्बोधित करता है तथा वह उस पर चर्च की सभी न्यायोचित व्यवस्था को भंग करने तथा बिशपों से अपने गुलाम की भाँति व्यवहार करने का आरोप लगाता है वह कहता है कि उसने धैर्यपूर्वक इन सबको सहन किया किन्तु हिल्डेब्राण्ड ने इसकी नम्रता को कायरता समझ लिया है तथा अन्त में राजकीय सत्ता पर आक्रमण किया है जो इसे ईश्वर द्वारा प्रदत्त है तथा उससे उसे छीनने की धमकी दी है मानो हेनरी को राजगद्दी उसी ने दी हो। पवित्र धर्माचार्यों की परम्परा ने यह सिखाया है कि अभिषिक्त राजा का न्याय केवल ईश्वर द्वारा होना है तथा उसे धर्म के अतिरिक्त किसी भी अन्य अपराध के कारण पदच्युत नहीं किया जा सकता। इसलिए वह तथा सभी बिशप आज्ञा देते हैं कि हिल्डेब्राण्ड पोप की गद्दी से उतरे तथा दूसरे के लिए जगह खाली करे।[34] यह पत्र दो महत्त्वपूर्ण दावे या सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। पहला हेनरी की नियुक्ति ईश्वर द्वारा हुई है और वह केवल ईश्वरीय न्याय के अधीन है तथा यदि वह धर्म त्याग करे तभी उसे पदच्युत किया जा सकता है दूसरा यह कि राजा और बिशपों को पोप का न्याय करने एवं उसे पदच्युत करने का अधिकार है। किन्तु यह अधिकाशतः अस्पष्ट रूप में ही प्रस्तुत किया गया है तथा इन दावों के आधार एवं परिस्थितियों को स्पष्टतया नहीं बताया गया है।

हेनरी की स्थिति एक दूसरे लेख में अधिक सावधानी से प्रस्तुत की गई है जो वास्तव में व्हिटसनटाइड (Whitsuntid) पर होने वाली परिषद् के लिए बिशपों को सम्बोधित निमन्त्रण समझा जाता है। इसमें वह कुछ सावधानी से दोनों सत्ताओं राजकीय तथा धार्मिक के विभेदक सिद्धान्तों का वर्णन करता है जिन्हें ईसा ने अपने चर्च में दो तलवारों के रूप में स्थापित किया और वह इनके पृथक्-पृथक् कार्यों का वर्णन करता है। धार्मिक

सत्ता को ईश्वर के पश्चात् राजा के प्रति आज्ञापालन प्राप्त कराता है तथा राजकीय सत्ता को ईसा के शत्रुओं को जीतना है तथा चर्च के अन्तर्गत मनुष्यों को धार्मिक सत्ता की आज्ञापालन के लिए विवश करता है। हिल्डब्राण्ड इस व्यवस्था को नष्ट करने का प्रयत्न कर रहा था तथा ऐसा करते हुए वास्तव में दोनों सत्ताओं की स्थिति एवं शक्ति को नष्ट कर रहा था। प्रासंगिक रूप से वह इसे भी अस्वीकार कर देता है कि ईश्वर ने हिल्डेब्राड को धार्मिक सत्ता सौंपी है।[35]

हिल्डेब्राण्ड ने अपनी स्थिति को तर्कपूर्ण शब्दों में मेटस के बिशप हरमन को अगस्त 1076 ई० में भेजे गए एक पत्र में व्यक्त किया। प्रमुख रूप से वह उन लोगों के तर्कों को सम्बोधित कर रहा है जो यह मानते थे कि एक राजा को धर्म बहिष्कृत करना उचित नहीं है। वह अनेक अधिकृत मत एवं ऐतिहासिक दृष्टान्तों को प्रस्तुत करके सिद्ध करता है कि यह विधि सम्मत था तथा ऐसा प्रहण किया भी गया है। वह तर्क देता है कि यह धारणा कि कोई भी व्यक्ति धार्मिक अधिकार क्षेत्र से मुक्त हो सकता है वास्तविक दृष्टि से मूर्खतापूर्ण है क्योंकि इसका अभिप्राय होगा कि वह चर्च से बाहर है तथा ईसा से परे है। राजा को धर्म-बहिष्कृत करना न्यायोचित सिद्ध करने के लिए वह पोप जकरियास अभिकथित द्वारा फ्रांस के अन्तिम मेरोविन्जियन (Merovingian) राजा की अभिकथित पदच्युति का दृष्टान्त देता है तथा ग्रेगोरी महान् के पत्र के शब्दों को प्रस्तुत करता है जिसमें उसने अपना निर्णय न मानने वाले राजाओं को न केवल धर्म बहिष्कार अपितु पद हानि की भी धमकी दी थी। सम्भवतः जब वह कहता है कि पोप का धर्मासन जो ईश्वर द्वारा प्रदत्त सत्ता के कारण धार्मिक मामलों का निर्णय करता है लौकिक विषयों में भी क्यों न निर्णय करे तो उसका यही अभिप्राय है। कुछ लोग मानते हैं कि राजकीय गौरव बिशप के गौरव से बढ़कर है वह उसका विरोध करते हुए कहता है कि सत्य इससे ठीक विपरीत है तथा यह इसकी उत्पत्ति से ही स्पष्ट है राजत्व का मूल मनुष्य का अहंकार है जबकि बिशप का पद ईश्वर निर्मित है। अन्त में वह हेनरी को पाप मुक्त करने का प्रत्येक व्यक्ति को कठोरता से निषेध करता है क्योंकि यह पोप के निर्णय के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए।[36]

जर्मनी के श्रद्धालुओं को सम्बोधित तीन सितम्बर के पत्र में ग्रेगोरी ने अपनी स्थिति तथा दावा किए गए अधिकारों को कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तनों सहित प्रस्तुत किया। उसने हेनरी को धर्म बहिष्कृत करने वाला घोषणा की ओर उनको निर्देशित किया जो कि उस कार्य को करने के आधारों के बारे में एक वक्तव्य चाहते थे तथा उनको यह समझाने का प्रयत्न किया कि हेनरी का धर्म बहिष्कार ही नहीं हुआ है अपितु उसे पदच्युत भी कर दिया गया है तथा सभी व्यक्तियों को उनकी निष्ठा की शपथ से मुक्त कर दिया गया है। वह चाहता है यदि वह (हेनरी) पश्चात्ताप करे तो विशेषतया उसके पिता व माता के कारण उस पर दया की जाए किन्तु हेनरी को यह जान लेना चाहिए कि चर्च उसके हाथों का खिलौना नहीं किन्तु उसके ऊपर स्थापित है। यदि वह पश्चात्ताप नहीं करेगा तो दूसरा राजा चुना जाएगा जो ग्रेगोरी के आदेशों का पालन करने की प्रतिज्ञा करेगा तथा ईसाई धर्म और सम्पूर्ण साम्राज्य के हित में जो जो कार्य आवश्यक प्रतीत हो करेगा।

वह चाहता है कि जिसे वे चुनें उस व्यक्ति तथा उसके चरित्र के बारे में वे उसे सूचना दें ताकि वह उनके चुनाव और नई व्यवस्था की पुष्टि करे जैसा कि पवित्र धर्माचार्यों ने पहले भी किया है। अन्तत वह साम्राज्ञी एग्नेस को की गई किसी शपथ का उल्लेख करता है तथा यदि उन्होंने उसके पुत्र को सम्राट पद से हटाने का निश्चय कर लिया हो तो साम्राज्ञी से और स्वयं (पोप) से उसके उत्तराधिकारी के रूप में चुने गए व्यक्तियों के बारे में राय लेने का आदेश देता है।[37]

यदि हम इन प्रलेखों में विद्यमान सिद्धान्तों एवं दावों को संक्षिप्त करने का प्रयत्न करें तो हमें प्रतीत होगा कि ग्रेगोरी द्वारा राजा के ऊपर भी आध्यात्मिक-क्षेत्राधिकार प्रयुक्त करने के दावे से तत्काल एवं प्रत्यक्ष रूप से संघर्ष उत्पन्न हुआ। हेनरी को अभिकथित धार्मिक अपराधों का स्पष्टीकरण देने के लिए रोम आने की आज्ञा ही इस संघर्ष का तात्कालिक कारण थी। ग्रेगोरी की मूलभूत एवं प्रथम मान्यता यह थी कि राजा भी चर्च की धार्मिक गर्हा का पात्र है तथा यदि आवश्यकता हो तो उसे भी धर्म-बहिष्कृत किया जा सकता है। यह स्पष्ट नहीं है कि क्या ग्रेगोरी ने हेनरी को औपचारिक रूप से पदच्युत करने की धमकी दी थी किन्तु हेनरी ने समझा कि उसने ऐसा किया है चाहे स्पष्ट रूप से हो या अस्पष्ट रूप से। इसीलिए उसने विरोध में दावा किया कि उसे तथा बिशपों को पोप का न्याय करने के लिए बैठने का अधिकार है तथा इस दावे के अनुसार काम करते हुए उनके द्वारा वार्म्स में ग्रेगोरी को पदच्युत करने की घोषणा की गई। ग्रेगोरी ने इसका उत्तर हेनरी को धर्म बहिष्कृत तथा ईश्वर तथा स्वयं चर्च के विरोधी के रूप में औपचारिक रूप से पदच्युत करके दिया तथा विभिन्न तर्कों एवं दृष्टान्तों से अपने कार्यों का औचित्य सिद्ध किया। हेनरी ने इसका उत्तर दो प्रकार से दिया पहला तो इस दावे के रूप में कि राजा केवल ईश्वर के निर्णय के अधीन है तथा उसे अपधर्म के अतिरिक्त अन्य किसी कारण से पदच्युत नहीं किया जा सकता तथा दूसरे उसने अपने समर्थन में दोनों सत्ताओं की विभिन्नता एवं स्वतन्त्रता की गलेसियन परम्परा को उद्धृत किया। यह ध्यान देना चाहिए कि मेट्ज के बिशप हरमन को लिखे गए पत्र में ग्रेगोरी ने स्पष्ट रूप से इसे अस्वीकार नहीं किया किन्तु राजा पर धार्मिक सत्ता के दावे की पुष्टि की तथा सम्भवतया यह माना कि उसके अन्तर्गत पदच्युत करने का अधिकार भी सम्मिलित है। उसने स्पष्ट किन्तु महत्त्वपूर्ण शब्दों में यह मान्यता प्रस्तुत की कि पवित्र पोप यदि धार्मिक मामलों का निर्णय कर सकता है तो वह लौकिक वस्तुओं का भी निर्णय कर सकता है। वास्तविक परिस्थिति के विशेष सन्दर्भ में उसने उस व्यक्ति के बारे में विचार करने एवं स्वीकृति प्रदान करने का भी दावा किया जिसे जर्मन जनता हेनरी के स्थान पर चुने।

इस प्रकार महान् संघर्ष की यह प्रथम सीढ़ी थी तथा दोनों दलों द्वारा प्रस्तुत किए गए दावों का यह स्वरूप था। अब हमें ऐतिहासिक परिस्थिति में विकास तथा प्रस्तुत किए गए सिद्धान्तों के उत्तरकालीन विकास का संक्षिप्त विवेचन करना चाहिए।

ऐसा प्रतीत हुआ होगा कि ग्रेगोरी से संघर्ष में हेनरी जर्मनी एवं यहाँ तक जर्मन बिशपों का भी समर्थन प्राप्त कर सका था किन्तु थोड़े ही समय में स्पष्ट हो गया कि

यह सत्य नहीं था। ग्रसन्ट की 1075 ई की विजय ने सेक्सनो के विद्रोह को दबा कर जमनी मे हेनरी की सर्वोच्चता स्थापित कर दी किन्तु 1076 ई मे एक नया तथा व्यापक विद्रोह खडा हो गया तथा थोडे समय म राजनतिक स्थिति पूणतया बदल गई।

सक्सनो ग्रौर सुग्राबियनों (Suabians) ने खुला विद्रोह कर दिया ग्रौर हेनरी तूफान के ग्राग सिर झुकाने को बाध्य हो गया। इतिहासकारो म घटाग्रो के बारे मे मतभेद है किन्तु वे सर्वाधिक महत्त्वपूण ग्रनेक प्रश्नो पर एकमत हैं। हेनरी ग्रेगोरी को ग्रात्मसमपण करने के लिए बाध्य हुग्रा तथा राजाग्रों ने निश्चय किया कि यदि वह एक वष मे पाप मुक्त नहीं होता है तो वह सम्राट नहीं रहेगा उन्होने पोप को जमनी ग्राने का निमत्रण दिया ताकि सघष समाप्त किया जा सके।[8] हेनरी द्वारा ग्रेगोरी सप्तम तथा जमन राजाग्रो को लिखे पत्रो म उसके समपण की घोषणा ग्रत न स्पष्ट शब्दो मे ग्रभिव्यक्त है।[39]

हेनरी ने विद्रोही राजाग्रो की शर्तों को स्वीकार कर लिया तथा वह स्पायस को लौट गया किन्तु ग्रपने धम-बहिष्कार की वषगांठ से पूव पाप मुक्त होने क महत्त्व को देखते हुए उसने ग्रेगोरी के सम्मुख उपस्थित होने तथा ग्रपने को पाप मुक्त करने के लिए इटली जाने का निश्चय कर लिया। ग्रेगोरी उसी समय रोम से जमनी जाने को रवाना हो चुका था ग्रौर हेनरी जब ग्राया तब वह केनोसा पहुच चुका था। हम कनोसा के दरवाजे पर हेनरी के नगे पर खडे रहने का कथा का वणन करने की ग्रावश्यकता नहीं है किन्तु उसकी पाप मुक्ति की शर्तें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। ग्रेगोरी सप्तम के पजिका म हेनरी के द्वारा 28 जनवरी 1077 ई को का गई *तथाकथित प्रतिज्ञाग्रो का विवरण मिलता* है। इसमे हेनरी ने प्रतिज्ञा की कि जमन साम्राज्य के ग्राचबिशपो बिशपो तथा ग्रन्य राजाग्रो द्वारा उसके विरुद्ध की गई शिकायतो के बारे मे या तो पोप के निणय क ग्रनुसार न्याय करेगा या उसकी राय से पोप द्वारा निश्चित की गई शर्तों के ग्रनुसार शान्ति स्थापित कर देगा जबतक कि वह या पोप किसी भी निश्चित बाधा (certum impedimentum) से ग्रवरुद्ध न हो जाय। जेम्बट द्वारा पाप मुक्ति की शर्तों के विवरण का बहुत थोडा ऐतिहासिक मूल्य है किन्तु हेनरी के कुछ शत्रुग्रो के दृष्टिकोण के उदाहरण स्वरूप यह महत्त्वपूण है। उसमे हेनरी को यह प्रतिज्ञा करता हुग्रा बताया गया कि वह पोप द्वारा निश्चित किए गए समय एव स्थान पर जमन राजाग्रो की एक परिषद् मे उपस्थित होगा तथा वहां ग्रपने ऊपर लगाए ग्रारोपों का उत्तर देगा वहां पर पोप न्यायाधीश का काय करेगा तथा उसके निणय के ग्रनुसार हेनरी यदि ग्रपने पर लगाए गए ग्रारोपो से मुक्त हो जाता है तो राजगद्दी बनाए रखेगा ग्रथवा यदि वे सिद्ध हो जाते हैं तो पदत्याग देगा तथा धार्मिक कानूनो के ग्रनुसार राजकीय गरिमा के ग्रयोग्य घोषित कर दिया जाएगा। उसने प्रतिज्ञा की कि यदि उसे राजा बनाए रखा गया तो वह पोप का ग्रनुयायी तथा ग्राज्ञापालक बना रहेगा तथा उसके साम्राज्य म बहुत समय से विद्यमान धार्मिक नियमो के विपरीत कुप्रथाग्रो के सुधार म साहसपूर्वक सहायता करेगा। यदि हेनरी इन प्रतिज्ञाग्रो को पूरा न करे तो पाप मुक्ति ग्रवध हो जाएगी तथा राजाग्रो को दूसरा सम्राट चुनने का ग्रधिकार होगा।[40]

यह स्पष्ट है कि नम्पट का विवरण न केवल अधिक विस्तृत है किन्तु अधिक सान्त रूप में अभिव्यक्त भी है किन्तु वास्तविकता इसमें बहुत भिन्न नहीं है क्योंकि पत्रिका में विद्यमान प्रमाण के अनुसार भी हेनरी ने पोप के निर्णय के सम्मुख समर्पण करने अथवा उसकी मन्त्रणा का अनुसरण करने की प्रतिज्ञा की थी। हम ग्रेगोरी द्वारा हेनरी के समर्पण की घोषणा करने वाले जर्मन राजाओं को भेजे गए पत्र में विद्यमान परिस्थिति के विवरण तथा इस तथ्य की कि उसके द्वारा वह धर्म-बहिष्कार के दण्ड से मुक्त कर दिया गया है तुलना करनी चाहिए।[61]

कैनोसा में हेनरी का आत्मसमर्पण प्रत्यक्षतः सम्पूर्ण था किन्तु सारी परिस्थिति और भी अधिक जटिल हो गई। ग्रेगोरी सप्तम 1080 ई॰ में हेनरी को धर्म बहिष्कृत करने की घोषणा में स्पष्टतया कहता है कि उसने कैनोसा में हेनरी को पाप मुक्त तो कर दिया था किन्तु उसे उसका साम्राज्य पुनः प्रदान नहीं किया था और उसके तथा विरोही बिशपों एवं राजाओं के मध्य शान्ति या न्याय स्थापित करने की इच्छा से उसको वापस भेज दिया था। इन्हीं बिशपों तथा राजाओं ने उसके अनुसार कि हेनरी ग्रेगोरी से की गई प्रतिज्ञाओं का पालन नहीं कर रहा है उससे निराश होकर रूडोल्फ को बिना उससे परामर्श किए अपना सम्राट चुन लिया है (sine meo consilio vobis testibus elegerunt sibi Rodulfum ducem in regem)[62]

यह पुनः स्पष्टतया एक अन्य नागरिक पत्र में जो सम्भवतः 1081 एवं 1084 के बीच लिखा गया है[63] सुस्पष्ट रूप से इसकी पुनरावृत्ति करता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जर्मन राजाओं का कथन जिन्होंने मार्च 1077 में फोर्कहाइम (Forkheim) में रूडोल्फ को चुना बिना पोप की राय के किया गया था तथा शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि जर्मनी पूर्णतया विभाजित था तथा रूडोल्फ के निर्वाचन को राष्ट्र ने केवल एक वर्ग ने ही स्वीकार किया था। उसी वर्ष (1077) मई के अन्त में हम पाते हैं कि ग्रेगोरी ने जर्मनी के अपने उद्धारकर्ताओं को सम्बोधित एक पत्र लिखा जिसमें वह कहता है कि दोनों सम्राटों ने रोम के धर्मपीठ से सहाय-याचना की है तथा वह जर्मनी जाना चाहता है ताकि उनकी सहमति से झगड़े का निपटारा हो तथा जो पक्ष दोनों में से न्यायोचित प्रतीत हो उसकी सहायता करे। यदि दोनों सम्राटों में से कोई भी उस आवश्यक समय पत्र प्रदान न करे तो वह धर्म बहिष्कृत कर दिया जाए। वह ग्रेगोरी महान के शब्दों को उद्धृत करता है जिसमें कहा गया है कि जो राजा प्रतिनिधि धर्माधिकार के विरुद्ध काम करे उनकी गरिमा समाप्त कर दी जाय तथा मटज के हरमन को लिखे गए पत्र में प्रयुक्त शब्दों को दोहराता है कि यदि पीटर की धर्मपीठ धार्मिक मामलों में निर्णय कर सकती है तो पार्थिव व लौकिक मामलों में तो और भी अधिक निर्णय करने में समर्थ है। व उन विचारों को व्यक्त करते हुए उपसंहार करता है कि उक्त किया राजा से या प्रतिज्ञा ली जाती है वह न्यायोचित को दण्डित करने में भी अन्य रूप नहीं करेगा।[64]

ग्रेगोरी के उसी तारीख के अपने प्रतिनिधियों को लिखे गए निम्न पत्र में भी उन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन है किन्तु अधिक विस्तृत रूप से। उनको दोनों सम्राटों में जर्मनी में

पोप के लिए सुरक्षित यात्रा की माँग करता है क्योंकि वह उन दोनों के मध्य विवाद का निपटारा जर्मन पादरियों एवं ईश्वर भीरु अपराजक वर्ग की राय से करना चाहता है तथा न्याय किस पक्ष के समर्थन में है इसकी घोषणा करना चाहता है। वे जानते हैं कि चर्च के गंभीर विषयों का निर्णय पोप की गद्दी का दायित्व है तथा यह मामला इतना भारी तथा खतरनाक है कि यदि वह इसकी उपेक्षा करेगा तो समस्त चर्च दारुण क्षति ग्रस्त हो जाएगा। इसलिए दोनों सम्राटों में से कोई भी यदि उसके पक्ष या उनकी प्रयोजन सिद्धि में बाधा डाले तो उनको चाहिए कि वे उसे राज्य से वंचित कर दें तथा उसके समर्थकों को चर्च की संगति से बहिष्कृत कर दें तथा जो राज्य में ग्रेगोरी की आज्ञा पालन करे उसकी पुष्टि के लिए तथा पादरियों एवं प्रयाजक लोगों को निष्ठापूर्वक उसकी सेवा करने का निर्देश देने के लिए पादरियों तथा प्रयाजक वर्ग की एक सभा आहूत करें।[45]

ग्रेगोरी सप्तम की पत्रिका में कई प्रवेश हैं जो 1078 ई० की घटनाओं का विकास प्रदर्शित करते हैं। फरवरी 27 से 3 मार्च तक रोम की परिषद् की पुनरुक्त कार्यवाही में पता चलता है कि यह निश्चय किया गया कि जर्मनी में पीर मतभेदों के कारण उत्पन्न हुए युद्ध के खतरे के कारण सभी धार्मिक व्यक्तियों को चाहे वे पादरी हों या प्रयाजक अपने प्रतिनिधि एक परिषद् के लिए भेजने को कहा गया है ताकि उनकी मदद से या तो शान्ति स्थापित हो सके या यह जाना जा सके कि न्याय किस पक्ष की ओर है तथा उसे पोप सत्ता की सहायता दी सके।[46] ग्रेगोरी का एक पत्र जो जर्मनी के सभी कोटि के व्यक्तियों को सम्बोधित है परिषद् के निर्णय का घोषणा करता है तथा सबसे शान्ति के लिए प्रयत्न करने का अनुरोध करता है।[47] 1 जुलाई को ग्रेगोरी ने पुनः सभी जर्मन पादरियों एवं प्रयाजकों को जर्मनी में उसके दूतों की उपस्थिति में हेनरी एवं रूडोल्फ के बीच निर्णय के लिए होने वाली परिषद् के विषय में लिखा।[48]

फरवरी 1079 में हेनरी तथा रूडोल्फ दोनों के दूत रोम की एक परिषद् में उपस्थित हुए तथा पत्रिका में उनके द्वारा अपने स्वामियों की ओर से की गई प्रतिज्ञाएँ अंकित हैं। हेनरी के दूतों ने शपथ ली कि यदि वाधाबित कारण बाधक न हों तो स्वर्गारोहण दिवस (Ascension Day) के पूर्व होप पोप के दूत जर्मनी में आने के लिए आएंगे तथा हेनरी न्याय तथा उनके निर्णय के अनुसार सभी बातों में आज्ञा पालन करेगा। रूडोल्फ के दूतों ने शपथ ली कि यदि पोप के आदेशानुसार जर्मनी में परिषद् की बैठक हुई तो वह स्वयं उपस्थित होगा या उसके बिशप तथा अन्य विश्वसनीय व्यक्ति उपस्थित होंगे और वह राजत्व के बारे में रोमन चर्च का निर्णय स्वीकार करने को तैयार रहेगा वह परिषद् की बैठक के मार्ग में कोई बाधा उत्पन्न नहीं करेगा तथा पोप के प्रतिनिधियों की उपस्थिति के लिए जो भी संभव हो करेगा।[49]

अतः परिषद् ने जर्मनी में प्रतिनिधि भेजने का निर्णय लिया जो कि पादरियों एवं प्रयाजकों का एक संयुक्त सभा बुलाएँगे जो या तो शान्ति स्थापित करेगी या उन लोगों के विरुद्ध जो संघर्ष के कारण हैं धार्मिक विधि के आधार पर निर्णय करेगी तथा घोषणा की कि कोई भी व्यक्ति जो प्रतिनिधियों के कार्य में बाधा डालेगा अथवा जब शान्ति वार्ता चल रही हो युद्ध करेगा धर्म बहिष्कृत कर दिया जाएगा।[50]

ग्रेगोरी ने सुग्राविया के रूडोल्फ को सम्बोधित उसी मास के एक पत्र म इसी निर्णय का उल्लेख किया है। वह उसे विश्वास दिलाता है कि यद्यपि हेनरी चतुर्थ के दूत उससे अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए निरंतर प्रार्थना करते रहे हैं किन्तु उसने दृढ़ निश्चय किया है कि वह केवल न्यायोचित का अन्वेषण तथा उसका ही समर्थन करेगा। एक दूसरे पत्र में रूडोल्फ तथा उसके पक्ष के विशपों एवं राजाओं को वह उनके धर्म की सत्यता एवं अपनी स्वतन्त्रता के लिए डटे रहने का आह्वान करता है किन्तु उन विधानों की जानकारी के लिए उनका ध्यान अपने प्रतिनिधियों एवं पत्रों की ओर आकृष्ट करता है जो जमन साम्राज्य म शान्ति स्थापित करने के लिए रोम की परिषद् के द्वारा लिए गए थे।[51] यह दूसरा पत्र ग्रेगोरी की निष्पक्षता के दावे से आसानी से मेल नहीं खाता।[5] उसी वर्ष अक्टूबर के प्रारम्भ में लिखे गए दो पत्र ग्रेगोरी की स्थिति को भलीभाँति स्पष्ट करते प्रतीत होते हैं। एक जर्मनी में उसके दूतों को लिखा गया है तथा उसमें कहा गया है कि उसे शिकायतें मिली हैं कि वे उसके निर्देशों का पालन नहीं कर रहे हैं और यद्यपि वह उन शिकायतों को सत्य नहीं समझता तथापि वह उन्हें अत्यन्त सावधानी बरतने की चेतावनी देता है ताकि वे किसी प्रकार इस सन्देह का अवसर प्रदान न करें कि वे एक दल के पक्ष में अधिक झुके हैं क्योंकि उसने न्याय को छोड़कर किसी अन्य पक्ष का अवलम्बन न करने का निश्चय किया है। यह महत्वपूर्ण है कि उसने उनको किसी आर्कविशप या विशप पर जिस पर अयाजक प्रतिष्ठापन प्राप्त करने का आरोप हो कोई निर्णय देने का प्रबल निषेध किया है तथा कहा है कि वे तुरन्त उसे सूचित करें यदि राजा (हेनरी) ने साम्राज्य म पुनः शान्ति स्थापनार्थ किसी सम्मेलन को बुलाने का उनके साथ कोई समझौता किया हो।[53] दूसरा पत्र जर्मनी के श्रद्धालुओं को सम्बोधित है। वह कहता है कि उसने सुना है कि यह शिकायत है कि वह लौकिक आकाशगमिता (Seculari levitate) के पक्ष म आचरण कर रहा है किन्तु वह उनको विश्वास दिलाता है कि उससे अधिक किसी को भी हानि नहीं हुई है। लगभग सभी जनसाधारण हेनरी चतुर्थ के पक्ष में हैं तथा उस पर अशिष्टता एवं उसके प्रति दया (Hi tas) हीनता का आरोप लगा रहे हैं। उसने अभी तक इस दबाव का प्रतिरोध किया है तथा जहाँ तक समानता एवं न्याय की माँग है वह किसी भी पक्ष की ओर नहीं झुका है। यदि उसके प्रतिनिधियों ने कुछ किया है तो उसका उसे दुःख है किन्तु उन्होंने भी उग्र दबाव या त्रास म आकर वैसा किया होगा।[54]

मार्च 1080 ई म ग्रेगोरी सप्तम एवं हेनरी चतुर्थ के बीच म पूर्ण सम्बन्ध हो गया तथा ग्रेगोरी ने पुनः हेनरी को धर्म-बहिष्कृत एवं पदच्युत करके रूडोल्फ को राजा स्वीकार कर लिया। ग्रेगोरी ने यह घोषणा रोम की एक परिषद् में की जिसमें उसने कनोसा से लेकर अब तक की घटनाओं तथा अपने कार्य का संक्षिप्त विवरण दिया है। उसने घोषणा की कि यद्यपि उसने कनोसा में हेनरी को पापमुक्त कर दिया था तथापि उसने उसे राजत्व पुनः प्रदान नहीं किया था तथा न्याय करने एवं उसमें तथा उसके विरुद्ध विद्रोह करने वालों के बीच शांति स्थापित करने को कृत निश्चय था। रूडोल्फ का निर्वाचन उसकी राय के बिना किया गया था किन्तु उसने हेनरी की प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया

था कि रूडोल्फ के विरुद्ध उसकी सहायता करे। अन्त में दोनों राजाओं ने उससे न्याय करने को कहा तथा उसने घोषणा की थी कि जर्मनी में एक सभा हो जो या तो यह निश्चय कर कि न्याय किस पक्ष की ओर है अथवा शांति स्थापित कर दे क्योंकि वह जानता था कि जो पक्ष दोषी होगा वह सभा को रोकने का प्रयत्न करेगा उसने जो यह प्रयत्न करे उसे भी धर्म बहिष्कृत कर दिया था। हेनरी तथा उसके समर्थकों ने सभा को रोक दिया है अतः ईश्वर एवं पवित्र कुमारी के न्याय एवं करुणा पर विश्वास करके वह उसे तथा उनको धर्म बहिष्कृत करता है ईश्वर तथा परिषद् के नाम पर हेनरी को जर्मनी एवं इटली के सम्राट पद से पदच्युत करता है सभी ईसाई लोगों को उसकी आज्ञा मानने से निषेध करता है तथा उनको आज्ञापालन की उस शपथ के बन्धन से मुक्त करता है जो उन्होंने ली है अथवा भविष्य में लेने वाले हैं। उसने गम्भीरता पूर्वक रूडोल्फ को जर्मन साम्राज्य का शासक बनाया जिस पर जर्मनों ने उसे चुना है तथा उन सबको जो निष्ठापूर्वक उसकी आज्ञापालन करें पापों से मुक्ति तथा इस लोक और परलोक में परिषद् की ओर से आशीर्वाद प्रदान किए। अन्त में उसने परिषद् के सदस्यों को इस प्रकार कार्य करने के लिए आह्वान किया जिससे सारा विश्व यह जान सके कि उनके पास स्वर्ग में बांधने या मुक्त करने की शक्ति है इस तरह वे राज्य प्रदेश तथा मनुष्यों की दूसरी सम्पत्तियां मनुष्यों के गुणों के अनुसार प्रदान अथवा ग्रहण कर सकते हैं। दुनिया के सम्राट एवं राजा जान लें कि उनकी शक्ति कितनी महान है तथा चर्च की आज्ञा का उल्लंघन करने से भयभीत हों।[65]

इस वक्तव्य में निहित सिद्धांतों पर ध्यान देना बहुत महत्वपूर्ण है। पहला तो ग्रेगोरी का दावा कि जिस सभा को अपने तथा रूडोल्फ के बीच विवाद को सौंपने की उसने प्रतिज्ञा की थी उसमें बाधा उत्पन्न करने पर उसे हेनरी को धर्म-बहिष्कृत करने तथा पदच्युत करने का अधिकार है। दूसरे वह जर्मन साम्राज्य पर रूडोल्फ की नियुक्ति प्रदान करने या स्वीकृति के अधिकार का दावा करता है लेकिन यह दृष्टव्य है कि वह यह कहने की सावधानी बरतता है कि जर्मनों ने उसे चुना है। तीसरे वह रोम की परिषद् को इस कार्य में अपने साथ सम्मिलित कर लेता है। चौथे वह परिषद् से अनुरोध करता है कि उनको स्पष्ट कर देना चाहिए कि उनको मनुष्यों की योग्यता के अनुसार राजनीतिक सत्ता प्रदान करने या छीन लेने का अधिकार है। ये दावे ग्रेगोरी के द्वारा 1076 ई० में किए गए दावों से कहीं अधिक बढ़ चढ़ कर हैं। तब उसने हेनरी को चर्च के विरुद्ध एक निश्चित एवं सुविचारित विद्रोह के कारण पोप का न्याय करने एवं उसे पदच्युत करने की धृष्टता के कारण धर्म बहिष्कृत किया था अब उसने हेनरी को जर्मनी के राजनीतिक मामलों के निर्धारण में पोप की सत्ता को स्वीकार न करने के कारण पदच्युत किया था। किन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि जैसा हम देख चुके हैं ग्रेगोरी यह स्मरण दिलाने की सावधानी रखता है कि दोनों पक्षों ने उससे उनके बीच निर्णय करने की प्रार्थना की है तथा उसके निर्णय को स्वीकार करने की शपथ ली है। तथापि ग्रेगोरी की घोषणा के अन्तिम वाक्यांश एक विस्तृत एवं व्यापक शब्दावली में इस दावे को प्रस्तुत करते हैं कि चर्च को राजनीतिक सत्ता प्रदान करने अथवा छीनने का अधिकार है।

ग्रगोरी के कार्य के तुरन्त बाद हेनरी की कार्यवाही प्रारम्भ हो गई उसने ब्रिक्सन में एक परिषद् बुलाई जिसने हि० डेब्राण्ड को पोप की गद्दी से च्युत करने की घोषणा की। उन्होंने अपने कार्य का औचित्य इस आरोप में सिद्ध किया कि उसका निर्वाचन बल प्रयोग से पोप निकोलस के आदेश पत्र का उल्लंघन करते हुए हुआ था उसमें सम्राट की सहमति की भी आवश्यकता थी तथा साथ ही यह भी आरोप लगाया कि उसने चर्च का सम्पूर्ण व्यवस्था एवं साम्राज्य की शान्ति को भंग किया था। तब उन्होंने रेवेन्ना के आर्चबिशप ग्यूबर्ट को पोप चुना।[66]

फरवरी 1081 में रोम की एक परिषद् में ग्रेगोरी ने हेनरी तथा उसके समर्थकों के धर्म-बहिष्कार का पुनः नवीनीकरण कर दिया तथा मार्च में उसने मेट्ज के बिशप हरमन को सम्बोधित एक-दूसरे पत्र में अपने कार्यों का विस्तारपूर्ण औचित्य प्रस्तुत किया। इस पत्र में उसने अगस्त 1076 के पत्र में वर्णित अनेक धारणाओं को दोहराया है किन्तु इस पत्र में सिद्धान्तों का अधिक वर्णन तथा निष्कर्षों की अधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति की गई है। वह इस तर्क के खण्डन से प्रारम्भ करता है कि रोम के धर्माधीश को राजाओं को धर्म बहिष्कृत करने तथा उनकी प्रजा को उनकी राजनिष्ठा की शपथ से मुक्त करने का अधिकार नहीं है क्योंकि वह धर्म ग्रन्थों एवं धर्माचार्यों की सत्ता के विपरीत है। वह ईसा द्वारा स्वर्ग तथा पृथ्वी दोनों स्थानों पर सन्त पीटर को बाँधने एवं मुक्त करने का अधिकार देने वाले शब्दों को तथा ग्रेगोरी महान एवं अन्य लेखकों के अनेक गद्यांशों को उद्धृत करता है तथा यह पूछता है कि जिसे स्वर्ग को खोलने एवं बन्द करने का अधिकार है वह पृथ्वी पर निर्णय भी न कर सके यह कहाँ तक सम्भव है। सभी पार्थिव सत्ताएँ जो मनुष्य निर्मित है उस सत्ता के अधीन हैं जिसे स्वयं ईश्वर ने बनाया है। उन शब्दों में जिन्हें प्रायः उद्धृत किया जाता है वह लौकिक सत्ता के उद्गम एवं पापपूर्ण जन्म का उल्लेख करता है सम्राट तथा राजाओं का जन्म उन मनुष्यों से हुआ है जो अभिमान, लूटखसोट, विश्वासघात तथा हत्या में तथा शैतान के निर्देश में अपने समकक्षीय लोगों के स्वामी बनने की असहनीय तथा अन्धी लालसा करते थे।[67] इसमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता है कि ईसा के पुरोहित सभी निष्ठावानों के स्वामी तथा आचार्य हैं। वह कान्सटेन्टाइन की विनम्रता का उदाहरण प्रस्तुत करता है जो नायसा की परिषद् में तुच्छतम बिशप से भी यह कहते हुए कि वह उनका निर्णय नहीं कर सकता नीचे बैठा था परन्तु उनको देवता बताते हुए उसने कहा था कि वे उसके निर्णय के अधीन नहीं किन्तु वह उनके निर्णयों के अधीन है। वह जिलेसियस के शब्दों को भी उद्धृत करता है जिनमें यह घोषणा की गई है कि पादरी का भार अधिक है क्योंकि अन्तिम निर्णय के दिन उनको ईश्वर के सम्मुख राजा का भी लेखा देना होगा। वह अधिकारों के अन्तर्गत विभिन्न पोपों ने राजाओं तथा सम्राटों को पुराने समय में धर्म बहिष्कृत अथवा पदच्युत किया था तथा वह विशेषतया पोप इन्नोसेन्ट प्रथम द्वारा सम्राट आर्केडियस की पदच्युति तथा पोप जकारियास प्रथम द्वारा अन्तिम मरोविन्जियन सम्राट की पदच्युति तथा सन्त अम्ब्रोज द्वारा थियोडोसियस के धर्म बहिष्कार का उल्लेख करता है। अन्त में वह अनुरोध करता है कि किसी भी अच्छे ईसाई को राजा मान लेना अच्छा है बजाय इसके कि किसी क्रूर राजकुमार को स्वीकार किया

जाए। बहुत थोड़े राजा ऐसे हुए हैं जो वास्तव में धार्मिक थे जबकि संत पीटर ने अपने उत्तराधिकारियों को अविच्छिन्न पवित्रता प्रदान की है। जिनको चर्च राजा या सम्राट का पद सौंपे उन्हें विनीत होना चाहिए उनको ईश्वर के प्रति सम्मान रखना चाहिए तथा न्याय करना चाहिए।[58]

ग्रगोरी सप्तम तथा हेनरी चतुर्थ के बीच अंतिम विच्छेद हुआ ही था तथा ग्रगोरी ने रूडोल्फ को औपचारिक रूप से सम्राट माना ही था कि अक्टूबर 1080 ई० में एलस्टर के युद्ध में लगे घाव के कारण रूडोल्फ की मृत्यु होने से एक नई स्थिति उत्पन्न हो गई। इस परिस्थिति के बारे में ग्रेगोरी का दृष्टिकोण 1081 ई० में पासाऊ के बिशप आल्टमान (Altamann) को लिखे गए एक पत्र में स्पष्टतया उल्लिखित है। अपने दावों तथा मांगों को कम करने के बजाय वह उनको अधिक स्पष्टतया व्यक्त करता है तथा उनको और भी अधिक बढ़ा देता है। वह बिशपों से कहता है कि रूडोल्फ की मृत्यु के पश्चात् उस पर निष्ठा रखने वाले लगभग सभी लोगों ने हेनरी को स्वीकार करने की उससे प्रार्थना की जो कि उसके पक्ष में अनेक सुविधाएं देने को राजी था। उन्होंने आग्रह किया कि लगभग सभी इटली वासी उसके पक्ष में हैं तथा यदि हेनरी इटली पर आक्रमण करे तो ग्रेगोरी को जर्मनी से विशेष सहायता की आशा नहीं करनी चाहिए। ग्रेगोरी ने इन आशंकाओं तथा परामर्शों को निस्संकोच अस्वीकार कर दिया। स्पष्टतया उसके मन में इसके अतिरिक्त कोई विचार नहीं था कि रूडोल्फ के स्थान पर दूसरा राजा चुना जाय तथा तात्कालिक खतरे का विचार करने के बजाय वह इसके बारे में अधिक व्यग्र था कि निर्वाचित व्यक्ति योग्य हो। वह आग्रहपूर्वक कहता है कि रूडोल्फ के उत्तराधिकारी के निर्वाचन में अनावश्यक शीघ्रता नहीं की जाए यह अधिक अच्छा है कि अयोग्य या अक्षम व्यक्ति को चुनने की अपेक्षा निर्वाचन में कुछ देरी ही हो जाए। चर्च किसी ऐसे व्यक्ति को स्वीकार न करेगा जो कि उसके प्रति आज्ञाकारी तथा उपयोगी न हो। तदनन्तर वह निश्चित तथा महत्त्वपूर्ण शब्दों में उस शपथ का निरूपित करता है जिसकी निर्वाचित राजा से वह अपेक्षा करेगा। उसे शपथ लेनी होगी कि वह संत पीटर तथा उसके प्रतिनिधि पोप ग्रगोरी के प्रति निष्ठावान रहेगा तथा पोप जो भी उसको आज्ञा दे उसे सच्ची आज्ञाकारिता के नाम पर वह निष्ठापूर्वक उसका पालन करेगा। वह पोप से चर्चों की व्यवस्था के बारे में सम्राट कान्सटेंटाइन द्वारा चर्चों को दी गयी भूमि तथा राजस्व के सम्बन्ध में दूसरों के द्वारा पोप की गद्दी को सौंप गए चर्चों एवं उनकी सम्पत्ति के बारे में इस प्रकार समझौता करेगा कि वह अपवित्रता तथा अपनी आत्मा के विनाश के भय से सर्वथा मुक्त रहे। पहली बार जब वह पोप से भेंट करे तो वह स्वयं संत पीटर एवं पोप का सैनिक बन जाए। ग्रगोरी अन्य विस्तार की बातों को बिशपों के द्वारा तय करने को छोड़कर आज्ञापालन एवं निष्ठा की पूरी और सुनिश्चित प्रतिज्ञा पर बल देता है।[59]

ये वाक्य ग्रेगोरी द्वारा कम से कम लौकिक साम्राज्य के बारे में अब तक किए गए दावों से अधिक विस्तृत दावों के परिचायक हैं क्योंकि उनके द्वारा अपेक्षित शपथ के अंतिम शब्दों का अभिप्राय सम्भवतः यही माना जा सकता है कि राजा अपने को रोमन धर्मपीठ का सामन्त मानता है। और यदि यह सन्दिग्ध भी हो कि उनका ऐसा सुनिश्चित अर्थ

अभिप्रेत यह था तो भी सम्पूर्ण शपथ आज्ञा पालन के चरम दावे की परिचायक है।

जर्मनी में दोनों पक्षों की वार्ता शीघ्र ही टूट गई तथा हेनरी के विरोधियों ने साल्म के हर्मन (Hermann of Salm) को राजा चुना और वह 26 दिसम्बर 1081 ई. को अभिषिक्त हुआ। इस समय से मई 1085 ई. में ग्रेगोरी सप्तम की मृत्यु के समय तक ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण हम यहाँ नहीं देंगे क्योंकि इन वर्षों के नाटकीय तथा महान घटनाओं से परिपूर्ण होने पर भी साम्राज्य तथा पोप के सम्बन्धों के बारे में कोई *नया सिद्धान्त प्रकाश में नहीं आया।*

इस प्रकार हमने ग्रेगोरी सप्तम के लौकिक एवं धार्मिक सत्ता के सम्बन्धों के बारे में दावों के स्वरूप एवं सिद्धान्तों पर जैसे वे ऐतिहासिक घटनाओं एवं उनके कथन ही शब्दों में व्यक्त होते हैं विचार किया किन्तु हम उनके वास्तविक एवं स्थायी महत्त्व का मूल्यांकन अधिक पूर्णता से कर सकें इसके लिए अब हम तत्कालीन एवं बाद के वर्षों के साहित्य में उनकी आलोचना तथा व्याख्या का परीक्षण करना चाहिए।

सन्दर्भ

1 Cf Vol I pp 148 d 255
2 St ph n of To na S mma p 198
3 Cf p 9
4 Leo IX Ep 100 13
5 Cf Vol pp 88 89
6 P t Dam n Ep Bk III 6
7 Id Op c 23 3
8 Cf pp 45–48 d 1 pp 206 209
9 Humbert Ad e S m c 9 M G H Lb De L t l 1
10 S egf d f M i tz M B mb g n a p 65
11 Id id p 69
12 Greg R g t m 9 ( )
13 देखें भाग 2 अध्याय 1 ।
14 G g VII Reg trum 35
15 Id d 5
16 Id d 18
17 Id d i 63
18 Cf ol pp 282 287
19 Lambe t f H rsf ld A l ( ) 1073
20 G g ry VII Regist 9
21 Id d 21
22 देखें भाग 2 अध्याय 2।
23 Greg y VII R gistrum i 39
24 Id d 65
25 Id d 30
26 Id d 31
27 Id d 7
28 Id d i 10
29 Lambe t A n l 1076 (M G H S S I 5 p 241)
30 M G H Leg n Se t IV C n t tuti 1 i 58
31 Id d 60
32 Id id 61
33 G g y VII Reg i 10 ( )
34 M G H Leg m Sect IV C t ol 6
35 Id d 63
36 Gr gory VII Reg l
37 Id d R g 3
38 B rthold An l s a 1076
39 M B mbe g pp 110 111
40 Gr g ry VII R g trum l 12 a
41 Greg ry VII Reg trum 1 2
42 Id d 14 cf p 01
43 Id d 51
44 Id d i 24
45 Id d i 23

46 Id Id v 14 a
47 Id v 15
48 Id 1
49 Id Id vi 17 a
50 Id Ep stolae Collectae 15
51 Gregory VII Ep stoloe Collecta 26
52. Mr Z Brooke of Caius College Cambridge tells me that he has some d ubts about the d te of this letter
53 Gregory VII Ep stol e Collecta 31
54 Gregory VII Epistolae Collectae vii 3
55 Greg ry VII Epi tolae Collect e v i 14 a
56 M G H Legum Sect IV Consti tut nes vol i No 70
57 For a f ll d scuss on of the s gn fi cance of the phrase of vol i *pp 94–98*
58 Greg ry VII Reg strum ii 21
59 Greg VII Reg ii 26

द्वितीय अध्याय

ग्रेगोरी सप्तम के कार्यों एव दावो का विवेचन-1

हम पिछले अध्यायो मे यह बता चुके हैं कि ग्रेगोरी सप्तम के पदारोहण से पूर्व भी सुधारवादी दल के पादरियो के लेखो म प्राय एसे वक्तव्यो का पूर्णत अभाव नहीं है जो इस परिकल्पना की ओर सकेत करते हो कि चर्च अथवा पोप के पास एक ऐसी सत्ता थी जो कुछ अर्थों म सभी लौकिक सत्ताओ से सर्वोच्च थी किन्तु यह कहना कठिन है कि यथार्थ रूप म इन लेखको द्वारा इन शब्दो को क्या निश्चित अर्थ प्रदान किया गया है। ग्रेगोरी सप्तम के पदारोहण न यह सब बदल दिया जैसा हम देख चुके हैं उसने न केवल सामान्य सिद्धान्तों को व्यक्त ही किया अपितु उनको निश्चित एव सुस्पष्ट कार्यों म परिणत किया या सभवत यह कहना अधिक उचित होगा कि उसने कुछ ऐसे कार्य किए या करने की धमकी दी जिनम कुछ सामान्य सिद्धान्त अन्तर्निहित से थे तथा जिनके द्वारा अनुकरण करने वाले कुछ सामान्य सिद्धान्तो एव नीतियों के बारे मे आशिक रूप से अभिज्ञ हो गए। तथापि हमे यह नहीं मानना चाहिए कि ग्रेगोरी के मस्तिष्क मे भी ये एक तार्किक रूप से विकसित तथा सामजस्यपूर्ण व्यवस्था के रूप मे थे न हम यह मानना चाहिए कि वे व्यक्ति भी जो उसके दृढ तथा अविच्छिन्न समर्थक थे वास्तव मे उसके सिद्धान्तो का सभी अर्थों म पूर्णतया अनुकरण करते थे। हम न तो तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दी के उग्रवादी पोपपक्षीय सिद्धान्तो को और न तेरहवीं शताब्दी की तर्कपूर्ण विचार प्रणाली को ग्यारहवीं शताब्दी म ढढने की गलती करनी चाहिए। अत अब हम ग्रेगोरी सप्तम के कार्यों तथा दावो की समकालीन आलोचना या समर्थन का न्यूनाधिक रूप म अध्ययन करना चाहिए तथा यह जानने का प्रयास करना चाहिए कि धार्मिक एव लौकिक सत्ता के सम्बन्धो के विषय म क्या कल्पनाए सघर्ष के दौरान विकसित हुई थीं।

इसकी प्रारम्भिक अवस्था का बहुत थोडा साहित्य उपलब्ध होता है किन्तु सौभाग्य से कान्सटेनस के विद्यालय के प्रधान अधिकारी बर्नाड तथा क्रानिकल के लेखक किन्हीं बर्नाल्ड तथा अदलबर्ट के बीच हुए पत्राचार मे यह सुरक्षित है। यह पत्राचार 1076 ई का माना जाता है तथा सभी लेखक यद्यपि उस समय भी ग्रेगोरी के समर्थक थे, तथापि

इसम उनका स्वर अपने उत्तरकालीन लेखो स जिनका हम अभी उल्लेख करेंगे कहीं भिन्न है। प्रदलवट तथा बर्नार्ड ने बर्नार्ड को ग्रेगोरी सप्तम द्वारा कुछ व्यक्तियो को धर्म बहिष्कृत करने क स्वरूप के औचित्य के बारे म सम्मति लने को लिखा है जिन व्यक्तियो को वे publicos et contumaces apostolicae sedis prescriptores कहते हैं जिसका सम्भवत अर्थ है जिन्होंने 1076 ई की वार्म्स की परिषद् म भाग लिया है साथ ही वे धर्म विजयी तथा धर्म-बहिष्कृत व्यक्तियो द्वारा किए गए सस्कारो क बारे म भी उसकी राय पूछते हैं। हम बर्नार्ड के उत्तर का विस्तृत विवेचन नहीं कर सकते किन्तु उसम हमारे काम के कई महत्त्वपूर्ण सूत्र उपलब्ध होते हैं।

बर्नार्ड पहल यह कहता है कि पोप का पद सर्वोच्च है तथा उसकी सर्वोच्चता उस पर बठने वाल व्यक्ति की योग्यता एव अयोग्यता पर निर्भर नही है यद्यपि रोम का धर्मासन सर्वोच्च पद है तथापि पोप ने स्वच्छया अपनी प्रजाओं को प्रबोधन की अनुमति दे रखी थी क्योंकि वे विधि के शासन के अधीन तथा शास्त्रानुसार रहना चाहते थे। वह यह नहीं कहता कि ग्रेगोरी की कार्य प्रणाली अनियमित है किन्तु उसका विषय विवेचन यह सुझाता है कि इसम उसे थोडा सदेह था।[1] वह ग्रेगोरी के पोप पद के कार्यकाल के बारे मे इस आपत्ति पर भी विचार करता है कि उसने इस रूप स अपन को बांध लिया था कि वह सम्राट की स्वीकृति के बिना उस पद को स्वीकार नही करेगा। बर्नार्ड इस कथन का खण्डन नहीं करता किन्तु कह देता है कि यह सच भी हो तो भी रोमन चर्च को स्वतत्र चुनाव के अपने अधिकार से वचित नहीं किया जा सकता।

बर्नार्ड तथा प्रदलवट बर्नार्ड को प्रवित अपने उत्तर में उसका मत स्वीकार कर लते हैं कि पोप की प्रजाएँ उसे प्रबोधित कर सकती हैं जसा पीटर को पाल ने किया था तत्पश्चात् वे वार्म्स और रोम की परिषदो की महत्त्वपूर्ण कार्यवाही का विवरण देते हैं जिसका हम पहले उल्लेख कर चुके हैं। वे वार्म्स की कार्यवाही की कठोरतम शब्दो में निन्दा करते हैं किन्तु यह उल्लेखनीय है कि वे इस प्रश्न के बारे मे स्पष्ट नहीं है कि क्या पोप विधिवत् आहूत चर्च की परिषद् के निर्णयाधीन है अथवा नहीं। व वास्तव म अनक प्रामाणिक व्यक्तियो क मतो को उद्धत करत हैं जिसने यह सिद्ध होता है कि रोम का पोप किसी क निर्णयाधीन नहीं है विशेषत रोम की धर्मसभा की कार्यवाही का उल्लेख करते है जिसने पोप सिम्माकस (Symachus) के विरुद्ध लगाए गए आरोपो का विचार करने से अस्वीकार कर दिया था तथा उनको ईश्वरीय निर्णय के लिए छोड दिया था किन्तु वे प्रथम के मामले को अपवाद मानते प्रतीत होते हैं और व इस पर बल देते हैं कि ग्रेगोरी सप्तम ने बारम्बार इस बात से सहमति प्रकट की थी कि रोम मे अथवा अन्य किसी स्थान पर एक परिषद् हो जो उसकी नियुक्ति तथा आचरण की परिस्थितियो पर विचार करे तथा यदि वह पदत्याग के योग्य सिद्ध हो तो वह पोप की गद्दी स उतर जाएगा यह विदित नहीं होता कि उनके द्वारा यह वक्तव्य किस आधार पर दिया गया था। इसकी पुष्टि करन वाला कोई भी अन्य प्रमाण नही है। हमारे लिए इसका महत्त्व इस तथ्य में है कि जो व्यक्ति ग्रेगोरी के समर्थक थे उन्होंने एसा कहा था। लेखक तत्पश्चात् 1076 ई म रोम की परिषद् की कार्यवाही का विशेषत हेनरी चतुर्थ के धर्म-बहिष्कार तथा पदच्युति

का वर्णन करते हैं तथा यह मानते हैं कि इस धर्म बहिष्कार को यथाविधि रूप मे लागू करने मे कोई सशय नहीं हो सकता है क्योंकि उसे अनेक बार चेतावनी दी गई थी तथा उसके विरुद्ध कार्यवाही स्थगित की गई था।[3] इन लेखकों की बाद की सम्मतियों पर हम आगे विचार करेंगे।

दूसरी रचनाएं जिन पर हम अब विचार करेंगे सभी 1080 ई मे हेनरी के दूसरी बार धर्म बहिष्कार एव पदच्युति के बाद के काल की तथा उसी वर्ष में ब्रिक्सेन की धर्म सभा तथा हेनरी तथा उसके साथियों द्वारा विरोधी पोप के रूप में ग्यूबर्ट के निर्वाचन के बाद की हैं। सम्भवत इसके थोड़े ही समय बाद लिखे गए दो ग्रन्थों पर विचार करना सुविधाजनक होगा जो कि दोनों पक्षों के उग्रवादी प्रतिनिधियों साल्जबर्ग के आर्क बिशप गेबहार्ट तथा ट्रीयर के वेनरिक के मतों को अभिव्यक्त करती है।

गेबहार्ट एक अत्यन्त उदार किन्तु हेनरी से संघर्ष में ग्रेगोरी सप्तम के कट्टरतम अनुयायियों में से था तथा उसने मेत्ज के बिशप हरमन को सम्बोधित एक पत्र अथवा लेख में कुछ उन विचारों को रखा है जो उसे सबसे महत्वपूर्ण प्रतीत हुए। वह संघर्ष का मूल मुख्यत चर्च के उस नियम के उल्लंघन में देखता है जो निष्ठावान व्यक्तियों को निर्देश देता है कि उन लोगों की संगति त्यागनी चाहिए जो धर्म बहिष्कृत हैं विशेषत उनकी जो रोम द्वारा धर्म बहिष्कृत किए गए हैं।[4] और इसके लिए उन लोगों की त्रुटि को भी उत्तरदायी बताता है जो कि यह स्वीकार नहीं करते कि धर्म बहिष्कार का दण्ड चाहे मनुष्य उसे न्यायपूर्ण माने अथवा अन्यायपूर्ण जब तक सक्षम पदाधिकारी द्वारा समाप्त नहीं किया जाए बाध्यकारी था[5] और इसका उल्लेख वह विशेषत 1080 ई में रोमन परिषद् द्वारा घोषित धर्म बहिष्कार के सदर्भ में करता है।[6] तत्पश्चात् वह जून 1080 ई० में ब्रिक्सेन की धर्मसभा द्वारा ग्रेगोरी सप्तम की पदच्युति तथा विरोधी पोप की नियुक्ति की चर्चा करता है तथा यह मानता है कि यह कार्य इंजील तथा धर्मरीतियों के इस सिद्धान्त के खिलाफ है कि पोप किसी मनुष्य के निर्णयाधीन नहीं है।[7] फिर वह उन लोगों के तर्कों का विवेचन करता है जो यह कहते हैं कि वे हेनरी के प्रति निष्ठा की शपथ का उल्लंघन नहीं कर सकते तथा आग्रहपूर्वक कहता है कि यह स्पष्ट है कि जो शपथ गलती से ली गई हो या जिसमें कोई बड़ी भारी गलती निहित हो उसका पालन नहीं करना चाहिए।[8] गेबहार्ट तदनन्तर हेनरी के समर्थक पादरियों के विषय में विचार करता है तथा प्रश्न करता है कि क्या यह पादरी के पद के अनुकूल आचरण है कि वे अपनी सम्मति एव सहायता से एक ईसाई राजा की सहायता मनुष्यों को ईसाई विधान का उल्लंघन करने के लिए विवश करने को श्रद्धावानों को पीड़ा देने को ईश्वर के मन्दिरों पर कब्जा करने तथा संत पीटर के सेवकों की हत्या द्वारा धर्म-स्थानों को दूषित करने के लिए करें। वे कहते हैं कि वे संत पीटर के भक्त हैं किन्तु क्या यह उचित है कि वे संत पीटर के धर्मासन के अधिकारी पर इसलिए आक्रमण करें कि उसने राजा एव अनेक बिशपों की गहरणा करते हुए एक अभूतपूर्व तथा अन्यायपूर्ण दण्डाज्ञा की घोषणा की थी। वह उनसे यह विचार करने का आग्रह करता है कि चाहे पोप का कार्य अनावश्यक रूप से कठोर हो तो भी नैष्ठिक बिशपों के लिए उचित यही था कि वे धार्मिक प्रक्रियान्तर्गत ही कोई उपाय करने के लिए राजा को राजी करते

परन्तु इस प्रकार के साधनों से नहीं जो हत्या एवं विनाश के द्वारा चर्च के कानूनों को भंग करें।

अन्त में वह अनुरोध करता है कि उनके लिए पोप के कार्य की कठोरता एवं उसकी अमूनपूवता की शिकायत करते हुए अपने कार्य का औचित्य सिद्ध करने का प्रयत्न भी निरर्थक है क्योंकि वे स्वयं ही समस्त अशान्ति के कारण थे। उनका वार्म्स का कार्य ही (1076 ई.) जिसमें उन्होंने ग्रेगोरी को पदच्युति का दण्ड घोषित किया था इस पूरे संकट का मूल कारण था। पोप ने तब उनके विरुद्ध किसी धर्म बहिष्कार की घोषणा नहीं की थी अपितु उनके द्वारा ही उनके प्रति आज्ञा पालन को समाप्त किया गया था।[9] गेबहार्ट के निर्णय के अनुसार यही अशान्ति मूल रूप में प्रारम्भ हुई तथा इसका कोई भी औचित्य नहीं था।[10]

ये तर्क हमारे लिए विशेषतः रोचक हैं क्योंकि ये गेबहार्ट के मत को व्यक्त करते हैं—तथा यह मत ऐसे उदार व्यक्ति का प्रतीत होता है जो ग्रेगोरी सप्तम के प्रत्येक कार्य का प्रत्येक दशा में समर्थन करने को तैयार नहीं है—कि सम्भव उतना ग्रेगोरी के क्रांतिकारी नवाचारों के कारण उत्पन्न नहीं हुआ जितना कि पोप का निर्णय करने एवं उसे पदच्युत करने में हेनरी तथा उसके समर्थक बिशपों के प्रयत्नों के रूप में अधिक क्रांतिकारी कार्यों के कारण। इस प्रकार के प्रयत्न एवं उनके परिणामों को देखते हुए गेबहार्ट इसे असंगत नहीं मान सकता था कि उन शपथों को जो मनुष्यों को हेनरी के आज्ञापालन के लिए बाध्य करती थी अवैधानिक मानना चाहिए तथा उनको औपचारिक रूप से समाप्त किया जाना चाहिए।

यदि हम साल्जबर्ग के गेबहार्ट के लेख में ग्रेगोरी सप्तम के समर्थन में सयत मत का एक प्रतिनिधिक चित्र उपलब्ध है तो हम हेनरी चतुर्थ के अनुग्र समर्थकों की स्थिति के सम्बन्ध में एक रोचक वक्त व्य ट्रीयर के वनरिक के एक पत्र में मिलता है जो सम्भवतः अक्टूबर 1080 ई. तथा अगस्त 1081 ई० के बीच वरडन के बिशप थियोडोरिक के नाम लिखा गया था। यह ध्यान रखने योग्य है कि यह पत्र एक ऐसे व्यक्ति द्वारा लिखा गया है जो अभी भी ग्रेगोरी को पोप स्वीकार करता था तथा जिसने उसके पक्ष का समर्थन करने के कारण बहुत हानि उठाई थी।[11] वरडन का थियोडोरिक उनमें से था जिनकी स्थिति प्रायः अस्थिर रही थी। वह कभी ग्रेगोरी के पक्ष में होता था कभी हेनरी के पक्ष में।

वनरिक अपने पत्र का प्रारम्भ ग्रेगोरी के उच्च चरित्र तथा योग्यताओं को मानते हुए करता है और यद्यपि वह उस पर लगाए गए हिंसा तथा महत्त्वाकांक्षा के आरोपों का भी कुछ विस्तार से वर्णन करता है वह इन आरोपों की सत्यता के बारे में स्वयं कुछ भी नहीं कहता क्योंकि उनका उसे व्यक्तिगत ज्ञान नहीं था।[1] तथापि वह उसके द्वारा असंयम अर्थात् पादरियों की शादी के विरुद्ध किए गए उपायों की उद्दण्डता की कड़ी निन्दा करता है वह उस पर असामाजिक वर्ग को पादरियों के विरुद्ध उकसाने तथा इस प्रकार चर्च की सम्पूर्ण व्यवस्था को भंग करने का आरोप लगाता है।[13] किन्तु यह केवल प्रस्तावना मात्र है।

फिर वह ग्रेगोरी द्वारा हेनरी को पदच्युत करने तथा रूडोल्फ की नियुक्ति को अनुमोदित

करने के कार्य पर ध्यान देता है तथा मानता है कि यह कार्य पूर्णतया अवधानिक था। वह कहता है कि लौकिक मनुष्यो के राजा के प्रति विद्रोह में कोई नई बात नहीं थी किन्तु यह पूर्णतया नया प्रयत्न था कि वे राजा को अपने पूर्वजों की गद्दी से उतारने की आज्ञा देने का कार्य स्वयं करें तथा यदि वह तुरन्त आज्ञापालन न करे तो उसे धर्म बहिष्कृत कर दे।[14] वह ग्रेगोरी को स्मरण दिलाता है कि रोम का आर्चबिशप एम्ब्रोज़ जिसने थियोडोसियस के विरुद्ध कार्य किया था, वह ग्रेगोरी महान् के आचरण तथा शिक्षा से प्रतिकूल है जिसने मनुष्यों को अपने शासकों के प्रति आदरभाव तथा उनकी आज्ञा के पालन का उपदेश दिया है तथा अपने को सम्राट की आज्ञाओं के पालन के लिए उनसे असहमत होने पर भी बाध्य बनाया है। इसके पश्चात् वह धर्म बहिष्कार के प्रश्न के औचित्य का विवेचन करता है तथा प्रश्न से सम्बन्धित धर्मशास्त्रों के अनेक उद्धरणों को संकलित करते हुए यह प्रदर्शित करता है कि अन्यायपूर्ण कारणों से किए गए धर्म-बहिष्कार का कोई वास्तविक प्रभाव नहीं होता।[15] यह वास्तव में प्रत्यक्ष रूप से मानजन्य के गवर्नर की लेख में वर्णित इस सिद्धान्त का भी खण्डन नहीं करता कि धर्म बहिष्कार का निर्णय तब तक मान्य होता जब तक कि सक्षम पदाधिकारी उसे निरस्त न करे किन्तु वह स्पष्टतः पोप के निर्णय के प्रभाव को नियमित करता चाहता है। तत्पश्चात् वह हेनरी की प्रजाओं को निष्ठा की शपथ से मुक्त करने के ग्रेगोरी के दावे के विरुद्ध बहुत अधिक भ्रमात्मक करता है तथा स्पष्टतया अस्वीकार कर देता है कि पोप को ऐसी कोई सत्ता प्राप्त है न है यह सत्य भी है कि हमारी एक अपावन तथा क्रूर जाति था। वह प्रत्युत्तर में पुराने पोपों के कपोलकल्पित तथा अन्य शासकों के चरित्र पर भयानक आक्षेप करता है जिन्होंने अपना पद लिया तथा अपकृत्यों के द्वारा अर्जित किया था परन्तु वे पोप के कृपा पात्र थे[16] तब धर्माचार्यो द्वारा बिशपो के प्रतिष्ठापन के प्रश्न पर भी विचार करता है किन्तु इस पर हम पिछले अध्यायों में विवेचन कर चुके हैं। वह प्रासंगिक रूप से पोप के पद के निर्वाचन की संपुष्टि करने के सम्राट के अधिकार का उल्लेख भी ग्रेगोरी महान् का उदाहरण देते हुए करता है।[17]

यह उल्लेखनीय है कि वनरिख हेनरी तथा उसके समर्थकों द्वारा ग्रेगोरी को पोप पद से पदच्युत करने का औचित्य सिद्ध नहीं करता यद्यपि वह इसके लिये सफाई देता है न ही वह प्रत्यक्षतः इसका समर्थन करता है कि पोप को हेनरी को धर्म बहिष्कृत करने का कोई अधिकार नहीं था किन्तु वह इसको अस्वीकार करता है कि पोप का धर्म-बहिष्कार अनिवार्यतः वैधानिक था तथा वह स्पष्ट रूप से ग्रेगोरी द्वारा हेनरी को पदच्युत करने एवं उसकी प्रजा को उसके प्रति राजभक्ति की शपथ से मुक्त करने के अधिकार का खण्डन करता है।

गेबहार्ट तथा वेनरिख के ये लेख इन मुख्य प्रधान सिद्धान्तो के उदाहरणों को बताने के लिये पर्याप्त हैं जो इस संघर्ष के मूल में थे तथा जैसा प्रायः ऐसे संघर्षों में होता है प्रत्येक दल दूसरे के पक्ष का उत्तर देने की अपेक्षा अपने पक्ष के प्रतिपादन में अधिक सफल होता है दूसरे के द्वारा किये गये आक्रमण की आलोचना अधिक होती है बजाय इसके कि अपने द्वारा किये गये कार्यों का समर्थन किया जाये। ये ग्रन्थ हेनरी द्वारा ग्रेगोरी की

ग्रनिम पन्युति तथा विरोधी पोप के निर्वाचन के तुरन्त बाद के समय के हैं किन्तु ग्रधिकाश सुरक्षित पुस्तकायें तथा नेख कुछ वर्षों के बाद लिखे गये थे।

न्मस पहले जिस पर हम विचार करेंगे सम्भवत 1084 ई में लिखा गया था जब हनरी चतुर्थ ने रोम पर कब्जा कर लिया था। वह किसी पीटर क्रसस (*Peter Crassus*) की रचना है जो रवेन्ना म रोमन कानून का ग्रध्यापक रहा होगा कम से कम नेखक कानूनी ज्ञान का इच्छा प्रदशन करता है तथा ग्रपनी स्थिति ऐसे व्यक्ति के रूप मे प्रदर्शित करता है जो यह सिद्ध करना चाहता हो कि हेनरी का पक्ष कानूनो पर ग्राधारित है तब यदि ग्रेगोरी सप्तम रोमन कानून की सत्ता को मानने म ग्रस्वीकार कर दे तो वह हेनरी को एक ग्रथ भेजने का प्रस्ताव करता है जिसम जसा वह कहता है कि ग्रगोरी महान ने दोनो कानूनी व्यवस्थाग्रो ग्रर्थात् नागरिक तथा धार्मिक कानूनो को चच के उपयोग के लिये सग्रहीत किया था।[18]

वह मानता है कि सम्राट ने ही चच को शान्ति प्रदान की है तथा ग्रगोरी ने शान्ति को भग किया है[19] तथा वह हेनरी को राय देता है कि एक सभा बुलाए जिसमे ग्रेगोरी का उपस्थित होने के लिये बुलाया जाये।[20] वह ग्रेगोरी पर जालसाजी होने का ग्रारोप लगाता है तथा जो न्यायाधीश के रूप म उपस्थित हो उनसे उस पदवी के विशेषाधिकारो से वचित करने तथा उस दड क लिए लौकिक सत्ता को सौंप देने की ग्रपील करता है।[21] वह हेनरी को धम बहिष्कृत करने म । उसके राजत्व के विरुद्ध षडयत्र करने के ग्रगोरी के कार्यों को कानून के विरुद्ध बताता है तथा क्रसस ने ग्राग्रह पूवक कहता है कि हेनरी ने राज्य ग्रनुवशिक उत्तराधिकार क कारण पाया है तथा यदि किसी साधारण व्यक्ति को उसके पूवजो की सम्पत्ति क स्वामित्व से वचित रखना न्यायोचित नही है तो एक राजा क राज्य धारण पर ग्रापत्ति उठाना जो कि उसने उत्तराधिकार म पाया था न्याया नुकूल नहा माना जा सकता। वस्तुतः वह दृढता पूवक कहता है कि न तो वे न ग्रगोरी ही हेनरी के राज्याधिकार का निराकरण करने के लिए उठने का दावा करने के ग्रधिकारी हैं जोकि उसने ग्रपने पिता से प्राप्त किया है तथा ईश्वरीय नियुक्ति द्वारा पाया है। राज्य के ऊपर ग्रानुवशिक ग्रधिकार की यह मान्यता ध्यान देने योग्य है राजनैतिक सिद्धान्त के परवर्ती उत्तरकालीन विकास के पूर्वानुमान के रूप म रोचक है किन्तु यह पर्याप्त रूप म स्पष्ट है कि रोमन कानून से इसका उतना ही कम सम्बन्ध है जितना प्रारम्भिक मध्य युग क परम्परागत सिद्धान्तो से। वह मनुष्यो को निष्ठा की शपथ भग करने तथा ईश्वरीय ग्रधिकारो के ग्रतगत राजाग्रो को देय सम्मान तथा ग्रादर प्रदर्शित न करने के लिए प्रोत्साहित करने की दुष्टता पर बल देता है तथा क्रसस ग्रो हेनरी के न्याय के ग्रागे ग्रात्मसमपण करने तथा उससे न्याय की भीख मांगने की राय देकर ग्रपने वक्तव्य को समाप्त करता है।[23]

यह ग्रथ रोमन कानून के विशेष ज्ञान का प्रतिनिधित्व करने के ग्राडम्बर के बावजूद तर्कों के रूप म किसी भी महत्त्वपूर्ण कथन से युक्त नहीं है। हमने पिछली पुस्तक म बारहवी शताब्दी म बोलोग्ना (Bologna) के वकीलो के राजनीतिक सिद्धान्तो का विवरण प्रस्तुत किया है[24] तथा उनके ग्रथ तथा पीटर क्रसस की ग्रात्यन्तिक हठधर्मिता म कोई

सम्बन्ध स्थापित कर पाना कठिन ही होगा।

हमें हेनरी के अधिक कट्टर समर्थकों की स्थिति के बारे में एक अधिक गम्भीर कथन एक अनाम ग्रन्थ में उपलब्ध होता है जो भी उसी काल की रचना समझी जाती है। इसमें हम तत्सगत कारण मिलते हैं जोकि कुछ सीमा तक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित हैं।

वह मूलभूत प्रश्न जिसकी ओर लेखक प्रवृत्त होता है पोप-पद हेतु निर्वाचन के निर्धारण में सम्राट के अधिकार का स्थान है। वह रोम के चर्च के प्रथम सब चर्चों पर प्राधान्य से प्रारम्भ करता है तथा एक हस्तलिखित प्रति में यह कथन भी सम्मिलित है कि रोम सबका निर्णय करता है किन्तु सिवाय पोप के उस निर्वाचन के मामले के जो कि अन्याय पूर्ण है तथा साम्राज्यिक गरिमा के प्रतिकूल है या किसी विवादास्पद निर्वाचन के मामले में उसका कोई निर्णयकर्ता नहीं है।[25] फिर वह अनेक ऐसे मामले प्रस्तुत करता है जिनमें जैसा कि वह मानता है सम्राट ने प्रतिद्वन्द्वियों के बीच सम्राट ने निर्णय किया कि कौन न्याय सगत पोप माना जाय। ये उदाहरण 377 ई० में डमसस प्रथम के निर्वाचन से लेकर 963 ई० व 964 ई० में ओटो प्रथम के कार्य तक से लिए गए हैं। लेखक अपनी परिगणना को यह कहकर समाप्त करता है कि ओटो के हस्तक्षेप के बाद रोम की सेनेट व जनता ने शपथ ली कि वे स्वयं या उसके पुत्र की सम्मति के बिना भविष्य में किसी पोप का निर्वाचन नहीं करेंगे। वह तत्पश्चात् वर्णन करता है कि सम्राट हेनरी तृतीय ने कुछ पोपों को पदच्युत करके यह नियम बनाया तथा उसने हिल्डब्रैण्ड को बाध्य किया जो उस समय उपपादरी था कि वह यह शपथ ले कि उसकी स्वीकृति के बिना *Nunquam se de Papatu Intromissurum*। वह पोप निकोलस द्वितीय तथा उसकी परिषद् की पोप के निर्वाचन के बारे में आज्ञप्ति से सम्बन्ध का वर्णन करता है तथा सम्राट का उल्लेख करता है तथा कहता है कि इस आज्ञप्ति द्वारा जो सभी रोमन पादरियों एवं जनता की स्वीकृति से की गई थी यह व्यवस्था कर दी गई थी कि जो पोप के निर्वाचन में जो कोई उपद्रव खड़ा करेगा या हेनरी अथवा उसके पुत्र की सहमति बिना पोप बना दिया जाएगा उसे पोप नहीं समझना चाहिए किन्तु शैतान और धर्मत्यागी समझना चाहिये। वह विशेषतः यह कहता है कि हिल्डब्रैण्ड ने इसकी शपथ ली तथा आज्ञप्ति को अनुमोदित किया था।[26]

इस प्रकार विगत के बारे में विचार करके तथा पोप की नियुक्ति के बारे में सम्राट के कुछ अधिकारों के दावे के ऐतिहासिक दृष्टान्त को प्रस्तुत करके लेखक संक्षेप में अपने युग की परिस्थिति का विवरण प्रस्तुत करता है। वह आरोप लगाता है कि हिल्डब्रैण्ड ने पोप का पद एक रोमन सामन्त सिंचियस (Chinchius) तथा उसके द्वारा बनाए गए दल की सहायता से प्राप्त किया था। हेनरी ने पोप-पद के इस अधिग्रहण का विरोध करने के लिए तथा उसे पोप की गद्दी से उतरने का आदेश देते हुए दूतों को भेजा था किन्तु उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ और अन्त में केवल युद्ध षड्यन्त्र हत्या लूट खसोट तथा आगजनी के बाद हेनरी रोम पर कब्जा करने में समर्थ हुआ तथा उसने प्राचीन परम्परा के अनुसार क्लेमेण्ट का पोप-पद पर स्थापन किया तथा उसका अभिषिक्त हुआ।

वह यह बताते हुए उपसंहार करता है कि रोमन सम्राटों ने कुछ व्यक्तियों को पोप के प्रार्थी न बताकर स्वीकार नहीं किया था, कुछ को पदच्युत किया था, कुछ को स्वयं नियुक्त किया था तथा अन्यों को नियुक्त करने की आज्ञा दी थी।[27]

हम इस लेख में तर्कों की दो सारणियों को जो असमान मूल्य की है देख सकते हैं। हिल्डेब्राण्ड के निर्वाचन के बारे में वह जो बातें कहता है वे साम्राज्यिक दल की गप से अधिक कुछ भी नहीं है। दूसरी ओर पोप के निर्वाचन में सम्राट के स्थान के प्रश्न का विवेचन भलीभांति किया गया है तथा साम्राज्यिक दावे की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का उचित बोध व्यक्त करता है।

विडो के जो बाद में ओसनाबर्ग (Osnaburg) का बिशप बना, एक ग्रन्थ के दुर्भाग्य से केवल कुछ अंश ही प्राप्त होते हैं। लगभग 1118 ई० में ये अंश संकलित किया गया प्रतीत होता है तथा यह मूल रूप में रेवन्ना के ग्यूबर्ट के विरोधी-पोप के रूप में निर्वाचन के समर्थन में लिखा गया है।[8] वह इन आधारों पर इसका समर्थन करता है, *प्रथम राजा का पोप के निर्वाचन में वैध स्थान और दूसरा ग्रेगोरी सप्तम की पदच्युति का न्यायसंगत होना।* वह यह मानता है कि चर्च की सुदीर्घ परम्परा से किसी भी पोप के पदग्रहण से पूर्व सम्राट की राय लेनी चाहिये। वास्तव में विडो स्वीकार करता है कि प्रारम्भिक अवस्थाओं में इस प्रकार का कोई पद्धति नहीं थी किन्तु कान्सटेन्टाइन के धर्म परिवर्तन तथा चर्च के समृद्ध होने के साथ साथ जब पोप का पद मनुष्यों की महत्वाकांक्षाओं का केन्द्र बन गया तथा उत्तराधिकार के प्रश्न पर भ्रष्टाचारी तथा हिंसक भगड़ होने लगे तो यह आवश्यक पाया गया कि रोम के राजा हस्तक्षेप करें ताकि निर्वाचन नियमित तथा धार्मिक नियमों के अनुरूप हो सकें। तब से यह प्रथा हो गई कि जब एक पोप का निर्वाचन होता था तो उसका अभिषेक तब तक नहीं होता था जब तक कि राजा को उसकी सूचना नहीं दी जाती तथा वह इससे सन्तुष्ट नहीं हो जाता कि यह निर्वाचन विधिवत् हुआ है तथा जब तक कि वह अभिषेक के बारे में अपनी अनुमति नहीं दे देता।[9] फिर वह अपनी मान्यता को सिद्ध करने के लिए अनेक दृष्टान्त प्रस्तुत करता है तथा यह प्रदर्शित करता है कि राजा का निर्वाचन में स्थान सदा स्वीकृत हुआ है तथा कभी भी उसकी निन्दा नहीं हुई है।[30]

विडो यह बहुत की सावधानी रखता है कि इसका अर्थ यह नहीं कि राजा को कोई स्वेच्छाचारी अधिकार इस मामले में प्राप्त है, केवल पादरियों एवं *जनता की सहमति से* ही उसे पोप को नियुक्त करने का अधिकार है वह किसी ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति नहीं कर सकता जिसके बारे में *कोई सिद्धान्तगत विरोध हो तथा वह किसी ऐसे अधिकार* का दावा नहीं कर सकता जो सिद्धान्तों के अनुसार पोप के अधिकार में है। इस प्रकार विडो शास्त्रीय नियम की व्याख्या करता है कि अयाजकों को धार्मिक वस्तुओं के निपटारे का कोई अधिकार नहीं है। तथापि वह कहता है कि राजा वास्तव में अयाजक नहीं है क्योंकि अभिषेक किए जाने के कारण उसका भी पुरोहित के पद में योगदान है।[31]

विडो के ग्रन्थ का दूसरा उद्धरण रोमन राजाओं के धर्म-बहिष्करण का वर्णन करता है। वह बल पूर्वक कहता है कि हिल्डेब्राण्ड से पूर्व किसी पोप ने राजा को धर्म बहिष्कृत

नही किया है चाहे वह चर्च के विरुद्ध किसी गम्भीर अपराध का दोषी ही क्यो न रहा हो। इसका कारण यह नही था कि उनको मनुष्यो के समर्थन को खोने का भय था परिन्तु यह था कि वे सतो के आदेश का ध्यान रखते थे कि सभी कार्य धार्मिक उन्नति के लिये ही होने चाहिए। वह कहता है कि हिल्डेब्राण्ड तथा हनरी चतुर्थ के सघर्ष का परिणाम गृह युद्ध मे भी अधिक असहनीय है अत वह हनरी को धर्म बहिष्कृत करने के कार्य को अन्यायपूर्ण तथा अधर्मपूर्ण मानता है।[33] वह यह भी सिद्ध करने का प्रयत्न करता है कि सत एम्ब्रोस का सम्राट थियोडोसियस के विरुद्ध कर्म वास्तव मे धर्म बहिष्कार का मामला नही था।[33]

तीसरा उद्धरण हनरी की प्रजाग्रो को निष्ठा की शपथ से मुक्त करने से सम्बन्ध रखता है। किसी मानता है कि चाहे हनरी का धर्म-बहिष्कार न्याय सगत हो तथा उचित व्यक्ति द्वारा घोषित भी हो तो भी उसकी प्रजाग्रो का शपथ से मुक्त करने के दावे का कोई औचित्य नही है। जिन्होने यह शपथ ली है वे अपने को मिथ्या शपथ के दोषी बनाए बिना उसको तोड नही सकते तथा वह व्यक्ति जो मनुष्यो को शपथ भग करने की स्वीकृति एव आदेश देता है मिथ्या शपथ का दोषी है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हनरी की प्रजाग्रो को शपथ से मुक्त करने के कारण हिल्डेब्राण्ड ने ईश्वरीय कानून का तथा चर्च की व्यवस्था का उल्लंघन किया है शांति के विनाश का कारण बना है षडयन्त्र तथा फूट को उकसाया है तथा चर्च और साम्राज्य पर असख्य विपत्तियो को थोप दिया है।[34] अत वह निष्कर्ष निकालता है कि यह अनुचित ही था कि हिल्डेब्राण्ड को पदच्युत किया गया क्योकि उसने पोप पद की सत्ता का दुरुपयोग किया है धार्मिक सत्ता एव राजसत्ता को एक दूसरे का विरोधी बना दिया है क्योकि जब चर्च के दो अध्यक्ष एक दूसरे से सघर्ष मे रत हो तो शरीर या आत्मा किसी का भी कल्याण नही हो सकता।[35]

ये ग्रन्थ विशेषतया दूसरा व तीसरा बहुत स्पष्टतया उन व्यक्तियो के मुख्य सिद्धान्तो को प्रकट करते हैं जो 1080 ई के धर्म मत मतभेद के पश्चात् हनरी चतुर्थ के समर्थक थे। इन तर्कों की प्रमुख शक्ति निश्चित रूप से पोप-पद एव साम्राज्य के ऐतिहासिक सम्बन्धो के आधार मे तथा उन अनेक दृष्टान्तो मे है जिनमे वह यह सिद्ध करने का प्रयत्न करता है कि पोप के निर्वाचन मे राय देने का तथा विवादास्पद निर्णयो मे हस्तक्षेप का अधिकार राजा को रहा है। तथापि ओसनाबर्ग के विनो द्वारा ट्रीयर के वेनरिच की इस मान्यता को दोहराया जाना भी कम महत्व का नही कि चाहे राजा को धर्म-बहिष्कृत करना पोप के अधिकार मे हो परन्तु न्याय साथ उसका पदच्युत करने या उसकी प्रजा को निष्ठा की शपथ से मुक्त करने का कोई अधिकार नही है।

अब हम ग्रेगोरी सप्तम के समर्थको के तर्कों की ओर भी ध्यान देना चाहिये तथा कुछ ग्रन्थो पर विचार करना चाहिए जो लगभग उसी समय मे लिखे गए थे जिस समय कि व ग्रन्थ जिन पर हम विचार कर रहे थे।

इनमे से सर्वप्रथम जिसका हम विवेचन करेंगे सभवत उसी बर्नार्ड का लिखा हुआ है जो कान्सटेन्स के स्कूल मे अध्यापक था तथा 1076 ई के सघर्ष के प्रारम्भ मे जिसके कुछ पत्रो का हम पहले विवेचन कर आए हैं। वह ग्रन्थ जिससे हमारा सम्बन्ध है 1085 ई०

म लिखा गया था और यदि यह वास्तव म उस लेखक की ही रचना ह तो हम कह सकते हैं कि इस बीच उसका विषय स्पष्ट तथा ृा गया था। यह मुख्यतया धार्मिक लेखको क विषय क्रम स जमाए गए वाक्य समूहो का एक संग्रह है जो लेखक का दृष्टि म पोप के पक्ष की स्थिति का समर्थन करते हैं।

माल्जबग के मवहाट जस लेखक स्पष्टत यह अनुभव करत थ कि सारे सघष का मूल कारण तथा ग्रगोरी सप्तम की स्थिति का मूल आधार धम-बहिष्कार के सिद्धान्तो तथा उनके परिणामो म देखना चाहिए अत वह इस कठोर धार्मिक सिद्धान्त स प्रारम्भ करता है कि ईसाई लोगो को धम बहिष्कृत व्यक्तियो से कोई व्यवहार नही रखना चाहिए तथा यदि वह ऐसा कर तो उसे धम बहिष्कार का दण्ड भुगतने को तयार रहना चाहिए।[36] वह इस कठिनाई स परिचित ह कि धम बहिष्कार अन्याय पूण हो सकता ह किन्तु यह मानता है कि जब तक यह निरस्त न हो जाए उसका आदर करना चाहिए।[37] इस प्रकार पृष्ठभूमि के विवचन के पश्चात् वह ग्रन्थ क मुख्य विषय का अवतारणा करता है जो है हेनरी का धम बहिष्कार तथा ग्रेगोरी सप्तम की पदच्युति। वह सवप्रथम मत ग्रगस्तीन क तथा सत क्रिसोस्टोम (St Chrysostom) क तथाकथित ग्रन्थ क कुछ वाक्य उद्धत करता ह जो यह सिद्ध करते प्रतीत होते है कि राजा का विरोध करना वधानिक नहीं था[38] किन्तु इसके बाद वह लखाशो का एक तालिका प्रस्तुत करके यह दिखलाता है कि कोई भी पोप की धार्मिक सत्ता स मुक्त नहीं था तथा बहुत वग सख्या म ऐसे मामले गिनाता है जिनम उसकी मान्यता है राजा और सम्राट धम बहिष्कृत तथा पदच्युत किए गए हैं।[39] तत्पश्चात् यह ग्रगोरी सप्तम की पदच्युति का वणन करता है तथा मानता ह कि पोप किसी मनुष्य के निणय के अधीन नहीं था किन्तु यदि वह अपराध होना भी तो भी ग्रगोरी का दोषी ठहराना एव दण्डित करना बिना किसी आवश्यक धम विहित ढग स किया गया था।[40] कुछ आग चलकर वह निष्ठा की शपथ की पवित्रता की विवेचना करता है तथा तक दता ह कि जो भी व्यक्ति किसी स्वामी क प्रति निष्ठा की शपथ लेते ह क्योंकि कानून म ऐसा ागत ही रते हैं। किसी स्वामी की उसकी दुष्टता म भी सेवा करना निष्ठा नहीं किन्तु ग्रन्य क प्रति निष्ठाहीनता है। एक धम बहिष्कृत व्यक्ति अथवा ऐसे व्यक्तियो स सपक रखन वालो की मानापालन शपथ भग स बड़ा अपराध है। किसी ऐसी शपथ का पालन नहीं करना चाहिए जो किसी क देश की सुरक्षा या चच क कानूनो क विपरीत हो किसी व्यक्ति को ईश्वर क अतिरिक्त किसी के भी प्रति भक्ति की शपथ नही लनी चाहिए न ईश्वर के विरुद्ध शपथ का पालन करना चाहिए।[41] वह इसको सम्राट आटो तथा बेनवेंटम के एडलजीसस (Adelgisus of Beneventum) की एक कथा के उदाहरण से पुष्ट करता ह तथा सत अम्ब्रास के अनेक उद्धरणो से इसका औचित्य सिद्ध करता है।

चाहे इस ग्रन्थ म कोई नवीनता न हो तथापि यह स्पष्टतापूवक तथा समुचित ज्ञान क साथ पोप के समथको के दृष्टिकोण को दोहराता ह तथा विरोधी पोप ग्यूबट के विरुद्ध एक प्रबल भत्सना स समाप्त करता है।

इस समय का सबस महत्वपूण राजनीतिक ग्रन्थ लौटनबाख (Lautenbach) के

मेनेगोल्ड (Manegold) का ग्रंथ एड गेबेहार्डम (Ad Gebehardum) है। इस पुस्तक के पिछले खण्ड में राजनीतिक सत्ता के स्वरूप के बारे में उसके सिद्धान्तों का हम विस्तृत विवेचन कर आए हैं।[4] इस लिए यहाँ हमारा सम्बन्ध केवल धार्मिक एवं लौकिक सत्ताओं के सम्बन्धों तथा ग्रेगोरी सप्तम एवं हेनरी चतुर्थ के वास्तविक संघर्ष के वर्णन से ही है। मेनेगोल्ड के ग्रंथ को हम ट्रीयर के वनेरिच की आलोचना के प्रत्युत्तर में ग्रेगोरी की नीतियों का तर्कसंगत समर्थन तथा औचित्य सिद्ध करने वाला कह सकते हैं तथा अपने विषय के विकास में वह उसी क्रम को अपनाता है जो कि वनेरिच ने अंगीकार किया है।[43]

वह वनेरिच द्वारा लगाए गए या सूचित किए गए ग्रेगोरी के चरित्र के प्रति आक्षेपों का उत्तर देते हुए प्रारम्भ करता है[44] तथा उसकी चर्च सुधार की नीति का समर्थन करता है इसमें वह विशेषत धर्म विक्रय तथा जिसे वह बिशपों का अविवाहित व्यभिचार कहता है के प्रचलन पर ध्यान देता है तथा वह इस विषय में दोषी पादरियों की सेवाओं को अस्वीकार करने के लिए अपने जन साधारण के आह्वान के कार्य का औचित्य सिद्ध करता है।[45] तत्पश्चात् वह महान् संघर्ष के प्रारम्भ होने का वार्म्स की परिषद् की कार्यवाही का जिसमें हेनरी को धर्म-बहिष्कृत एवं पदच्युत किया गया था वर्णन करता है।[46] इसके बाद उसके ग्रंथ का सबसे विशिष्ट एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग आता है—एक निरंकुश शासक को पदच्युत करने के प्रजाजनों के अधिकार का तथा प्रजाओं को निष्ठा की शपथ से मुक्त करने के पोप के अधिकार के सही अर्थ का विवेचन।[47] वह वनेरिच के सुझाव का खण्डन करता है कि पोप पद के चुनाव में सम्राट की स्वीकृति की आवश्यकता है[48] तथा वह अपाजक प्रतिष्ठापन के निषेध का समर्थन करता है।[49]

हम मेनेगोल्ड द्वारा प्रतिष्ठापन के प्रश्न के विवेचन का अध्ययन पहले कर आए हैं।[50] तथा यहाँ उसके द्वारा ग्रेगोरी के चरित्र के समर्थन से हमारा कोई प्रयोजन नहीं है किन्तु हम ग्रेगोरी और हेनरी के संघर्ष के प्रारम्भ में उसके द्वारा दिए गए विवरण का तथा हेनरी के धर्म बहिष्कार तथा उसकी पदच्युति के औचित्य का कुछ अधिक सावधानी से अध्ययन करना है। मेनेगोल्ड द्वारा वार्म्स तथा रोम की परिषदों की कार्यवाही का विवरण मुख्यत बर्नार्ड के विवरण तथा ग्रेगोरी के पत्रों से लिया गया प्रतीत होता है। वह ग्रेगोरी को हेनरी से उसके विभिन्न अपराधों के विरुद्ध कई वर्षों तक विरोध करता हुआ तथा अन्तत उसे चेतावनी देता हुआ प्रदर्शित करता है कि यदि उसने अपने कार्यों के प्रति पश्चात्ताप नहीं किया तो वह उसे धर्म बहिष्कृत कर देगा। हेनरी ने अपने दुष्कर्मों को स्वीकार करने के स्थान पर वार्म्स में बिशपों तथा राजाओं को एकत्रित किया तथा उनकी राय एवं प्रेरणा से ग्रेगोरी की पदच्युति की घोषणा कर दी तथा दूतों द्वारा रोमन परिषद् को इसकी सूचना दे दी। इसी कारण अंत में ग्रेगोरी और रोम की परिषद् को हेनरी के धर्म-बहिष्कार तथा सिंहासन से पदच्युति की घोषणा करनी पड़ी।[51] इस प्रकार कार्य की परिस्थितियों एवं कारणों का विवेचन करने के पश्चात् मेनेगोल्ड अपने ऐतिहासिक दृष्टान्त प्रस्तुत करता है। वह आरोप लगाता है कि ग्रेगोरी महान् ने सम्राट मारिस की पदच्युति तथा मृत्युदण्ड को सहमति दी थी सम्राट कान्स्टेंटियस को पोप फेलिक्स द्वारा धर्म विद्रोही घोषित किया गया था पायस लुई को बिशपों ने तपस्या करने को विवश किया था

पोप स्टीफेन के अधिकार से चिलपेरिक (Chilperic) को पदच्युत करके पिप्पिन (Pippin) को फ्रैंक लोगों का राजा चुना गया था तथा पोप निकोलस ने सम्राट लोथेयर (Lothair) को उसकी उपपत्नी वाल्डाडा (Waldrada) के कारण धर्म बहिष्कृत कर दिया था। (हमारा यहाँ इसके वक्तव्यों की ऐतिहासिक सत्यता से मतलब नहीं है)।[5] फिर वह अनेक उदाहरण देता है जिनमें राजाओं को उनकी ही प्रजाओं ने पदच्युत कर दिया था तत्पश्चात् राजत्व के स्वरूप के बारे में विवाद है जिसका विस्तृत विवेचन हम पिछली पुस्तक में कर चुके हैं जिसमें वह यह सिद्ध करता है कि राजा अपनी सत्ता को उस समझौते या सहमति के कारण धारण करता है जिसमें उसने कानून और न्याय को बनाए रखने की प्रतिज्ञा की है तथा जनता ने आज्ञा पालन की प्रतिज्ञा की है और वह तर्क देता है कि हेनरी के द्वारा किए गए अपराध उसकी पदच्युति का पर्याप्त रूप से औचित्य सिद्ध करते हैं।[53]

इस स्थान पर हमारा सम्बन्ध इस प्रश्न से नहीं है जिस पर हम पिछली पुस्तक में विचार कर चुके हैं किन्तु मनेगोल्ड द्वारा पोप के कार्यों के वर्णन से है तथा हम इसीलिए ध्यान रखना चाहिए कि वह तुरन्त मुख्य तर्क की ओर लौट आता है अर्थात् हेनरी चतुर्थ एवं उसके समर्थकों द्वारा पवित्र पोप पद तथा चर्च की एकता के विरुद्ध षड्यन्त्र किया गया था अतः यह न्यायोचित था कि उसे धार्मिक नियम एवं लौकिक कानून दोनों के द्वारा बाध्य किया जाए।[54] यह स्पष्ट है कि वह ग्रेगोरी सप्तम के कार्य को मुख्यतः वाम्स में हेनरी तथा उसके समर्थकों के कार्य की दृष्टि में उचित ठहराता है तथा साथ ही वह इस विषय में भी असंदिग्ध है कि यह कार्य—अर्थात् हेनरी को धर्म-बहिष्कृत करना तथा पदच्युति पोप के अधिकार में था। ग्रेगोरी द्वारा हेनरी की प्रजा को निष्ठा की शपथ से मुक्त करने का समर्थन वह जैसा कि हम पिछली पुस्तक में कह आए हैं यह कहकर करता है कि यह इस सार्वजनिक एवं अधिकार युक्त घोषणा से अधिक कुछ भी नहीं है कि शपथ पहले से ही अमान्य थी।

सुत्री के बिशप बोनीजो के ग्रन्थ जिसका नाम एड एमाकम (Ad Amicum) है कि सातवीं तथा आठवीं पुस्तक में ग्रेगोरी सप्तम के पोप पद के कार्यकाल का महत्त्वपूर्ण विवरण मिलता है किन्तु वह पूरी तरह से विश्वसनीय नहीं है। वह ग्रेगोरी का एक कट्टर समर्थक था यद्यपि उसके कथनों का प्रायः सावधानी से अध्ययन करना चाहिए तथापि उसने अपने युग की घटनाओं में पर्याप्त रूप से भाग लिया है तथा विशेषतः लम्बार्डी के पेटेरिया (Pataria) तथा मिलन के चर्च के मामलों के बारे में बहुत सी महत्त्वपूर्ण सूचनायें सुरक्षित रखी हैं। उसके द्वारा प्रस्तुत किए गए 1076 ई. में वाम्स की परिषद् द्वारा ग्रेगोरी सप्तम की पदच्युति तथा उसी वर्ष में रोम की परिषद् द्वारा हेनरी के धर्म-बहिष्कार तथा पदच्युति के वर्णन में कोई विशेष नवीनता नहीं है तथा जैसा हम पहले देखते आए हैं वह ग्रेगोरी के न्याय को बहुत अधिक उचित सिद्ध करता है। वह कहता है कि ग्रेगोरी को पवित्र पोप पद से च्युत करने के राजा के प्रयत्नों के कारण उसको धर्म-बहिष्कृत करना न्यायसंगत था तथा वह यह दिखाने के लिए अनेक दृष्टान्तों को उद्धृत करता है कि पुराने काल में पोपों ने राजाओं को धर्म-बहिष्कृत एवं पदच्युत

भी किया है।[56] व० यन्न सगत्त श । म 1077 ई म फारराम्म नामक स्थान पर जमन राजकुमारा को रूडोल्फ के निर्वाचन के लिए उत्तरदायी ठहराता है तथा इस दनिया की बहुत सी बुराइया का कारण बताता है।[57]

एक छोटा ग्रथ म जो ल्यूका के बिशप एन्सलम के नाम से प्रसिद्ध है तथा जिसे उसने सभवत 1085 ई0 म ग्रेगोरी सप्तम की मृत्यु के कुछ समय बाद लिखा है विरोधी पोप ग्यूबट के विरुद्ध गहरा आरोप है तथा वह मपथ का एक बड़ी सीमा तक कारण इनको व धम विक्रय तथा चच की स्वतन्त्रताओ को नष्ट करने के उसके प्रयत्नो को बताता है [58]

उस बर्नाल्ड द्वारा लिख गए अनक ग्रथ सरक्षित है जिनके 1076 ई म बनाल्ड म पत्राचार की हम पहले ही चर्चा कर आए हैं।[59] इनम स एक ग्रथ म जो सभवत 1086 म ग्रगोरी सप्तम की मृत्यु के बाद लिखा गया था व जोरदार रूप म तीन मुद्दो के बारे म चर्चा करता है। प्रथम निष्ठावाना को धम बहिष्कृत व्यक्तिया का सम्पक त्याग देना चाहिए और विशपन विरोधी पोप ग्यूबट तथा उसक अनुयायियो का द्वितीय कि राजा अन्य मनुष्यो की भाँति चच की सत्ता के ही अधीन हैं और उनका धम बहिष्कार किया जा सकता है तृतीय ग्रगोरी ने मनुष्यो को शपथ भग क लिए प्रेरित नहीं किया *किन्तु उसी सत्ता से जिसस उसने उनके शासको को धम बहिष्कृत एव पदच्युत किया था* मनुष्यो को आज्ञापालन की शपथ स भी मुक्त कर दिया।[60] व० एक अन्य ग्रथ म जिसका समय अनिश्चित है इन्ही विषया पर बहुत महत्वपूण ढग से विवचन करता है तथा सबस पहले यह तक दता है कि यदि सत पीटर के उत्तराधिकारियो को जसा वह बता चुका है बाँधन एव मुक्त करने का अधिकार है और स प्रकार यदि चच के पादरियो को भी पदच्युत करन का अधिकार है तो लौकिक राजाओ का पदच्युत करने का अधिकार तो उसम कहा अधिक है जिनकी गरिमा मनुष्य कृत है और वह सत ग्रगोरी महान के बहुधा *उदधत सन्दर्भों के उल्लेख स इसकी पुष्टि करता है तथा वह* बहुधा वर्णित उदाहरण देता है दूसरे यह कि यदि उनको शासका को पदच्युत करन का अधिकार था तो स्पष्टत उनकी प्रजाओ को भक्ति एव आज्ञापालन की शपथ स मुक्त करने का भी अधिकार था तीसरे यह कि ऐसी शपथ प्राय शासको क लिए तभी तक वास्तव म ली जाती है जब तक कि वे पद पर हो तथा यदि उनको वधानिक रूप स पदच्युत किया गया हो तो किसी भी प्रकार से उनकी बाध्यता नहीं है और इस दशा म चच न क्वल उनके दुबल मान्या को ध्यान म रख कर मनुष्या को औपचारिक रूप से शपथ मुक्त किया है जो कि इन मामलो म जब तक विशेषतया उसका उल्लेख न कर दिया गया हो यह जान न सकें कि क्या हुआ है।[61]

इस युग का सबसे महत्वपूण ग्रथ फररा के विशप विडो द्वारा 1086 ई म ग्रेगोरी सप्तम की मृत्यु के बाद किन्तु उसके उत्तराधिकारियों के निर्वाचन से पूर्व लिखा गया ग्रथ है। व० विरोधी पोप ग्यूबट (क्लेमेण्ट) के अनुरोध पर लिखा गया है तथा उसका उद्देश्य यह सुझाना हो सकता है कि *चूंकि अब ग्रेगोरी सप्तम की मृत्यु हो गई है अत उसके* अनुयायियो को भी क्लमेंट को स्वीकार करना सभव है। इस ग्रथ के बारे म विचित्रता इसके प्रथम भाग म ग्रगोरी सप्तम का सशक्त एव स्पष्ट समथन है, वास्तव म उसके पक्ष

को प्रस्तुत करने वाला यह सबसे प्रभावशाली वक्तव्य है—जो सार एवं प्रस्तुतीकरण की सशक्तता के कारण उसके लेख के दूसरे भाग में अधिक प्रभावशाली है जिसमें हेनरी चतुर्थ एवं उसके समर्थकों द्वारा ग्रेगोरी के विरुद्ध लगाए गए आरोप हैं।

ग्रन्थ के प्रथम भाग का प्रारम्भ विडो हिल्डेब्रैण्ड के उच्च चरित्र तथा शक्ति से तथा उसके नियमित एवं सिद्धान्तानुकूल पोप-पद पर निर्वाचन से करता है।[6] फिर वह हेनरी चतुर्थ के व्यक्तिगत दोषों तथा उसके द्वारा धर्म विक्रय के व्यवहार का तथा ग्रेगोरी द्वारा उसके मन एवं चरित्र को परिवर्तन करने के प्रयत्नों का गम्भीर विवरण देता है। हेनरी ने परन्तु कोई ध्यान नहीं दिया तथा अन्त में ग्रेगोरी द्वारा कठोर कदम उठाने की धमकी देने पर वह जर्मनी के सम्भ्रान्तों के विरोध को एक साथ बुलाकर उसकी निन्दा करने की आज्ञा देता है। केवल तभी ग्रेगोरी एवं रोम के विशप हेनरी को पूर्णतया पश्चात्ताप रहित पाकर उसे धर्म बहिष्कृत एवं पदच्युत करते हैं।[63] तत्पश्चात् विडो धर्माचार्यों के अनेक वक्तव्य-समूहों को उद्धृत करते हुए बताते हैं कि चर्च की सत्ता राजाओं तथा सम्राटों पर भी है तथा अनेक उदाहरण देता है जिनमें राजाओं तथा सम्राटों को धर्म बहिष्कृत एवं पदच्युत किया गया है।[64] वह सुआबिया के रुडोल्फ को उसकी निष्ठा की शपथ के बावजूद राजा के विरुद्ध खड़ा करने के कारण ग्रेगोरी पर हुए आक्षेपों का विवरण प्रस्तुत करता है किन्तु वह तर्क देता है कि पहले तो ग्रेगोरी ने सदा यह माना है कि उसने रुडोल्फ को स्वयं नियुक्त नहीं किया दूसरे यह कि हेनरी की न्याय सभा पद च्युति हो चुकी थी और इसलिए रुडोल्फ उसका भक्ति से दायित्व से मुक्त था और यदि ग्रेगोरी ने रुडोल्फ के निर्वाचन की पुष्टि कर दी तो वह कोई गलत कार्य नहीं कर रहा था।[6] वह ग्रेगोरी पर लगाए गए इस आरोप का उत्तर कि उसने जर्मनों को हेनरी के विरुद्ध युद्ध करने को उकसाया है—इस तर्क द्वारा देता है कि वह केवल धर्माचार्यों के निर्णय के अनुरूप ही कार्य कर रहा था कि दुष्ट लोगों पर आक्रमण करना तथा उनको दबाना उचित है यह सन्तों के लिए उचित हो सकता है कि वे अपना बचाव न करें किन्तु न्याय को बनाये रखना एक पूर्णतया भिन्न विषय है।[66] जब ग्रेगोरी ने जर्मनों को हेनरी के प्रति निष्ठा की शपथ से मुक्त किया तो वह केवल यह घोषणा कर रहा था कि वह शपथ अवैध हो चुकी है। यह भी आरोप लगाया गया है कि ग्रेगोरी ने अवाजकों को धर्म क्रियाएँ एवं विवाहित पादरियों पर आक्रमण एवं उनसे दुर्व्यवहार करने के लिए उकसाया किन्तु विडो उत्तर देता है कि उसने सदैव उनके आचरण की निन्दा करते हुए भी उनके साथ की गई हिंसा पर दुःख प्रकट किया है तथा धर्माचार्यों के विभिन्न वाक्य समूहों को उद्धृत करके वह ग्रेगोरी द्वारा निष्ठावानों को उनसे संस्कार प्राप्त करने के निषेध का औचित्य सिद्ध करता है।[67] वह अनेक अधिकारियों को उद्धृत करके ग्रेगोरी द्वारा सामान्यजन प्रतिष्ठापन के निषेध को उचित ठहराता है[68] तथा अनेक में उन लोगों के तर्कों को भी प्रस्तुत करता है जो यह मानते थे कि ग्यूबर्ट (क्लेमेण्ट तृतीय) का निर्वाचन अवैध है।[69] वह अपने ग्रन्थ के प्रथम भाग का समापन हेनरी द्वारा रोम पर अधिकार के संक्षिप्त वर्णन नगर की रक्षा के लिए उसका सामना करने को नारमनों का आगमन तथा नगर को लूटना और ग्रेगोरी के अन्तिम निष्क्रमण एव मृत्यु से करता है।[70] जैसा हम पहले कह चुके हैं हिल्डेब्राण्ड का यह

समर्थन सुविचारित है एवं प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया गया है।

अपने ग्रंथ के दूसरे भाग में विडो ग्रेगोरी के विरुद्ध लगाए गए प्रमुख आरोपों तथा उसकी पदच्युति एवं ग्यूबर्ट के पोप के रूप में निर्वाचन को उचित ठहराने वाले तर्कों को प्रस्तुत करता है। सर्वप्रथम वह यह तर्क देता है कि निकोलस द्वितीय के विधान के विपरीत ग्रेगोरी राजकीय सहमति के बिना निर्वाचित हुआ था तथा वह उन मिथ्या किंवदन्तियों का भी उल्लेख करता है कि उसने यह निर्वाचन रिश्वत के द्वारा करवाया था।[71] दूसरे वह यह तर्क देता है कि यदि ग्रेगोरी वैधानिक रूप से निर्वाचित भी हो तो भी उसने अपनी सत्ता के दुरुपयोग के कारण अपनी गरिमा को खो दिया था। उसने धर्माचार्यों के सभी निदेशों के विपरीत युद्ध छेड़ा था रूडोल्फ को गद्दी पर बैठाया तथा जमनों को उनकी हेनरी के प्रति निष्ठा की शपथ से मुक्त करने के कारण वह हत्या एवं शपथ भंग का कारण रहा था। उसने धर्माचार्यों के सिद्धान्तों के विरुद्ध यह शिक्षा दी थी कि मतभेद उपस्थित करने वाले तथा धर्म बहिष्कृत व्यक्तियों के संस्कार अवैध हैं उसने अन्यायपूर्वक हेनरी तथा अन्य व्यक्तियों को धर्म-बहिष्कृत किया था तथा उसमें आवश्यक विधि विधान के स्वरूप का ध्यान नहीं रखा था।[72] तीसरे वह यह तर्क देता है कि यदि ग्रेगोरी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों तथा इन निष्कर्षों को कि उसने अपनी सत्ता का स्वत्व खो दिया था उपेक्षा भी कर दी जाए तथा ग्यूबर्ट का पहला निर्वाचन अनियमित था यह भी स्वीकार कर लिया जाए तो भी चूंकि अब ग्रेगोरी का मृत्यु हो चुकी थी इसका कोई कारण नहीं था कि ग्यूबर्ट को अब पोप स्वीकार न किया जाए तथा वह इसके अनेक समरूप उदाहरण प्रस्तुत करता है जो इस कार्य पद्धति को उचित सिद्ध करते हैं।[3] हम विडो द्वारा प्रतिष्ठापन के प्रश्न के विवेचन का पहले ही वर्णन कर चुके हैं[74] तथा यहाँ केवल यही कहा जा सकता है कि *विडो प्रतिष्ठापन के जो तक अधिकार का सम्बन्ध केवल बिशप* पद की लौकिक सम्पदाओं से मानता है। वह अपने ग्रंथ का समापन यह कह कर करता है कि दो तर्क हैं जो यह सिद्ध करते हैं कि ग्रेगोरी निन्दा के योग्य है पहला यह कि उसने रूडोल्फ को राजा बनवाया और इस प्रकार अनेक मनुष्यों की हत्या तथा अनेक जमनों के शपथ भंग का कारण बना दूसरा यह कि वह धर्म में फूट डालने का अपराधी *था क्योंकि उसने धर्म बहिष्कृत तथा अयोग्य पुरोहितों से संस्कार करवाने को जनता से* मना कर दिया तथा उनके संस्कारों को मान्यता देने से अस्वीकार कर दिया।[5]

कुछ वर्षों के बाद एक ग्रंथ जिसका शीर्षक था De Unitate Ecclesiae Conservanda लिखा गया तथा उसकी परीक्षा करके हम इस अध्याय को समाप्त करते हैं। जैसा कि पाठ्य में विभिन्न सन्दर्भों से सिद्ध होता है यह सन् 1090 ई॰ तथा 1093 ई॰ के बीच लिखा गया किन्तु उसका लेखक अनिश्चित है। इसमें बहुत सी ऐसी महत्वपूर्ण बातें हैं जिनका विवेचन हम यहाँ नहीं कर सकते विशेषत 1086 ई॰ से लेकर 1092 ई॰ तक जमनी की राजनैतिक तथा धार्मिक दशाओं का वर्णन। हमें मुख्यत लेखक द्वारा ग्रेगोरी सप्तम के दावों की कि उसे राजाओं और सम्राटों को धर्म बहिष्कृत करने तथा पदच्युत करने का अधिकार था तथा इससे उत्पन्न होने वाले लौकिक एवं धार्मिक सत्ताओं के सम्बन्धों के बारे में सम्पूर्ण प्रश्न के विवेचन तक ही अपने को सीमित रखना होगा।

यह निरीक्षण करना अत्यन्त रोचक है कि पहली बार राजाओं के धम बहिष्कार तथा पदच्युति के तथाकथित दृष्टान्तो के बारे म हमे यहाँ आलोचनात्मक ऐतिहासिक विवाद उपलब्ध होता है। वह सब प्रथम अन्तिम म रोविञ्जियन राजा चिलपेरिक की तथा कथित पदच्युति तथा पिप्पिन पोप जखारियास तथा पोप स्टीफेन द्वारा पिप्पिन की फ्रको के राजा के रूप म नियुक्ति पर विचार करता है। वह वास्तव मे इसे अस्वीकार नहीं करता कि पोपो ने उनम भाग लिया था किन्तु वह यह मानता है कि उन्होने केवल अपनी सहमति एव सत्ता उस काय को प्रदान की थी जो फ्रैंक राजाओ की सामान्य सहमति एव सत्ता से किया गया था। अत वह इस बात को दृढता पूवक कहता है कि ग्रगोरी ने सारे मामले को यह कह कर कि पोप ने ही केवल मात्र अपनी सत्ता से चिलपेरिक को पदच्युत किया तथा फ्रैंको को निष्ठा की शपथ स मुक्त किया था गलत रूप मे प्रस्तुत किया है।[76] तदनन्तर लेखक ग्रगोरी द्वारा उद्धत धम बहिष्कार के मामलो को लेता है वह वास्तव मे इसे अस्वीकार नही करता कि सत अम्बरोस ने थियोडासियस को धम सभा स बाहर कर दिया था किन्तु वह आग्रह पूवक कहता है जब सत अम्बरोस ने थियोडोसियस को इस प्रकार बहिष्कृत किया तब उसने उसकी राजनीतिक सत्ता या स्थिति म हस्तक्षेप करने का प्रयास नही किया तथा उसने और पोपो ने सम्राट वेलेन्टीनियन तथा उसकी माता जस्टिना तथा दूसरे विधर्मियो के विषय मे भी वसा नहीं किया।[77] दूसरी ओर वह पोप इन्नोसेण्ट प्रथम द्वारा सम्राट आर्केन्दिस के तथाकथित धम बहिष्कार की सच्चाई मे भी सन्देह करता है तथा तक देता है कि ऐतिहासिक लेखो मे इसका कोई वणन नही मिलता तथा इसका कोई पर्याप्त कारण नही मिलता कि वसा क्यो किया गया होगा तथा जसा कि उसके कानूनो से विदित होता है [8] आर्केडियस एव चच के सम्बन्ध मित्रतापूण थे।

इन तथाकथित ऐतिहासिक दृष्टान्तो की आलोचनात्मक परीक्षा रोचक एव प्रभावशाली है क्योकि निस्सन्देह उसने हिल्डेब्राण्ड की स्थिति मे एक दबल सूत्र पकड लिया किन्तु इस ग्रथ मे केवल यही महत्त्वपूण नहीं हैं। वास्तव म इसका सबस महत्त्वपूण पक्ष दोनो शक्तियो के विभिन्न क्त या का तथा उनके समान दवी सत्ता म सिद्धान्त का सुविचारित वणन और विवेचन ह। वह पोप जिलेसियस प्रथम के लेखो से कुछ महत्त्वपूण वाक्यसमूहो को उद्धत करता है ताकि वह यह सिद्ध कर सके कि ईश्वर ने ही स्वय दोनो सत्ताओ अर्थात् लौकिक एव धार्मिक को दुनिया का शासन करने की आज्ञा दी थी तथा ईसा ने ही दोनो को एक दूसरे से पृथक किया था। लौकिक सत्ता का काय बुरो को दड देना तथा अच्छो को पुरस्कार देना है। यह स्पष्ट है कि ईश्वर ने यह आदेश नही दिया कि सभी अपराधो का दण्ड चच के अध्यक्ष द्वारा ही दिया जाए इनमे से अनेक का निणय लौकिक सत्ता द्वारा किया जाना चाहिए। पुरोहित के पास केवल एक तलवार है वह आध्यात्मिक है। वह यह भी आग्रह करता है कि पुराने जमाने म प्राय ऐसा रहा है कि राजा एव सम्राट धमद्रोहियो के मित्र एव सरक्षक रहे हैं किन्तु उस दशा में भी विशपो एव पोपो ने उनसे आदरपूण एव शान्तिपूण शब्दों म सम्बोधित किया है ताकि वे चच मे शान्ति बनाय रख सकें तथा इसके दृष्टान्त-स्वरूप वह पोप जिलेसियस तथा एनेस्टसियस के पत्रा स अनेक वाक्यो को उद्धृत करता है। यह कभी भी इन पोपो के विचार म नही आया कि उनको सम्राटो को

पदच्युत करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसके बजाय उन्होंने उनको ईश्वर के न्याय पर छोड़ दिया।[79] ग्रन्थ के एक परवर्ती खण्ड में वह इस पर पुनः विचार करता है तथा पोप की सत्ता की पृथकता एवं स्वातंत्र्य के आधार के सिद्धान्त की पुनः पुष्टि करता हुआ यह तर्क देता है कि हिल्डेब्राण्ड तथा उसके शिष्यों ने वास्तव में दैवी व्यवस्था को उन्मूलित करने तथा एक ऐसी सत्ता के अपहार का प्रयत्न किया जो उनकी न होकर राजा की थी।[80]

इस प्रकार यह ग्रन्थ इस दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है कि यह ग्रेगोरी सप्तम के दावों के महत्त्व के सम्पूर्ण प्रश्न को इतनी अधिक स्पष्टता से उठाता है जितना कि अभी तक कभी भी नहीं किया गया था। वह वास्तव में इनके अधिक सम्पूर्ण एवं अत्यधिक विकसित स्वरूपों का उल्लेख नहीं करता जो ग्रेगोरी के बाद के कथनों में उपलब्ध हैं[81] किन्तु वह ग्रेगोरी के सम्पूर्ण कार्यों का जो महत्त्व समझता है वह उसे उतने बलपूर्वक प्रकट करता है तथा यह मानता है कि दोनों सत्ताओं के बीच इस भ्रान्ति से दोनों का विनाश ही हो सकता है। अपने भिन्न खण्ड में इस ग्रन्थ का किसी सीमा तक ग्रेगोरी महान की इस परम्परा के प्रदर्शन का कुछ सीमा तक उल्लेख माना है कि राजकीय सत्ता इस अर्थ में ईश्वर प्रदत्त तथा दैवी थी उसका किसी रूप में भी विरोध अन्यायपूर्ण तथा अपावन था[82] किन्तु इसका इस भिन्नान्त से उसका उस मान्यता का भ्रम नहीं होना चाहिए जिसके अनुसार हिल्डेब्राण्ड के दावों ने दैवी व लौकिक सत्ताओं के ईश्वरीय निर्धारित विभेद को समाप्त कर दिया था।

अब हम इस शब्दावली पर ध्यान दे सकते हैं जिसके अन्तर्गत लेखक ने विरोधी पोप रुडोल्फ के निर्वाचन के प्रश्न तथा कम से कम ग्रेगोरी सप्तम की मृत्यु के पश्चात् उसके पोप रूप में स्वीकार किये जाने के दावे का वर्णन किया है। वह हेनरी की इस इच्छा में रोम आना तथा प्रदर्शित करता है कि या तो ग्रेगोरी से समझौता कर ले या यदि यह सम्भव न हो सके तो दूसरे पोप का निर्वाचन कर ले। जब ग्रेगोरी ने उसमें तब तक मिलना अस्वीकार कर दिया जब तक कि वह उसके हाथों में साम्राज्य को न सौंप दे तो उसे विवश होकर बल प्रयोग करना पड़ा। जब उसने शहर पर कब्जा कर लिया तो रोम के चर्च ने ग्यूबर्ट को पोप चुन लिया तथा उसने हेनरी का सम्राट के रूप में अभिषेक कर दिया।[83] लेखक इस तथ्य को छिपा जाता है कि ग्यूबर्ट को हेनरी तथा उसके पक्ष के बिशपों ने जून 1080 ई॰ में ब्रिक्सन में ही पोप चुन लिया था स्पष्टतया वह उसके पोप पद पर दावे को रोमन चर्च द्वारा 1084 ई॰ में उसके स्वागत अथवा निर्वाचन पर आधारित करना चाहता है। तथापि एक बाद के अध्याय में वह सुझाव देता है कि चाहे मूल निर्वाचन में कुछ अनियमितता भी रही हो तो भी यह इसका पर्याप्त कारण नहीं है कि ग्रेगोरी की मृत्यु के बाद भी उसे पोप न चुना जाए तथा उन मामलों के उदाहरण देता है जहाँ पोप का निर्वाचन अनियमित रहा है किन्तु बाद में चर्च ने उनको मान्यता दे दी अथवा स्वीकार कर लिया।[84] जिसका वर्णन बहुत कुछ फरेंग के विवरण में मिलता जुलता है।[8]

यदि अब हम इसका सार विचार किए गए साहित्य के मुख्य सूत्रों को समाहित करने का प्रयास करें तो हमें इन विवादास्पद प्रश्नों के विवेचन में अत्यन्त सावधानी बरतने की

आवश्यकता को स्वीकार करता। इन लेखकों में हम धार्मिक एवं लौकिक सत्ताओं की पृथक पृथक शक्तियों के बारे में व्यवस्थित सिद्धान्त उपलब्ध नहीं होते हैं। हम इनको उन सिद्धान्तों के साथ जोड़ने का प्रयास भी नहीं [illegible] कि जो [illegible] के विस्तार में तर्क सगत रूप से सम्बद्ध प्रतीत हों। वास्तव में यह सभी के अथवा लगभग सभी के विषय में कहा जा सकता है कि वे इस क्षण की तात्कालिक स्थिति के बारे में चिन्तित थे। उतने दोनों सत्ताओं के सम्बन्धों के विषय में किसी सामान्य सिद्धान्त के बारे में नहीं।

[illegible] पक्षों में तात्कालिक रूप में दो प्रश्न विवादास्पद थे—जर्मन सम्राट तथा चर्च के बिशपों द्वारा पोप को नियुक्त या पदच्युत करने के अधिकार या सत्ता का प्रश्न तथा पोप द्वारा राजा को धर्म बहिष्कृत एवं पदच्युत करने के अधिकार का प्रश्न। हेनरी चतुर्थ के समर्थक यह मानते थे कि कोई पोप राजा या सम्राट की सहमति के बिना निर्वाचित नहीं हो सकता तथा निस्सन्देह इस मान्यता के समर्थन में उनके द्वारा बहुत अधिक मात्रा में ऐतिहासिक प्रमाण उपस्थित किए गए तथा उनमें से कुछ यह मानते थे कि ग्रेगोरी सप्तम ने यह सहमति कभी प्राप्त नहीं की। उनमें से कुछ यह मानते थे कि कुछ परिस्थितियों में पोप का न्याय करना तथा उसे पदच्युत करना वैधानिक था तथा यह भी उनकी मान्यता थी कि ग्रगोरी सप्तम का आचरण इस प्रकार का था जो राजा के न्याय तथा उसके द्वारा उसकी पदच्युति के औचित्य को सिद्ध करता था।

ग्रेगोरी के समर्थकों ने [illegible] पोप के निर्वाचन में राय लिए जाने के सम्राट के अधिकार के प्रश्न का विवेचन ही नहीं किया। यद्यपि मनगोल्ड ने इसका खण्डन किया है। हम देख चुके हैं कि सम्भवत उनके मन में इसके बारे में कुछ सन्देह था कि क्या पोप का न्याय कोई कर सकता है किन्तु सामान्यत उन्होंने इस मान्यता का खण्डन किया।

[illegible] का अन्त सघर्ष का अन्य अन्तत [illegible] सुधार की आवश्यकता तथा हेनरी द्वारा [illegible] मे आता है। [illegible] केवल मनगोल्ड द्वारा ही परन्तु ग्रेगोरी के पत्र का समर्थन करते हुए फरेरा के गिडो द्वारा भी [illegible] बल पूर्वक [illegible] किया गया है। और 1076 ई० की महान् तथा क्रान्तिकारी घटनाओं के विषय में उल्लेखनीय है कि ग्रगोरी के समर्थकों की यह मान्यता है उसने हनरी को तभी धर्म बहिष्कृत एवं पदच्युत किया जबकि उसने पहले पोप को पदच्युत किया। यह बात उल्लेखनीय है कि सारजबर्ग का गबहार्ड इस प्रश्न को बहुत बल पूर्वक प्रस्तुत करता है तथा आग्रह करता है कि हनरी एवं उसके अनुयायी [illegible] ही इस धार उत्पन्न [illegible] मूल कारण थे। इस में केवल मेनेगोल्ड तथा बोनीजो ने ही ऐसा कहा है किन्तु फेरेरा के गिडो ने भी यही माना है। प्रतीयमानत यह कहना सही है कि जहां तक इन लेखकों का प्रश्न है ग्रगोरी के समर्थक इसके बारे में मन में स्पष्ट नहीं थे कि क्या उसका कार्य पूर्णतया बुद्धिमत्तापूर्ण था। गबहार्ट स्वीकार करता प्रतीत होता है कि इस प्रति कठोर कहा जा सकता है और बनार्ड पहले तो उसकी कार्य प्रणाली के बारे में स्पष्ट नहीं था किन्तु वे इस बारे में पूर्णतया स्पष्ट हैं कि उसका कार्य न्याय सगत था।

वे यह निश्चित रूप से घोषित करते हैं कि कोई भी यहाँ तक कि राजा भी चर्च एवं पोप के धार्मिक अधिकार-क्षेत्र में मुक्त नहीं है तथा वे उनके लिए अनेक तथाकथित

दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं। वे प्रायः स्पष्ट शब्दों में यह तर्क प्रस्तुत नहीं करते कि धर्म बहिष्कृत करने के अधिकार में पदच्युत करने का अधिकार अनिवार्य रूप से निहित था किन्तु इसे कतिपय तथाकथित दृष्टान्तों पर आधारित मानते प्रतीत होते हैं विशेषतः पोप जकरियास द्वारा अन्तिम मेरोविंजियन सम्राट चिल्पेरिक को पदच्युत करने के अभिकथित कार्य पर। यह सम्भव है कि हम इन मतों के मूल आधार के निकट वर्नाल्ड के ग्रन्थ Liber Canonum contra Heinricum Quartum के इस तर्क द्वारा पहुँच सकें कि एक धर्म बहिष्कृत व्यक्ति के प्रति की गई निष्ठा की शपथ मान्य नहीं हो सकती। वास्तव में यह स्पष्ट है कि सामान्यतः स्वीकृत यह सिद्धान्त भी कि निष्ठावान व्यक्तियों को धर्म बहिष्कृत व्यक्तियों से कोई व्यवहार नहीं रखना चाहिए धर्म बहिष्कृत राजा की स्थिति को बहुत कठिन बना देता है।

हेनरी चतुर्थ के समर्थकों ने इन मान्यताओं का उत्तर अनेक प्रकार से दिया। पहले वेनरिच ने यह माना कि धर्म बहिष्कार का दण्ड अनिवार्य रूप से न्याय संगत नहीं था तथा एक अन्याय पूर्ण दण्ड प्रदान करने में प्रभावहीन था। दूसरे इस आलोचना को और भी आगे ले गए तथा ऐतिहासिक मामलों की परीक्षा की। आसनाबर्ग के विडो ने यद्यपि यह नहीं कहा कि पोपों को राजा को धर्म-बहिष्कृत करने का अधिकार नहीं है किन्तु वह इसे अस्वीकार करता है कि ऐसा पहले कभी किया गया है तथा यह किसी मनुष्य के भय के कारण नहीं अपितु इसलिए कि उन्होंने देखा था कि इससे मनुष्य की आत्मोन्नति नहीं होगी तथा गम्भीर दोष उत्पन्न हो जायेंगे। डी यूनीटेट (D Unitate) का लेखक यद्यपि इसे अस्वीकार नहीं करता कि सन्त एम्ब्रोस द्वारा थियोडोसियस को चर्च की धर्म सभा से बहिष्कृत कर दिया गया था किन्तु वह पर्याप्त ऐतिहासिक तीक्ष्ण बुद्धि से इस वक्तव्य की परीक्षा करता है कि पोप इनोसेण्ट द्वारा सम्राट आर्केडियस को धर्म बहिष्कृत किया गया। वास्तव में धर्म बहिष्कार में पदच्युति के अधिकार को निहित मानने वाली मान्यता के विरुद्ध तथा उसके समर्थन में विद्यमान अधिकाधिक दृष्टान्तों के विरुद्ध की जाने वाली आलोचना सबसे महत्त्वपूर्ण है। वेनेरिच यह कहता है कि यदि मान भी लिया जाए कि हेनरी वैसा ही था जैसा ग्रेगोरी ने उस पर आरोप लगाया है तो भी पोप को उसकी प्रजा को निष्ठा की शपथ से मुक्त करने का कोई अधिकार नहीं था तथा यह बात पहले नहीं सुनी गयी कि पोप एक राजा को अपने पूर्वजों की गद्दी से उतरने की आज्ञा दे। ओसनाबर्ग के विडो की मान्यता है कि हेनरी का धर्म बहिष्कार न्यायसंगत तथा वैधानिक भी हो तो भी इससे ग्रेगोरी को हेनरी की प्रजा को शपथ से मुक्त करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता। डी यूनीटेट का लेखक इस विषय पर विचार पोपों द्वारा चिल्पेरिक की अभिकथित पदच्युति की सावधानी से आलोचना करते हुए तथा महत्त्वपूर्ण उदाहरण देकर इस तथ्य पर बल देने हेतु करता है कि एक सम्राट चर्च से पृथक् कर दिया जाए इसको इसका पर्याप्त कारण नहीं माना गया था कि उसकी राजनीतिक सत्ता पर भी आक्रमण किया जाए।

जैसा हम कह चुके हैं कि इसी ग्रन्थ में हमें उन प्रश्नों के स्वरूप की व्यापकतम परिकल्पना मिलती है जिन्हें इस महान् संघर्ष ने जन्म दिया था। लेखक के दृष्टिकोण से है

विवादास्पद प्रश्न वास्तव म दोनो सत्ताओ की स्वतत्रता का प्रश्न था । यह बहुत महत्वपूर्ण है कि वह बहुत जोर देकर तथा अन्तर्दृष्टि के साथ ईसा द्वारा स्वय दोनो सत्ताओं की विभिन्नता के जिलेशियन सिद्धान्त को दोहराता है तथा बलपूर्वक कहता है कि इस प्रकार के दोष एव अपराध हो सकते हैं जिनका कि निर्णय चर्च नही कर सकता क्योकि चर्च के पास एक ही अर्थात् आत्मा की ही तलवार है । तथापि यह ध्यान रखना चाहिए कि वह ग्रेगोरी के समर्थको की इस मान्यता का उत्तर नहीं दे सका कि सघर्ष प्राथमिक रूप से हेनरी तथा उसके बिशपो के द्वारा रोम के धर्मपीठ की स्वतत्रता मे अत सम्पूर्ण चर्च की स्वतत्रता म हस्तक्षेप करने से उत्पन्न हुआ ।

अत म यह उल्लेखनीय है कि ग्रेगोरी के पक्ष का प्रतिपादन करने वाले किसी भी लेखक ने यह दावा नही किया कि चर्च या रोम के पोप को लौकिक विषयो मे सामान्य अधिकार प्राप्त है । पसाऊ के बिशप आल्तमान को ग्रेगोरी सप्तम द्वारा लिखे गए पत्र मे प्रयुक्त कुछ वाक्याशो के तथा 1080 ई० मे रोम की परिषद् म उसकी घोषणा के भी अनुरूप इनमे कुछ नही है ।[88]

सन्दर्भ

1 B rn ld D-ma at n Schism t co um p II (p 29)
2 Id d Ep III (p 50)
3 Id d (p 52)
4 Gebeha d Sal sburgens s Arch epi c pi Ep stola d Herr m n m Mette sem Ep s opum
5 Id d 9–11
6 Id id 15 16
7 Id id 17 23
8 Id id 31
9 Id id 32.
10 Id id d
11 Id d 34–36
12 We ch of T er Epist I 1 9
13 Id d 1 3
14 Id d 3
15 Id id 4
16 Cf pp 81 82
17 Id d 8
18 Pet C Def ns o H Reg s 1
19 Id d 3
20 Id d 4
21 Id d 7
22. Id id, 4
23 Id d 7 8
24 Cf ol Part I c 7
25 D ta cu usd m de d sc rd a Papae et R gis (p 456)
26 Id (458)
27 Id
28 W do O nab rge s s L ber de Con overs H ldeb andi et He nrici (p 462)
29 Id d (p 463)
30 Id d pp 464–466
31 Id d (p 466)
32 Id d (p 467)
33 Id id p 468
34 Id d (p 469)
35 Id d (p 470)
36 Cf p 212
37 L be Canonum co tra H n cum Quartum v
38 Id x
39 Id Cf vol p 122
40 Id xx xxv
41 Id xv xx v
42 Id x
43 Cf ol i pp 160–169

44 M g Id Ad Gebehard m 1 [illegible]
45 Id id 15-23 67 77
46 Id Id 25-28
47 Id id 29-45 47-49
48 Id id 57 58
49 Id id 50-66
50 Cf pp 86-90
51 Id id 25-28
52 Id id 29
53 Id Id 29 30
54 Id d 31-41
55 Id id 47-49 Cf ol pp 163 166
56 II I o Ad Amicum (p 603)
57 Id id v i (p 611)
58 A Im s L ce s s Libe C tra W bertum (p 52)
59 See p 212
60 Bernald Ap l geticae Rat ones Lib II pp 95-99 Cf L b vi a d
61 Be Id L bell s x i De Solu ti n jurame torum
62. W d f F rara De Seismate H l d brand l 1 2
63 Id id 1 3
64 Id id I 4-6
65 Id Id i 7
66 Id id 18 15 16
67 Id id 9 10-14 17 [illegible]
68 Id Id 1 19
69 Id Id I 0
70 Id id i 20
71 Id id II (pp 551 553).
72 Id Id i (pp 554-563)
73 Id id i (p 563)
74 भाग 2 अध्याय 3
75 Id Id (p 566)
76 De U tate Eccles e Co serva d 2
77 Id i 8
78 Id i 9
79 Id i 3
80 Id i 15
81 Cf pp 201 209
82 Cf v I p 120
83 Id 7
84 Id 21
85 Cf p 41
86 Cf pp 201 208

तृतीय अध्याय

ग्रेगोरी सप्तम के कार्यों तथा दावो का विवेचन (2)

हम ग्रेगोरी सप्तम के देहावसान के पश्चात् ऐतिहासिक घटनाओं की परम्परा का विस्तार पूर्वक अनुसरण नही करना चाहते। हम उसके पोप पद से कार्यकाल के विषय में चर्चा करने को इसलिए विवश हो गए थे क्योंकि उसके राजनीतिक सत्ता के दावे का विकास उस युग की वास्तविक परिस्थितियो से बहुत अधिक जुड़ा हुआ था। ग्रेगोरी का देहावसान 25 मई 1085 ई० को सालेरनो मे हुआ तथा अगले वर्ष 24 मई को मौंटेकैसीनो (Monte Casino) का मठाधीश डैसी रियस (Desiderius) उसके स्थान पर विक्टर तृतीय के रूप मे चुना गया। यह सुझाव दिया गया है कि वह हेनरी चतुर्थ से किसी प्रकार का समझौता करने को उत्सुक था।[1] हमें इसमें संदेह है कि इसके लिए पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं किन्तु यह उल्लेखनीय है कि जब उसने अगस्त 1087 ई० में बेनवेन्टम (Beneventum) की परिषद् में विरोधी पोप ग्यूबर्ट का तथा किसी भी बिशप या मठाधीश जिसने लौकिक सत्ता से प्रतिष्ठापन प्राप्त किया हो और उन सभी सम्राटों राजाओं और ड्यूकों का जिन्होंने प्रतिष्ठापन करने की धृष्टता की हो हेनरी चतुर्थ का कोई प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं है तथा उसको पदच्युत करने का भी कोई वर्णन नहीं है। विक्टर के चाहे जो भी मध्यस्थतावादी प्रवृत्तियाँ अथवा अभिप्राय रहे हो उनका कोई परिणाम निकलने से पूर्व ही सितम्बर 1087 ई० में उसका देहावसान हो गया।

पुनः पर्याप्त समय के उपरान्त उसके उत्तराधिकारी का निर्णय हुआ। मार्च 1088 ई० तक ओस्टिया (Ostia) का बिशप ओडो अर्बन द्वितीय के रूप में निर्वाचित एवं अभिषिक्त नहीं हुआ। वह क्लूनी के मठ का भिक्षु तथा एक फ्रांसीसी था जिसे ग्रेगोरी सप्तम द्वारा रोम लाकर कार्डीनल पद पर नियुक्त किया गया था तथा वह उसका सबसे कट्टर समर्थक रहा था। अपनी नीति सम्बन्धी पहली घोषणा में ही वह सम्पूर्ण रूप से ग्रेगोरी सप्तम की नीति को ही बनाए रखने को कृतनिश्चय प्रतीत हुआ। उसके निर्वाचन के एक दिन बाद

ही 13 मार्च 1888 ई० को उसने जर्मनी के पोप समर्थक बिशपों एवं अन्य व्यक्तियों को पत्र लिखा उसने अपने निर्वाचन की घोषणा की तथा उन्हें विश्वास दिलाया कि उसकी इच्छा सभी बातों में ग्रेगोरी के पद चिह्नों पर चलने की है जिसकी ग्रेगोरी निंदा करता था उसकी निंदा जिसे वह समर्थन देता था उसका समर्थन जिसकी वह अनुमति देता था उसकी अनुमति तथा इस प्रकार सभी विषयों में वैसा ही सोचना था जैसे ग्रेगोरी सोचता था। अतः उसने उनको पौरुषपूर्वक ईश्वर के युद्ध में उसके योद्धा के समान दृढ़ता से डट जाने को प्रोत्साहित किया।[2] अप्रैल 1084 ई० में उसने कान्सटेन्स के गेबहार्ट को जर्मनी में अपना प्रतिनिधि नियुक्त करते हुए पत्र लिखा तथा इसे सूचित किया कि धर्म बहिष्कार के प्रश्न पर अपने सहयोगियों से विचार विनिमय में वह इस निर्णय पर पहुँचा कि पहले विरोधी पोप तथा हेनरी चतुर्थ धर्म बहिष्कृत हो रहें।[3] उसी वर्ष सितम्बर में उसने लौकिक प्रतिष्ठापन के निषेध का पुनर्नवीकरण कर दिया।[4]

जर्मनी की राजनीतिक परिस्थितियाँ फिर अस्त व्यस्त हो गई। 1088 ई० में थुरिंजिया का हर्मन (Herman of Thuringia) मर गया तथा सिंहासन का कोई भी दावेदार गद्दी पर नहीं बैठा था तथा जनता का मन शांतिमय विचारों की ओर उन्मुख हुआ। 1089 ई० में पोप के पक्ष के राजा एकत्रित होकर हेनरी के पास गए तथा यह प्रस्तावित किया कि यदि वह विरोधी पोप ग्यूबर्ट का समर्थन त्याग दे तो वे उसकी अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। बर्नार्ड ने हेनरी को अपने क्रानिकल्स में व्यक्तिगत रूप से इसे स्वीकार करने को उन्मुख प्रदर्शित किया है किन्तु ग्यूबर्ट के समर्थक बिशपों द्वारा उसे इससे विमुख कर दिया गया। समझौता वार्ता 1091 ई० में पुनः प्रारम्भ की गई किन्तु पुनः विफल हो गई।[5] अवसर समाप्त हो चुका था तथा 1093 ई० में कोनार्ड जिसे एक्सला शापल में 1087 ई० में अभिषिक्त किया गया था अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह कर बैठा तथा जर्मनी एवं लोम्बार्डी की सम्पूर्ण राजनीतिक परिस्थिति बदल गई। कई बड़े बड़े लोम्बार्ड नगरों ने बर्नार्ड के अनुसार मिलन क्रेमोना लोदी तथा पियासेन्जा हेनरी के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा बनाया। मिलन के आर्कबिशप ने कोनार्ड का अभिषेक किया तथा दो वर्षों के बाद 1095 ई० में उसने क्रेमोना में अरबन द्वितीय के प्रति निष्ठा की शपथ ली जिसने कि उसका रोमन चर्च के पुत्र के रूप में अभिनन्दन किया। अरबन ने साम्राज्य तथा राजमुकुट प्राप्ति के लिए उसकी सहायता करने का वचन दिया किन्तु सदैव रोमन चर्च तथा लौकिक प्रतिष्ठापन के निषेध के अधिकार को सुरक्षित रखा।[6]

अरबन अब सत्ता के सर्वोच्च शिखर पर था। लोम्बार्डी से वह फ्रांस को गया तथा क्लेरमोण्ट की परिषद् में जो नवम्बर 1095 ई० में हुई उसने धर्मयुद्ध की घोषणा की लौकिक प्रतिष्ठापन के निषेध का पुनर्नवीकरण किया तथा फ्रांस के राजा फिलिप को अपनी पत्नी का परित्याग करने एवं व्यभिचार करने के आरोप में धर्म बहिष्कृत कर दिया।[7] 1099 ई० में जब उसकी मृत्यु हुई तो पोप का पक्ष जर्मनी एवं इटली दोनों स्थानों पर पुनः प्रबल हो गया था।

उसी वर्ष 13 अगस्त को पस्कल द्वितीय का निर्वाचन हुआ तथा 18 जनवरी 1100 ई० को कान्सटेन्स के गेबहार्ट को जिसे अभी भी जर्मनी में पोप का प्रतिनिधि

वनाए रखा गया था जिसने हुए उसने विश्वास दिलाया कि यह अफवाह कि वह हेनरी चतुर्थ तथा उसके अनुयायियों को कोई छूट देने वाला है झूठी है।[8] सितम्बर 1100 ई० में रवन्ना के ग्यूबर्ट की जो कि विरोधी पोप था मृत्यु हो गई तथा हेनरी चतुर्थ एवं पोप में समझौते की ओर प्रगति हुई किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला तथा जनवरी 1102 ई० में हम पस्कल द्वितीय को फ्लण्डर्स के काउण्ट को हेनरी पर तथा जो उसका प्रत्येक प्रकार से समर्थन करते हैं उन पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित करते हुए और उन्हें यह विश्वास दिलाते हुए पाते हैं कि ईश्वर की इससे बढ़कर श्रेष्ठ कोई भी सेवा नहीं है।[9] मार्च 1102 ई० में रोम की परिषद् में पस्कल ने हेनरी चतुर्थ के धर्म बहिष्कार का पुनर्स्वीकरण किया। उसने हृदय से लौकिक प्रतिष्ठापन के निषेध का प्रतिपादन किया जैसा कि हम एन्सलम तथा इंग्लैण्ड के हेनरी प्रथम से उसके पत्र व्यवहार में पाते हैं।[10] तथा एक पत्र में उसने पादरियों द्वारा अयाजकों को सम्मान प्रदान करने का निषेध किया।[11] 1104 ई० में उसने बवेरिया तथा स्वालिया के कैथोलिकों में पुनः आग्रहपूर्वक कहा कि हेनरी चतुर्थ धर्म बहिष्कृत था।

1104 ई० के उत्तरार्द्ध तथा 1105 ई० के पूर्वार्द्ध में हेनरी चतुर्थ के विरुद्ध एक नया विद्रोह फूट पड़ा। उसके ज्येष्ठ पुत्र कोनार्ड की 1100 ई० में मृत्यु हो गई थी किन्तु अब उसके छोटे पुत्र हेनरी ने उसके विरुद्ध एक अधिक खतरनाक विद्रोह को संगठित किया। पस्कल से उसने अपने पिता के प्रति निष्ठा की शपथ से अपने को मुक्त करने का अनुरोध किया। पस्कल ने उसे आशीर्वाद देकर इस शर्त पर शपथ से मुक्त कर दिया कि वह चर्च से व्यवहार में न्याय का आश्रय लेने की प्रतिज्ञा करे।[1] मई में हेनरी ने नार्डहौसेन (Nordhausen) में एक परिषद् बुलाई जिसमें रोम के प्रति पूर्ण सम्मान की घोषणा की किन्तु जैसा एकहार्ड के विवरण से स्पष्ट है कोई निश्चित प्रतिज्ञा नहीं की गई।[14] उसी वर्ष नवम्बर में पस्कल ने मेन्ज के आर्चबिशप को लिखे गए पत्र में पुनः नई परिस्थितियों के सन्दर्भ में अपने द्वारा समर्थित सिद्धान्तों को दोहराया। उसने यह कहने की सावधानी रखी कि उसकी इच्छा है कि राजा उन सभी अधिकारों का उपभोग करे जो न्यायसंगत रूप से उसके हैं तथा उसको यथाकार किया कि उसकी किसी भी प्रकार से इन्हें कम करने की इच्छा है किन्तु दूसरी ओर चर्च को भी अपनी स्वतन्त्रता का उपभोग करने को स्वतन्त्र होना चाहिए। उसने चर्च के रक्षक के रूप में राजा के स्थान को तथा चर्च से परिरक्षण प्राप्त करने के उसके अधिकार को मान्यता दी किन्तु मुद्रा एवं दण्ड अर्थात् प्रतिष्ठापन से उसके किसी भी प्रकार के सम्बन्ध को स्वीकार नहीं किया तथा इस शर्त पर शान्ति स्थापित करने के लिए अपनी व्यग्रता व्यक्त की कि राजा और पादरी एक दूसरे के अधिकारों को मान्यता दें।[15]

31 दिसम्बर 1105 ई० को हेनरी चतुर्थ उसके पुत्र तथा लौकिक एवं धार्मिक राजाओं द्वारा राज्य एवं साम्राज्य से त्यागपत्र देने को विवश कर दिया गया। परन्तु अगले वर्ष ही उसने अपने त्याग का खण्डन किया तथा उसे पर्याप्त समर्थन भी मिला किन्तु 7 अगस्त को उसकी मृत्यु हो गई। हम 1122 ई० में वार्म्स के समझौते में पोप पद एवं साम्राज्य के सम्बन्धों पर इस खण्ड के पहले भाग में विचार कर चुके हैं तथा उसे

दोहराने की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है।

पिछले अध्याय में हमने विवाद के प्रमुख लक्षणों को निश्चित करने का प्रयास किया था जो कि ग्रेगोरी सप्तम तथा हेनरी चतुर्थ के महान् संघर्ष के कारण तत्काल उदय हुए थे। अब हम इस विवाद के उत्तरकालीन विकास का उन लेखों में विचार करते हैं जो इस संघर्ष से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं और साथ ही ग्रेगोरी के मृत्योपरान्त वर्षों के इतिहास में भी जिनका हम अभी संक्षेप में वर्णन कर चुके हैं। निसन्देह इन लेखों तथा पहले के लेखों के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा खींचना असम्भव है किन्तु हम सोचते हैं कि इनमें कुछ अन्तर अवश्य है। अब तक जिस साहित्य का हम विचार कर चुके हैं वह 1076 ई० से 1093 ई० तक का है जिस पर अब हम विचार करेंगे वह 1097 ई० से लेकर 1125 ई० तक का है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस काल में भी संघर्ष अत्यन्त तीव्र था साम्राज्य तथा पोप-पद में जबतक हेनरी चतुर्थ जीवित था कोई समझौता नहीं हो सका था तथा 1106 ई० में उसकी मृत्यु के बाद भी कुछ वर्षों की तुलनात्मक शांति के बाद संघर्ष पुनः छिड़ गया। तथापि हमारे विचार से यह कहना उचित होगा कि इन ग्रन्थों के स्वरूप में कुछ अन्तर है यह आवश्यक नहीं कि दोनों पक्षों में से किसी के दावों में कोई कमी हो—जिस पर अभी हम विचार करना पड़ेगा—किन्तु यह संघर्ष वास्तविक परिस्थिति के बारे में ही नहीं वरन् सामान्य सिद्धान्तों के बारे में भी है। यद्यपि कभी कभी विवादकर्ता अत्यन्त चरम स्थिति का आग्रह करते हैं तथापि कभी उनमें दूसरे पक्ष की मान्यताओं के महत्त्व को स्वीकार करने तथा उसके मूल्यांकन करने का भी प्रयत्न देखा जा सकता है।

इनमें से पहली रचना जिस पर हम विचार करेंगे कार्डिनल ड्यूसडेडिट की लाइबेलस कोन्ट्रा इन्वसोरस एट साइमोनियेकोस (Libellus contra invasores et Symoniacos) है जिसका समय 1097 ई० से पूर्व नहीं है। वह ग्रेगोरी सप्तम का उसके सर्वप्रथम 1098 ई० में उत्थान से ही प्रबल एवं निरन्तर समर्थक था। हम प्रतिष्ठापन विवाद के सम्बन्ध में उसकी इस रचना का पहले ही उल्लेख कर चुके हैं। इस समय हम लौकिक तथा धार्मिक सत्ता के स्वरूप एवं उनके पारस्परिक सम्बन्धों को प्रदर्शित करने के लिए ड्यूसडेडिट की स्थिति का वर्णन करेंगे।

अपने ग्रन्थ की भूमिका में मुख्य विषयों की अवधारणा करने के पश्चात् वह कहता है कि उसका उद्देश्य राजकीय सत्ता के गौरव को कम करना नहीं है क्योंकि उसका भी वैसा ही स्थान है जैसा कि धार्मिक सत्ता का। पुरोहित शब्द की तलवार का उपयोग करता है जबकि राजा के हाथ में भौतिक तलवार है दोनों को एक दूसरे की आवश्यकता है तथा दोनों में से किसी को भी दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।[16] यह शब्द उल्लेखनीय है विशेषतया यह मान्यता कि चर्च केवल एक ही तलवार का उपयोग करता है तथा लौकिक सत्ता के विशिष्ट स्थान की निस्सकोच स्वीकृति। 1087 ई० में अपने द्वारा प्रस्तुत धर्म विधानों के ग्रन्थ में ड्यूसडेडिट ने अनेक प्रामाणिक मतों को उद्धृत किया है जो लौकिक सत्ता की दैवी उत्पत्ति तथा ईश्वरीय न्याय के अधिकारी के रूप में उसके कार्यों का समर्थन करते हैं।[17]

तथापि ग्रन्थ के तीसरे भाग में ह्यू सडेडिट ने जो मान्यता प्रकट की है उसकी इससे सगति बठाना अत्यन्त कठिन है। वह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न अर्थात् पादरी के लौकिक न्यायालय के कार्यक्षेत्र से मुक्ति पर विचार कर रहा है। हमने एक दूसरे खण्ड में इस प्रश्न के शास्त्रीय विवाद पर विचार किया है।[18] यहाँ हमारा प्रयोजन केवल उन कुछ निरीक्षणों से है जो कि इस विषय पर धार्मिक एवं लौकिक कानूनों के संघर्ष के बारे ह्यू सडेडिट ने व्यक्त किए हैं। वह मानता है कि विवाद की दशा में लौकिक कानून परित्याज्य है तथा घोषित करता है कि धार्मिक सत्ता (Sacredotium) को कानून निर्माण में प्राथमिकता प्राप्त है क्योंकि ईश्वर ने राजाओं के द्वारा पादरियों को कानून प्रदान नहीं किए अपितु पादरियों द्वारा राजाओं को कानून प्रदान किए हैं तथा वह इसके दृष्टान्त मूसा तथा मोसिस एवं प्रीस्टों से उद्धृत करता है। वह कहता है कि धार्मिक सत्ता राजकीय सत्ता से बढ़कर है क्योंकि उसे ईश्वर ने बनाया जबकि राजकीय सत्ता को मनुष्यों ने ईश्वर की स्वीकृति से न कि उसके संकल्प से बनाया है तथा वह सौल (Saul) की नियुक्ति की परिस्थितियों को उद्धृत करके इस सिद्धान्त की पुष्टि करता है।[19] हम तीसरे खण्ड में इस सन्दर्भ के अन्तिम भाग का उसी प्रकार के अन्य वाक्यांशों से सम्बन्ध का अध्ययन कर आए हैं अतः हम उस दोहरान की कोई आवश्यकता नहीं है।[20]

तथापि हम यह ध्यान रखना चाहिए कि सम्पूर्ण वाक्यांश एक दूसरे ही प्रश्न को उठाता है—अर्थात् इस प्रश्न को कि क्या धार्मिक एवं लौकिक कानूनों में विरोध होने पर सभी दशाओं में लौकिक कानून त्याज्य होगा।[1] शास्त्रीय साहित्य में जहाँ तक इस प्रश्न का विमर्श किया गया है उस पर हम एक अन्य खण्ड में विचार कर चुके हैं अतः हम इसके सामान्य महत्त्व पर पुनः विचार नहीं करेंगे। ह्यू सडेडिट की स्थिति के अर्थ के विषय में हम क्या निष्कर्ष निकाल सकते हैं? जैसा कि हम अभी देख चुके हैं ह्यू सडेडिट अपने ग्रन्थ में स्पष्टतया लौकिक तथा धार्मिक प्रत्येक सत्ता के विशिष्ट स्थान एवं महत्त्व को स्वीकार करता है तथा सिद्धान्तों के संग्रह (Collectio Con num) में उसने उन अधिकारियों का मत प्रस्तुत किया है जो कि यह मानते है कि लौकिक सत्ता का उच्च तथा अधिकार दैवी हैं। क्या हम यह मान ले कि प्रतिम वाक्यांश द्वारा वह इन सिद्धान्तो का खण्डन करना चाहता है और यह सिद्ध करना चाहता है कि लौकिक सत्ता का कोई निश्चय स्वरूप नहीं है तथा धार्मिक सत्ता को उसके अपने क्षेत्र में भी तथा उसके वास्तविक कार्यों के विषय में भी उसकी अवहेलना का अधिकार प्राप्त है। यह हमें पूर्णतया असम्भावनीय प्रतीत होता है तथा हम यह सुझाव देंगे कि इस प्रकार के मध्ययुगीन लेखकों के पृथक् पृथक् वाक्यों की व्याख्या करते समय अभिन्न सावधानी बरतने की आवश्यकता का यह एक श्रेष्ठ उदाहरण है। ह्यू सडेडिट का अन्य स्थलों की भाँति यहाँ भी प्रयोजन धार्मिक सत्ता एवं उसके कानूनों की पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रतिपादन है[2] तथा वह इस पर बल देता है कि लौकिक सत्ता की तुलना में उसे एक प्रकार की प्राथमिकता प्राप्त है किन्तु इसका अर्थ यह कहना नहीं है कि धार्मिक कानून लौकिक कानूनों के क्षेत्रान्तर्गत भी उनका अतिलंघन कर सकता है।

जनवरी 1103 में पोप पस्कल द्वितीय ने फ्लैण्डर्स के काउण्ट को लीज के पादरियो

पर जिन्हें उसने हेनरी चतुर्थ से सम्बन्धों के कारण धर्म बहिष्कृत किया था आक्रमण करने के लिए प्रेरित करते हुए पत्र लिखा तथा नेम्बरा[5] के विरुद्ध उसके जारनार उत्य की सराहना की। लीज के पादरियों की प्रेरणा से गेम्बलो (Gembloux) के एक भिक्षु सीजबट ने लीज के चर्च के नाम से सभी शुभ-संकल्प वाले व्यक्तियों को सम्बोधित करते हुए एक पत्र लिखा जिसमें पोप के इस पत्र का विरोध किया।[3]

सीजबट का पत्र अधिकांशतः किसी भी नए सिद्धान्त का प्रतिनिधित्व नहीं करता किन्तु वह उन व्यक्तियों की स्थिति को अद्वितीय बलपूर्वक प्रस्तुत करता है जिन्होंने हेनरी चतुर्थ के प्रति निष्ठा का त्याग करना अस्वीकार कर दिया था और यह विवादित प्रश्नों के सैद्धान्तिक पक्ष पर ही निर्णय अभिव्यक्त नहीं करता किन्तु समय के वास्तविक परिणामों के स्पष्ट बोध की भी अभिव्यक्ति करता है। वास्तव में यही तथ्य इस रचना को विशेष महत्त्व प्रदान करता है। सीजबट इस सन्देह को उठाता है कि क्या राजा को धर्म बहिष्कृत किया जा सकता है वह कहता है कि मामला अभी भी न्यायाधीन है।[4] किन्तु वह इसके विषय में निश्चित है कि चाहे राजा धर्म बहिष्कृत हो अथवा नहीं उसके प्रति निष्ठा की शपथ अनिवार्य पालनीय है तथा वह कटु अभियोग लगाता है कि पोप द्वारा लीज की जनता को इसी कारण धर्म बहिष्कृत माना गया है कि वे उस बिशप के अनुयायी हैं जो हेनरी के प्रति निष्ठा की शपथ का सम्मान कर रहा है।[25] वह प्रतिपादन करता है कि राजा चाहे कितना ही बुरा हो उसकी आज्ञा पालनीय हैं चाहे हेनरी वैसा ही हो जैसा कि उसके शत्रुओं ने बताया है तो भी ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए न कि उसके विरुद्ध शस्त्र ग्रहण करना चाहिए तथा उसने बलपूर्वक कहा कि वे शासक जिनकी आज्ञा पालन करने की सन्त पाल ने मनुष्यों को आज्ञा दी थी ईसाई भी नहीं थे। पोप को इस उदाहरण का अनुकरण करना चाहिए तथा चाहे राजा कितना ही बड़ा पापी हो उनके लिए प्रार्थना करनी चाहिए ताकि मनुष्य शान्तिपूर्वक एवं स्थिर जीवन बिता सकें उसे उसके विरुद्ध युद्ध छेड़कर मनुष्यों को शान्ति एवं स्थिरता का उपभोग करने में बाधा नहीं डालनी चाहिए।[6]

पुनः सीजबट मर्म गम्भीर ■ दुःख व्यक्त करता है कि हेनरी को न्यायोचित कारणों से धर्म बहिष्कृत किया गया है और पोप के उसके प्रति दृष्टिकोण में अतर्कसंगत भावना के दर्शन पाता है तथा पोप को ग्रेगोरी महान् की चेतावनी का स्मरण दिलाता है कि जो व्यक्ति अकारण ही तथा स्वेच्छया बाँधने व मुक्त करने की सत्ता का उपयोग करता है वह उससे वंचित हो जाता है। धर्म बहिष्कार के अन्यायपूर्ण दण्ड को ईश्वर स्वयं समाप्त कर सकता है।[7] वह पश्चल को यह स्मरण दिलाता है कि पोप सिल्वेस्टर से लेकर हिल्डेब्राण्ड तक किन अनुचित उपायों का अवलम्बन लेकर बहुधा मनुष्य पोप पद तक पहुँचे हैं वह उसे यह भी याद दिलाता है कि प्रायः सम्राटों का ही यह कार्य रहा है कि वे इसका प्रतिकार करें तथा बुरे पोपों की निन्दा एवं उनकी पदच्युति करें। पोपों को गम्भीर तथा प्रकट दोषों के कारण भर्त्सना एवं संशोधन के लिए उसी प्रकार प्रस्तुत रहना चाहिए जैसे कि पीटर ने पाल के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया था। जो भर्त्सना एवं संशोधन के लिए अपने को प्रस्तुत नहीं करता है वह झूठा बिशप है।[28] ये मान्यताएँ बलपूर्वक प्रकट

की गई हैं तथा यह उल्लेखनीय है कि य एस प्रक्ति के द्वारा यत्त की गई है जो पस्कल द्वितीय को पार मानता है तथा रोमन धर्मासन क सर्वोच्च स्थान एव सत्ता को स्वीकार करता है ।[9]

तथापि उसके ग्रथ का सबन महत्त्वपूर्ण पक्ष पोप द्वारा बल प्रयोग के ग्राग्रह की नीति का सशक्त विरोध है । व पस्कन न्तितीय क पन्डस क काउण्ट का सम्बोधित पत्र क शान्ग को उद्धत करता न जिमम उसन कम्ब्रा् पर आक्रमण करने क लिए दी गई उसकी ग्राज्ञा क पालन की प्रगस की है तथा उसमे नीज क धम मे फट डालने वाने पादरी तथा हेनरी क सभी समर्थकों पर आक्रमण करने का ग्रनुरोध किया है । सीजबट ग्रपना भय प्रकट करता है कि पोप कम्ब्रा के विनाश का दायि व ग्रपने पर न रहा है जिसम दायी एव निरपराध व्यक्तियों की एक हा साथ हत्या हुई है यदि पस्कन्त स्वय यह स्वीकार नही करता तो उसे कभी विश्वास नही होना कि एसी यातो को पोप क धर्मासन की सत्ता से लिया गया है । वह टूप क मार्टिन क ग्राचरण म इसका विरोध दिखलाता है जिसन बिशप इटेचियस (Itachius) से पत्र व्यवहार — कर लिया था क्योंकि वह धमद्रोह क लिए प्रिस्कीलियन (Priscillian) की ह या का दोषी था ।[30] इस क मार्टिन का यह उ लेख तथा उसक द्वारा धम शाहियों क वध की निन्दा ब त रोचक है । ग्राशिक रूप से इसका कारण यह हो सकता है नीज क बिशप बजा के भी यही विचार बताए जात हैं उसन भी धम द्रोहियो क विरुद्ध हिंसा के प्रयोग की नि न्दा की है ।[31] वास्तव म हम यह नहीं मानना चाहिए कि सीजबट के निष्कष वही थे जो कि हम उसकी मान्यताग्रो म निहित मानत हैं सम्भवत उसका एक सामान्य सिद्धात प्र तुत करने का विचार नहीं था किन्तु वास्तव म पोप क मनुष्यो और स्त्रियों की हत्या क प्रत्य त कारण के रूप म वह ग्रपनी व दूसरो की वास्तविक प्रतिक्रिया का वणन कर रहा है । किन्तु यह एक बात के ग्रध्याय म मूल प्रश्न पर जाना है कि पोप को अपनी ही प्रजाग्रो क विरुद्ध तलवार खीचने का ग्रधिकार कहाँ स प्राप्त हुग्रा । ईश्वर को ईश्वर का मन्दिर बनाने योग्य इसलिए नहीं समझा गया था कि वह एक रक्तपात करन वाला मनुष्य था ग्रब उच्च पादरी (पोप) पवित्रों के पवित्र स्थान (रोमन चच) म ईसा क रक्त का ग्रपन ग्राप को तथा दूसरो को समर्पित करने क लिए रक्त रंजित वस्त्रो म कस प्रवश कर सकता ? ग्रेगोरी महान् स लकर हिल्डेब्राण्ड तक किसी पोप न ग्राध्यात्मिक तलवार स भिन्न दूसरी तलवार का उपयोग नहीं किया था ग्रौर न ही युद्ध की तलवार का प्रयोग सम्राट के विरुद्ध किया था ।[3]

सीजबट क तर्कों म ग्रनक नवीन नहीं है किन्तु उसके पत्र म हम नम्ब सघष तथा परिणामस्वरूप रक्तपात एव विनाश क प्रति उसकी बढ़ती हुई भय की भावना की ग्रनुभूति प्रतीत होती है ।

लगभग उसी समय जबकि सीजब्ट न शुभ सकल्पा वाले सभी यक्तियो को सम्बोधित ग्रपना पत्र लिखा था पयूरी के ह्य ज न राजकीय सत्ता एव पौरोहित्य की गरिमा पर एक ग्रथ लिख कर हेनरी प्रथम को समर्पित किया ।[33] इस यथाथ कारण को ढूढ सकना सभव नही प्रतीत होता जिसन इस समपण का निश्चित किया । निस्सन्देह इसक भी प्रतिष्ठापन क प्रश्न पर मध्य से ग्रछूता नहीं र कि तु यद्यपि वह प्र र स्पष्ट वणन करता है तथापि

यह रचना अभी तक वर्णन किए गए ग्रंथों की तुलना में एक औपचारिक राजनीतिक कृति के रूप में अधिक प्रतीत होती है।

लेखक ग्रंथ की भूमिका में अपना उद्देश्य बताता है : उसका प्रयोजन राजकीय एवं धार्मिक अधिकारियों के सम्बन्धों के विषय में भयंकर संघर्ष का कोई समाधान करना उन व्यक्तियों की गलती का संशोधन करना जो कि इन दोनों सत्ताओं को एक दूसरे के विरुद्ध मानते हैं और यह प्रतिपादित करते हैं कि राजकीय सत्ता ईश्वर द्वारा नहीं मनुष्य द्वारा स्थापित है—यह सम्मति उसके अनुसार व्यापक रूप से अति प्रचलित है।

अत वह ग्रेगोरी सप्तम द्वारा मेट्ज के हर्मन को लौकिक सत्ता के उद्भव के विषय में 1080 ई० में लिखे गए पत्र के विधिवत् खण्डन से प्रारम्भ करता है[34] तथा तर्क देता है कि उसमें अभिव्यक्त मान्यताएं पूर्णतया असत्य हैं। वह स्वयं न केवल सत पाल के इन शब्दों से ही सिद्ध करता है कि ईश्वर के अतिरिक्त कोई शक्ति नहीं तथा जो भी शक्तियाँ हैं वे ईश्वर द्वारा प्रदत्त हैं वरन् संसार में मनुष्यों के तथा शरीर के ऊपर मस्तिष्क के शासन के दृष्टान्त से भी इसे सिद्ध करता है तथा वह प्रतिपादित करता है कि ईश्वर ने धरती एवं स्वर्ग दोनों ही स्थानों पर सत्ताओं की एक श्रेणी बनायी है।[35] दो सत्ताएं हैं अर्थात् राजकीय एवं धार्मिक जिनके द्वारा चर्च का वर्तमान जीवन नियंत्रित होता है ये दोनों पावन हैं तथा उनको एक दूसरे के विरुद्ध न होकर कार्य करना चाहिए।[36]

तथापि इस ग्रंथ का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष दोनों सत्ताओं के पारस्परिक सम्बन्धों की तुलनात्मक स्थितियों के तथा प्रत्येक की दूसरे पक्ष के अधिकारियों पर अधिकार के विवरणों में है। वह प्रारम्भ में ही उनकी सापेक्ष स्थितियों का वर्णन ईश्वरत्व के अन्तर्गत पिता व पुत्र के सम्बन्धों की तुलना की शब्दावली में प्रस्तुत करता है। वह कहता है कि राजा अपने राज्य के शरीर में पिता के प्रतिरूप को धारण करता है तथा बिशप ईसा के प्रतिरूप को। आज न इस तुलना से वास्तव में क्या समझा था स्पष्ट नहीं है यह कल्पना की जा सकती है कि यह चतुर्थ शताब्दी के एम्ब्रोसियस्टर (Ambrosiaster) अथवा आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के कैथलफस (Cathulfus) की शब्दावली की साहित्यिक संस्कृति है। जैसा हम अभी देखेंगे कि यह अज्ञातनामा लेखक के ग्रन्थ ट्रैक्टेटस इबोरेसेन्सस (Tractatus Eboracenses) में प्रयुक्त कुछ वाक्यांशों से समानान्तर हैं। सम्पूर्ण वाक्यांश का अर्थ तो स्पष्ट नहीं है किन्तु आज उसमें अपना निष्कर्ष यथावत निश्चितता पूर्वक निकाल लेता है। सभी साम्राज्य के बिशप राजा के अधीन हैं जब ईसा (Son) ईश्वर (Fath r) के अधीन स्वभाव से नहीं किन्तु व्यवस्थागत (Ord ne) है जिसमें की सम्पूर्ण साम्राज्य की एक ही उत्पत्ति मानी जा सकती है इसके उदाहरण स्वरूप वह मूसा (Moses) की स्थिति का दृष्टान्त देता है जो कि इस्राइल राष्ट्र में राजा की प्रतिकृति था जबकि आरोन पुरोहित की। उसने साम्राज्य में पुरोहितों के सम्राट के अधीन होने के सिद्धान्त का वर्णन आमुख में पहले से ही दे दिया था तथा एक बाद के अध्याय में वह पुन उसी का वर्णन करता है।[37]

परन्तु राजा एवं पुरोहित के सम्बन्धों का यह एक पक्ष है किन्तु इसका एक दूसरा पक्ष भी है। अन्यत्र जब वह बिशप द्वारा सम्राट के विरुद्ध हथियार उठाने का विरोध करता

है। ह्यूज यह भी कहता है कि विशप अपने पद के गौरव में राजा की तुलना में कहीं बढ़चढ़ कर है जैसे कि धार्मिक पद केवल मात्र लौकिक विषयों से कहीं अधिक श्रेष्ठ है इसलिए यदि विशप को दोषी पाया जाए तो उस पर अभियोग लौकिक न्यायालय में नहीं सामान्य धर्मसभा में चलाया जाए।[38] यदि राजा को विशप पर अधिकार प्राप्त है तो विशप को भी राजा पर अधिकार है। राजा पर धर्म के अनुशासन का अंकुश है उसे विशप की प्रताड़ना पर ध्यान देना चाहिए क्योंकि उनको मनुष्य के लिए स्वर्ग खोलने एवं बन्द करने का अधिकार है और इसलिए यदि आवश्यकता हो तो वे राजाओं को भी धर्म बहिष्कृत कर सकते हैं तथा ह्यूज इस प्रकार के धर्म बहिष्कारों के अनेक दृष्टान्त प्रस्तुत करता है।[39] यह स्पष्ट है कि वे हेनरी चतुर्थ के उन समर्थकों से सहमत नहीं थे जो पोप द्वारा सम्राटों या राजाओं को धर्म बहिष्कृत करने के अधिकार पर सन्देह करते थे अथवा उसे अस्वीकार करते थे। वह बहुत स्पष्टता से यह सिद्ध करता है कि विशप या पोप समस्त लौकिक शासकों पर धार्मिक सत्ता में सम्पन्न हैं ठीक वैसे ही जैसे कि उनको सभी विशपों पर लौकिक अधिकार प्राप्त है।

तथापि वह न केवल सामान्य शब्दों में ही लौकिक शासकों पर धार्मिक शासकों की सत्ता के सिद्धान्त को प्रस्तुत करता है वह यह भी स्पष्ट कर देता है कि उसके मत में उस सत्ता की प्रकृति एवं सीमाएं क्या थीं। विशप को राजा पर धार्मिक अधिकार प्राप्त है किन्तु इन अधिकारों का दुरुपयोग हो सकता है तथा धर्म-बहिष्कार के अधिकार में प्रजाओं को निष्ठा की शपथ से मुक्त करने का अधिकार निहित नहीं है—अर्थात् विशप को राजा को पदच्युत करने का कोई अधिकार नहीं है। कभी कभी ऐसा हुआ है कि विशपों ने अपनी सत्ता का प्रयोग वास्तविक परिस्थितियों की न्यायपूर्ण समीक्षा करके नहीं अपितु भावना के वशीभूत होकर किया है तथा इस प्रकार धर्म बहिष्कार का दुरुपयोग केवल कानून की सत्ता के प्रति घृणा को ही जन्म देता है। कुछ विशपों ने राजाओं की प्रजाओं को निष्ठा की शपथ से मुक्त करना प्रारम्भ कर दिया है किन्तु यह मूर्खता है तथा ईश्वर के विरुद्ध अपमान का कार्य है जिसके नाम पर उनको शपथ दिलाई गई है। यह सत्य है कि कुछ शपथें अन्यायपूर्ण हो सकती हैं जिनका पालन नहीं करना चाहिए किन्तु यह स्पष्ट है कि ह्यूज इनमें किसी मनुष्य द्वारा एक शासक के प्रति ली गई निष्ठा की शपथ को सम्मिलित नहीं करता चाहे वह शासक धर्म बहिष्कृत हो अथवा न हो।[40]

यदि ह्यूज इस मामले में स्पष्ट है कि विशप की सत्ता राजा को पदच्युत करने तक विस्तृत नहीं वह इस पर भी बल देता है कि चाहे वह कितना भी क्रूर एवं अन्यायी क्यों न हो उस उसके विरुद्ध हथियार नहीं उठाने चाहिए।[41] विशप का कार्य राजा एवं जनता के बीच मध्यस्थ होना राजाओं एवं राजकुमारों का उनकी जनता के प्रति क्रोध दूर करना तथा दोनों के कल्याण के लिए रात और दिन प्रार्थना करना है।[4] अतः विशप को राजाओं पर भी धार्मिक सत्ता प्राप्त है किन्तु यह सत्ता धार्मिक मामलों तक ही सीमित है तथा केवल धार्मिक दण्ड द्वारा ही क्रियान्वित की जानी चाहिए। दूसरी ओर जैसा कि हम देख चुके हैं सभी विशप राजा के राज्य में उसके अधीन हैं किन्तु वे लौकिक न्यायालयों के अधीन नहीं यदि उन पर कोई अभियोग लगाया गया है, तो उन पर विचार एवं

मामलों में धर्म सभा में किया जाना चाहिए।

अपने ग्रन्थ के दूसरे भाग में ह्यू ज विशपों की पद नियुक्ति का प्रश्न उठाता है तथा उस पक्ष का जिसमें वह लौकिक सत्ता को उचित स्थान बनाता है समर्थन करता है किन्तु इस विषय का वर्णन हो विवेचन किया जा चुका है।[63] दो विषय जिनका अभी हमने उल्लेख नहीं किया महत्वपूर्ण हैं। प्रथम तो उसके द्वारा इस मान्यता की निन्दा है कि पोप की कोई प्रताड़ना नहीं कर सकता तथा वह यह बताता है कि सन्त पीटर की त्रुटि करने पर सन्त पाल ने भर्त्सना की थी।[64] द्वितीय उसके द्वारा पोप की नियुक्ति में विशेषतया विवादास्पद निर्वाचनों के मामलों में सम्राट के स्थान का विस्तृत वर्णन है तथा वह पोप निकोलस द्वितीय के घोषणा के पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत करता है।[65]

फ्लूरी के ह्यू ज की स्थिति महत्वपूर्ण तथा रोचक है। वह हिल्डब्राण्ड के कार्यों तथा जिन्हें वह उसके सिद्धान्त कहता है कि बहुत स्वच्छन्दता से तथा बलपूर्वक आलोचना करता है किन्तु वह धार्मिक पद के गौरव तथा उसकी राजाओं पर भी सत्ता का समर्थन करने में भी स्पष्ट है।

यहीं पर उस ग्रन्थ के लेखक की विभिन्न मान्यताओं पर विचार करना सर्वोत्तम होगा जिसका शीर्षक ट्रैक्टस इबोरेसेन्सस है।[66] वास्तव में यह कहना कठिन है कि हम उसको क्या महत्व प्रदान करना चाहिए किन्तु यह मानना तर्कसंगत होगा कि फ्लूरी के ह्यू ज के कुछ वाक्य समूहों में तथा उनकी कुछ मान्यताओं में महत्वपूर्ण तथा उल्लेखनीय समानता है। हम अभी देख चुके हैं कि ह्यू ज कहता है कि राजा ईश्वर की प्रतिमूर्ति है तथा बिशप ईसा की तथा इसलिए यह ठीक है कि बिशप सम्राट के साम्राज्य में उसके अधीन रहे। जैसा हम कह चुके हैं कि यह ठीक निर्धारण करना सम्भव नहीं प्रतीत होता कि ह्यू ज इन वाक्यांशों को क्या स्पष्ट महत्व प्रदान करता था तथा ये कितने नवीं शताब्दी के [illegible] तथा चौथी शताब्दी के एम्ब्रोसियेस्टर के अंशों के साहित्यिक संस्मरण हैं।[67] इन वाक्य समूहों में हम राजा तथा विशपों की सापेक्ष स्थिति एवं सत्ता के वर्णन की तुलना करनी चाहिए जो ट्रैक्टस इबोरेसेन्सस के चौथे अंश के लेखक द्वारा किया गया। यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि ग्रन्थ ऐन्सेलम तथा इंगलैंड के राजाओं के बीच प्रतिष्ठापन विवाद के काल की रचना है।

इसकी मान्यता है कि राजा एवं पुरोहित दोनों ही ईश्वर द्वारा अभिषिक्त हैं किन्तु पुरोहित ईसा के मानवीय स्वभाव का प्रतिनिधि है जिसके कारण वह पिता (ईश्वर) से निकृष्ट है जबकि राजा दिव्य स्वभाव का [illegible] है [illegible] ईश्वर का पुत्र है। पुरोहित मरणासन्न ईसा का प्रतिनिधि है तथा अपने आपको ईश्वर की बलि के रूप में समर्पित करता है। राजा यश तथा सम्मान से अभिषिक्त होने वाले तथा अपने स्वर्गीय सिंहासन से सभी सत्ताओं एवं अधिकारों के ऊपर शासन करने वाले ईसा का प्रतिनिधित्व करता है। सन्देशवाहक देवदूत (Angel of Annunciation) ने मरी से कहा ईश्वर उसे उसके पिता डेविड का सिंहासन प्रदान करेगा उसके पिता आरोन का नहीं क्योंकि ईश्वर ने डेविड को पुरोहितों पर भी सत्ता प्रदान की है। अतः यह न्यायसंगत है कि राजा को पुरोहित पर भी अधिकार एवं सत्ता प्राप्त हो।[68]

लेखक यह प्रतिपादित करता है कि मूसा और जोशुआ तथा इजरायल के पाच राजा इसी प्रकार पुरोहितो से श्रेष्ठ थे[49] तथा वह इस मत को पुन दोहराता है कि राजकीय सत्ता पुरोहित की सत्ता से अधिक बड़ी है क्योकि वह ईसा के ... की प्रतिनिधि है जो उसकी मानवता से श्रेष्ठतर है अत उचित ही है कि राजा पुरोहितो पर शासन करे तथा वह उनको पद स्थापित करे।[50] एक प्रकार से राजा का अभिषेक बड़ा होता है जब कि पुरोहित का दूसरे प्रकार से वह अधिक बड़ा है क्योंकि पुरोहित का अभिषेक प्राचीन या प्रेरितो के अनुकरण पर है जबकि राजा का अभिषेक ईसा के अनुसरण पर है जिसे ईश्वर ने उसके अनुयायियो से ऊपर अभिषिक्त किया है[51] इस प्रकार सम्राट से उच्चतर है तथा उसका शासन करता है तथा लेखक ग्रेगोरी महान् के पत्र में कुछ वाक्यांश उद्धृत करता है जो सम्राट के प्रति उसके आज्ञापालन तथा सम्मान को प्रदर्शित करते हैं।[5]

दूसरे वाक्य समूहो में वह दावा करता है कि राजा को चाबियो (Keys) का अधिकार है यद्यपि इससे उसका क्या वास्तविक अभिप्राय था यह कहना बहुत कठिन है[53] तथा वह चर्च की परिषद् को बुलाने तथा उनकी अध्यक्षता करने वाला प्रधान अधिकारी है।[54] वह प्रतिपादित करता है कि राजा को साधारण जनता में से एक नही मानना चाहिए क्योंकि वह ईश्वर का ईसा (Lords Christ) है[55] तथा दूसरे स्थान पर वह लिखता है कि उसे अपराधो को क्षमा करने तथा खीस्त-याग (Mass) में रोटी तथा मदिरा की हवि समर्पित करने का अधिकार है जैसा वास्तव में वह अपने अभिषेक के दिन करता भी है।[56]

इन सब बातो के बाद यह एक तुच्छ बात प्रतीत होती है कि राजा बिशप को उसके पद के दण्ड से प्रतिष्ठापित करने के अधिकार का दावा करे तथा वास्तव में यह उल्लेख है कि वह इसको विशप रूप में स्पष्ट करने का प्रयत्न करता है कि ऐसा करते समय विशप को उसका पद या धार्मिक अधिकार प्रदान नही करता अपितु केवल लौकिक सम्पदा एव चर्च की सरक्षकता तथा ईश्वर के बन्दो को शासन करने की सत्ता प्रदान करता है।[57]

ग्यारहवी तथा बारहवी शताब्दियो में ये मान्यताए पर्याप्त रूप से विस्मयजनक हैं किन्तु लेखक के दृष्टिकोण को सम्पूर्णतया समझने के लिए हम राजा एव विशप के सम्बन्धो के इन सिद्धान्तो के अतिरिक्त तीसरे और पाचवे ट्रैक्ट्स में किए गए पोप की सत्ता और स्थिति के उल्लेखनीय विवरण का भी अध्ययन करना होगा। रोम की धार्मिक सत्ता के इतिहास का वर्णन इस पुस्तक के क्षेत्र में नहीं आता यहाँ इस विषय का विवेचन हम केवल इसीलिए करेंगे कि इन उपयुक्त ग्रथो के सम्पूर्ण महत्त्व का निर्णय करने में समर्थ हो सकें।

तृतीय ट्रैक्ट में लेखक सम्भवत 1096 ई के लगभग पोप द्वारा राउन नगर तथा टूर्स के आर्चबिशपो पर लियोन्स के आर्चबिशप का एक प्रकार का धर्माधिपत्य स्वीकार कर लेने के कारण उत्पन्न विवाद में व्यस्त है। राउन के आर्चबिशप विलियम का इस सत्ता को मान्यता देने में अवहेलना तथा रोमन पोप पद की अवमानना के कारण गम्भीर भर्त्सना की गई। ट्रैक्ट का लेखक इसके प्रत्युत्तर में जो तर्क देता है वह दूरगामी है। सर्व प्रथम वह कहता है कि आर्चबिशप तथा दूसरे बिशप रोमन पोप की गद्दी के प्रति उतने

ही आज्ञापालन के भागी हैं जितना कि दूसरे प्रेरित पीटर के प्रति थे क्योंकि वे न केवल प्रेरितों के अनुयायी हैं अपितु वे उनके प्रतिनिधि भी हैं।[58] दूसरे वह यह तर्क देता है कि आर्चबिशप भी पीटर का प्रतिनिधि है तथा ईसा ने बाँधने एवं मुक्त करने की जो सत्ता पीटर को दी थी वह उसके पास भी है। अतः राउन के आर्चबिशप तथा रोमन पोप-पद के बीच बड़प्पन का कोई प्रश्न ही नहीं उठता तथा दोनों में से कोई भी किसी का न्याय नहीं कर सकता। बिशप का न्याय ईश्वर के अतिरिक्त कोई भी नहीं कर सकता।[59] ये मान्यताएं अपने स्वरूप में अत्यन्त कठोर हैं किन्तु लेखक इनसे भी आगे बढ़ जाता है।

वह इस प्रश्न का विवेचन करता है कि क्या राउन के आर्चबिशप से लियोन्स के आर्चबिशप की सत्ता मानने की अपेक्षा न्यायोचित है तथा उसकी मान्यता है कि इसका कोई औचित्य नहीं है। वह सुझाव देता है कि रोम के समर्थक यह कह सकते हैं कि उस रोम की आज्ञा का पालन करना चाहिए, क्योंकि यह घोषणा की गई है कि रोमन चर्च सभी चर्चों की जननी तथा स्वामी है। वह स्वीकार करता है कि रोम के बिशपों तथा उनके अनुयायियों द्वारा यह घोषणा की गई है किन्तु वह प्रतिपादित करता है कि यह ईसा या उसके प्रेरितों द्वारा नहीं किया गया है। यदि कोई चर्च सभी चर्चों की जननी हो सकती है तो वह जेरूसलम का चर्च है। वास्तविकता तो यह है कि रोम को सभी चर्चों से ऊपर ईसा या उसके प्रेरितों की सत्ता द्वारा नहीं किन्तु मनुष्यों की सत्ता द्वारा बनाया गया है तथा इसका कारण सम्राट के नगर की गरिमा तथा सत्ता है। रोम की स्थिति न्याय संगत सत्ता पर आधारित नहीं वरन् अनधिकार चेष्टा पर आधारित है यद्यपि उसका उदय विशेष के वचन की आवश्यकता के कारण हुआ है। मूल रूप में चर्च का शासन पुरोहितों की परिषद् द्वारा सञ्चालित होता था केवल फूट पड़ने की आशंका से ही यह नियम बनाया गया है कि एक पुरोहित को अन्य के ऊपर रखा जाए तथा वह सम्पूर्ण चर्च की रक्षा भार के लिए उत्तरदायी हो।[60]

पाँचवें ट्रैक्ट में जो कि ब्योहमर के अनुसार चौथे की भाँति ही इनके के प्रतिस्थापन के विवादकाल का है अत्यन्त कठोर शब्दों में पोप पर पुनः आक्रमण करता है। लेखक तर्क देता है कि पोप अनेक ऐसी आज्ञाएं देता है जो कभी ईसा भी नहीं देता था। उदाहरणार्थ पोप द्वारा बिशपों को रोम में अनेक बार उपस्थिति के लिए विवश करने से उन पर असह्य भार डाल दिया गया है। वह शिकायत करता है कि बिशपगण पोप के अधिकारियों के लोभ को सन्तुष्ट करने के लिए चर्च की सम्पत्ति को बेचने के लिए विवश हो गए। वह प्रतिपादित करता है कि यदि पोप इस कारण बिशपों को धर्म-बहिष्कृत करता है कि ऊपर वर्णित इन मामलों में वे उसकी आज्ञापालन नहीं करते थे तो वह धर्म-बहिष्कार अवैध है तथा उसका कोई प्रभाव नहीं है।[61] वह पोप द्वारा अनेक मठों को पादरियों के अधिकार-क्षेत्र से मुक्त करने के कार्य की कठोर भर्त्सना करता है तथा यह प्रतिपादित करता है कि ऐसी मुक्ति को मान्यता नहीं मिलनी चाहिए, क्योंकि यह ईश्वर के आदेश के विरुद्ध है तथा पोप को उस बन्धन का कोई अधिकार नहीं है।[6] वह पोप द्वारा चर्च के शासन में राजाओं के अधिकार को नष्ट करने के प्रयत्नों की निन्दा करता है कि यह पोप जिलेसियस द्वारा स्थापित सिद्धान्तों का खण्डन है कि सम्राट यहाँ स्वयं अभिप्राय

चर्च से ही है दो सत्ताधारियों से शासित है–पुरोहित तथा राजा। चर्च की राजकीय सत्ता से उसका स्पष्ट अभिप्राय प्रतिष्ठापन का अधिकार है तथा वह पुनः इस बात पर बल देता है कि राजा एक साधारण नागरिक नहीं है।[63]

यह कहना अत्यन्त कठिन है कि इन अति असाधारण मान्यताओं को हम क्या महत्त्व प्रदान करें तथा किस प्रकार यह निर्धारण करें कि कहाँ तक ये कुछ क्षेत्रों में पायी जाने वाली सामान्य विचार प्रणाली का प्रतिनिधित्व करती हैं या केवल व्यक्तिगत सम्मतियाँ मात्र हैं। पप्युरी के हा न के कुछ कथनों से इनकी समानता स्पष्ट है तथा इन धारणाओं का अन्तिम साहित्यिक स्रोत एक ही हो सकता है किन्तु ह्यूज इन वाक्य-समूहों का प्रयोग करते समय उनको स्वत व्याख्या न होने देने की सावधानी भी बरतता है तथा धार्मिक पद के उच्चतर गौरव पर बल देता है इन ट्रैक्टों का लेखक अपने तर्क को राजकीय प्रतिष्ठापन के अधिकार या लौकिक सत्ता की स्थिरता को प्रतिपादित करने के लिए आवश्यकता से कहीं अधिक दूर तक ले जाता है।

उसके ग्रन्थ आर्थोडोक्सा डिफेंसियो इम्पीरियलिस (Orthodoxa Defensio Imperialis) में जो सम्भवतः 1111 ई॰ में लिखा गया है अभिव्यक्त केटीनो के ग्रेगोरी के दृष्टिकोण का हम पहले ही विस्तृत अध्ययन कर चुके हैं जिसमें लौकिक सत्ता के विरुद्ध विद्रोह की अपावनता तथा राजा या सम्राट द्वारा बिशप के प्रतिष्ठापन के अधिकार के प्रयोग का प्रतिपादन किया गया है।[64] तथापि वह कुछ महत्त्वपूर्ण वाक्यों का प्रयोग करता है जिन पर हमको ध्यान देना चाहिए। एक स्थान पर वह कहता है कि ईश्वर ने ही चर्च में राजाओं तथा उच्च अधिकारियों को स्थापित किया है जिनके लिए सन्त आपना करने का उपदेश प्रेरितों ने दिया है तथा हमें राजा को चर्च का अध्यक्ष मानना चाहिए। यह असंगत नहीं कि चर्च के अधिकारी सम्राट द्वारा मुद्रा एवं दण्ड से 'प्रतिष्ठापित' किए जाएँ क्योंकि यदि राजा चर्च का अध्यक्ष है तो उसे उसके पदों अथवा पदाधिकारियों को 'नियुक्त' करने से वंचित नहीं किया जा सकता।[65] लौकिक शासक के लिए चर्च के अध्यक्ष की उपाधि उपयोग करना विचित्र एवं अस्वाभाविक है तथा यह जानना कठिन है कि ग्रेगोरी उसे क्या सुनिश्चित महत्त्व प्रदान करता है। सम्भवतः राजाओं एवं सम्राटों के अभिषेक पर उसके द्वारा दिए गए बल से इसका सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है।[66] किन्तु ग्रेगोरी स्वयं यह सम्बन्ध नहीं जोड़ता।

नोनानतुला का प्लेसीडस (Placidus of Nonantula) अपने ग्रन्थ 'लीबर दे होनोरे एक्लेसिये' (Liber de Honore Eccl-siae) में जो सम्भवतः 1112 ई॰ में लिखा गया प्रमुखतया प्रतिष्ठापन के प्रश्न तथा चर्च की सम्पत्ति की पवित्र प्रकृति का वर्णन करता है तथा इस विषय पर उसके ग्रन्थ की परीक्षा हम पहले ही कुछ विस्तार से कर चुके हैं।[67] तथापि हमारे वर्ण्य विषय अर्थात् धार्मिक एवं लौकिक सत्ताओं के सम्बन्धों के सिद्धान्तों के विषय में इस ग्रन्थ का बड़ा महत्त्व है क्योंकि इसमें पहली बार उस अर्थ में कान्सटेन्टाइन के दान की व्याख्या का उदाहरण पाते हैं जिस अर्थ में उसे बाद में समझा गया। जैसा हमने दिखलाने का प्रयास किया है यह स्पष्ट है कि मूल रूप में उसका सम्बन्ध पोप द्वारा पूर्वी ईसाई चर्च में बिशपों पर पूर्वी सम्राटों की

सत्ता मे तथा इटली मे उन सम्पदाओ ने जो आठवी शताब्दी मे भी उनके (पूर्वी सम्राटो के) अधिकार में थी उत्तराधिकार के दावे न था।[68]

स्सीडस दान का अथ यह समझता है कि का सटेण्टाइन ने पोप सिल्वस्टर को पश्चिम म उसकी सम्पूर्ण सत्ता सौंप दी यहाँ तक स्सीडस की स्थिति पूर्णतया स्पष्ट प्रतीत होती है कि तु इसके आगे उसकी व्याख्या आसान नही है। वह कहता है क्योंकि कान्सटेटाइन द्वारा प्रेरित (पीटर) के प्रति सम्मान प्रदान किया गया था तथा पश्चिमी साम्राज्य पीटर के उत्तराधिकारी के लिए छोड दिया गया था अत ईश्वर ने उसे सम्पूर्ण रोमन साम्राज्य का अधिकार दिया है क्योंकि पोप सिल्वेस्टर ने यद्यपि उसे का सटेण्टाइन ने प्रदान कर दिया था तो भी ईसा का अनुकरण किया तथा राजमुकुट को अपने सिर पर रख कर हानि न होने दी तथा इसके लिए अभिलाषा प्रकट की कि कान्सटेण्टाइन चच की निरुद्धपूर्ण रक्षा के लिए साम्राज्य का भार सभाले रहे।[69] इससे स्सीडस का वास्तविक तात्पर्य क्या था कहना कठिन है। सम्भवत उसका अभिप्राय यह हो सकता कि सिल्वेस्टर ने पश्चिम पर राजनीतिक सत्ता स्वीकार करना नहीं चाहा अथवा यह भी हो सकता है कि स्वय व्यक्तिगत रूप से उसे स्वीकार करने के बजाय उसने चच के प्रतिनिधि या सेवक के रूप म कान्सटेण्टाइन को प्रयोग करने को दिया। बाद वाली सम्भावना का बोध सम्भवत इसके सदभ से होता है क्योंकि वह पोप सिल्वेस्टर के काय का चच द्वारा ड्यूक पद तथा अन्य लौकिक सम्पदाओ पर धारण अधिकार के दृष्टान्त स्वरूप उपयोग करता है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि इस विषय का उल्लेख स्सीडस ने केवल सयोगवश किया है किन्तु इसका विवेचन हम अभी तब करेंगे जबकि हम आगसबग के हानोरियस का वणन करेंगे।

इस पुस्तक के प्रारम्भिक भाग म हम चाडोम के एवट ज्यौफी का अपने अनुक्रमिक ग्रथो मे प्रतिष्ठापन के प्रश्न पर अत्यन्त महत्वपूर्ण विकास का अध्ययन कर चुके हैं।[70] इनमे से एक म जो सम्भवत 1119 ई मे लिखा गया था एक पर्याप्त महत्व वाला वाक्याश है जो कि हमारे वतमान विषय की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है।[71] यह ग्रथ प्रतिष्ठापन विवाद के अन्तिम वर्षों म लिखा गया था जबकि ज्यौफी अत्यन्त दृढता पूवक मुद्रा एव दण्ड से प्रतिष्ठापन की छूट का विरोध कर रहा था यद्यपि वह यह मानने को तयार था कि सम्राट बिशप को उसके पद की लौकिक सम्पत्ति प्रदान कर सकता है। इस वाक्य म ज्यौफी घोषणा करता है कि दवी कानूनो के अन्तगत ही राजा व सम्राट हम पर शासन करते हैं तथा उसी कानून के अन्तगत ही य हमारे आदर एव सम्मान के पात्र हैं तथा उसका स्पष्टतया यह अभिप्राय पादरी एव प्रयाजक दोनो से ही प्रतीत होता है। वह उन बडी हानियो का उल्लेख करता है जो तब होती हैं जबकि राज सत्ता एव धार्मिक सत्ता एक दूसरे के विरुद्ध हो जाती हैं। ईसा की अभिलाषा थी कि धार्मिक एव लौकिक दोनो प्रकार की तलवारो का प्रयोग उसके चच की सुरक्षा के लिए होना चाहिए। अन्तत यह सबसे महत्वपूर्ण है कि वह धम बहिष्कार की शक्ति के बुद्धि रहित उपयोग के भयान खतरे की ओर ध्यान आकर्षित करता है तथा कहता है

कि यह बहुत संदिग्ध है कि किसी ऐसे व्यक्ति को धर्म-बहिष्कृत करना बुद्धिमत्तापूर्ण होगा जिसके अनेक अनुयायी हों जिसमें इस प्रकार के कठोर न्याय के प्रयोग से अच्छाई के स्थान पर अधिक अपकीर्ति हो।[71]

यह स्पष्ट है कि ज्यौफी को लौकिक सत्ता के दिव्य उदय के बारे में कोई संदेह नहीं था तथा धर्म बहिष्कार के अनियन्त्रित उपयोग की बुद्धिमत्ता के विषय में एक ऐसे व्यक्ति के सन्देह जो पोप की गद्दी का दृढ़ समर्थक रहा है अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

इस पुस्तक के इस भाग में जिस अन्तिम ग्रन्थ का हम विवेचन करेंगे वह है सुम्मा ग्लोरिया (Summa Glorea) जो आग्सबर्ग के होनोरियस[72] द्वारा लिखा गया था। यह ग्रन्थ सम्भवतः वार्म्स के समझौते के बहुत अधिक समय बाद नहीं लिखा गया तथा पोपवादी परम्परा के एक कट्टर समर्थक के दृष्टिकोण को व्यक्त करता है किन्तु होनोरियस 1076 ई. से 1122 ई. तक के संघर्ष की परिस्थितियों के निरूपण के लिए उतना व्यग्र नहीं जितना दोनों महान सत्ताओं के उद्भव तथा स्वरूप के विश्लेषण एवं तुलना के प्रयत्न में संलग्न है। उसकी स्थिति बड़ी विचित्र है क्योंकि उसके सिद्धान्त लगभग कई विषयों में अत्यन्त उग्र हैं जबकि उसके व्यावहारिक निष्कर्ष किसी सीमा तक मध्यस्थतावादी तथा उदारतापूर्ण हैं।

वह अपने ग्रन्थ का प्रारम्भ व अन्त धार्मिक सत्ता की उत्कृष्ट गरिमा के प्रबल समर्थन से करता है तथा उसको अनेक प्रकार से प्रदर्शित करता है। वह एबल (Abel) को पुरोहित के पद का तथा केन (Cain) को राजकीय पद का प्रतीक मानता है शम (Shem) का जो प्रथम यथार्थ पुरोहित है वह पूर्वाचार्य परम्परा के अनुसार मेलचीजेडेक (Melchi Jedek) से तादात्म्य स्थापित करता है जबकि रोमन साम्राज्य जाफेठ (Jophet) का उत्तराधिकारी है तथा वह इसी प्रकार की दो सत्ताएं आइजक तथा इश्मायल (Issac and Ishmael) तथा जेकब व इसाउ (*Jacob and Esau*) को मानता है। जैसे किसान उपयाजक (Deacon) के अधीन हैं सिपाही पादरी के अधीन हैं राजकुमार बिशप के अधीन हैं उसी प्रकार राजा पोप के अधीन हैं।[3] तथापि उसका यह प्रत्युत्तर दिया जाता है कि राजा एक साधारण व्यक्ति नहीं क्योंकि पुरोहितों के तेल से उसका अभिषेक होता है किन्तु वह इस तर्क की घृणापूर्वक अवहेलना करता है और कहता है कि हमें सभी व्यक्ति स्वीकार करते हैं कि राजा का पद धार्मिक नहीं है किन्तु वह एक साधारण व्यक्ति है जो किसी भी पादरी से सम्बद्ध कार्य को नहीं कर सकता और वह एक शास्त्रीय अन्तर भी प्रदर्शित करता है कि राजा का अभिषेक केवल तेल से होता है जबकि पुरोहित का अभिषेक पवित्र निषेचन से होता है तथा यह भी बतलाता है कि राजा का अभिषेक दूसरे राजा द्वारा न होकर पुरोहितों द्वारा होता है।[74]

इस प्रकार होनोरियस का दृष्टिकोण स्पष्ट है कि पुरोहित का गौरव राजकीय गौरव से श्रेष्ठ है। किन्तु वह इससे भी आगे बढ़ जाता है तथा लौकिक सत्ता के उद्भव एवं स्वरूप के विषय में एक सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है जो हमारे विचार में पूर्णतया नवीन ही नहीं सामान्य परम्पराओं से भी भिन्न है। जैसा हम अनेक बार दिखला चुके हैं धर्माचार्यों का सामान्य सिद्धान्त यह था कि लौकिक सत्ता ईश्वर के द्वारा स्थापित है।

पाँचवीं शताब्दी में जिलेसियस ने यह प्रतिपादित किया था कि ईसा ने स्वयं इन दोनों सत्ताओं को बनाया तथा पृथक किया है जो कि संसार का शासन चलाने वाली हैं नवीं शताब्दी से इस सिद्धान्त में यह परिवर्तन आ गया कि ईसा ने अपने चर्च में यह दो सत्ताएँ बनायी हैं ।[75] होनोरियस एक पूर्णतया विभिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है । वह पहले यह सिद्ध करता है कि मूसा से सेम्युएल के समय तक इजराइलियों पर राजाओं का न होकर पुरोहितों तथा पैगम्बरों का शासन था वह सेमुएल ही था जिसने राजपद को स्थापित किया पुरोहित तथा पैगम्बर ही राजाओं का निर्वाचन तथा अभिषेक करते रहे तथा निर्वाचन के बाद पुनः पुरोहित इजरायल पर राज्य करने लगे ।[6] जब सच्चा राजा तथा पुरोहित ईसा आया तो उसने अपने चर्च को कानून प्रदान किए तथा उसने चर्च पर शासन करने के लिए धार्मिक सत्ता की स्थापना की न कि राजसत्ता की तथा धार्मिक सत्ता का अधिकार उसने पीटर को प्रदान किया जिसने यह अधिकार अपने उत्तराधिकारियों को दे दिया । इस प्रकार ईसा के समय से लेकर सिल्वेस्टर के समय तक चर्च का शासन केवल पुरोहितों के हाथों रहा ।[77]

वास्तव में यह एक दूरगामी तथा मूलभूत धारणा है एक ऐसी धारणा जो पारम्परिक धार्मिक सिद्धान्तों से मेल नहीं खाती । इस कथन के बाद कान्सटेन्टाइन के दान का प्रयोग एवं व्याख्या दी गयी है जिसका जहाँ तक हम जानते हैं कोई प्राचीन प्रतिरूप उपलब्ध नहीं होता । होनोरियस कहता है कि अन्त में वह समय आ गया जब कि ईश्वर ने अत्याचार के युग को शान्ति के युग में तथा मूर्तिपूजकों के विद्रोहपूर्ण साम्राज्य को ईसाइयों के शासन में बदल दिया । कान्सटेन्टाइन को सिल्वेस्टर ने जो चर्च के पुरोहितों का राजा था धर्म परिवर्तन किया था उसने साम्राज्य का मुकुट रोमन पोप के मस्तक पर रख दिया तथा घोषणा की कि कोई भी उसकी सहमति के बिना रोमन साम्राज्य को नहीं पा सकता । तथापि सिल्वेस्टर ने अनुभव किया कि जो पुरोहित के विरुद्ध विद्रोह करते हैं उनको ईश्वर के शब्दों की तलवार से ही शान्त नहीं किया जा सकता है परन्तु लौकिक तलवार से तथा उसी कान्सटेन्टाइन को ईश्वर के कार्य में सहकर्मी के रूप में सम्मिलित कर लिया जो मूर्तिपूजकों यहूदियों तथा धर्मद्रोहियों के विरुद्ध चर्च का संरक्षक बना उसे दुष्कर्म करने वालों को दण्डित करने के लिए तलवार प्रदान की तथा कल्याण के उत्कर्ष के लिए उस पर साम्राज्य का राजमुकुट रख दिया । अतः उस समय से यह परम्परा बनी कि लौकिक न्याय के लिए चर्च को राजा तथा न्यायाधीश चाहिए । तथापि केवल लौकिक न्याय ही राजाओं के अधिकार में है तथा कान्सटेन्टाइन ने बिशपों के कार्यों का निर्णय करने में भाग लेना अस्वीकार कर दिया । इस प्रकार जैसे शरीर की तुलना में आत्मा का गौरव अधिक होता है लौकिक की तुलना में धार्मिक का उसी प्रकार धार्मिक सत्ता का गौरव राजकीय सत्ता से कहीं अधिक है जिसको वह स्थापित करती है तथा आज्ञा देती है ।[8]

वास्तव में होनोरियस की स्थिति नवीन एवं विस्मयजनक है । कान्सटेन्टाइन के दान की ऐसी व्याख्या जहाँ तक हमें विदित है पहले नहीं की गई । जैसा हम देख चुके हैं प्लेसीडस ने दान का अर्थ यह लिया है कि कान्सटेन्टाइन ने अपने साम्राज्य का पश्चिमी

भाग पोप को हस्तांतरित कर दिया तथा उसका अर्थ यह भी हो सकता है कि सिल्वेस्टर ने चर्च के सेवक के रूप मे उसका शासन चलाने के लिए उसे कान्सटेन्टाइन को प्रदान कर दिया किन्तु हानोरियस दान की व्याख्या सम्पूर्ण राजनीतिक सत्ता के पोप को समग्र हस्तातरण से करता है तथा यह प्रतिपादित करता प्रतीत होता है कि इस समय से लेकर इस प्रकार की सम्पूर्ण सत्ता वास्तव मे लौकिक शासकों द्वारा धार्मिक सत्ता से ही प्राप्त की गई। किन्तु यही कथा समाप्त नहीं हो जाती क्योंकि होनोरियस का यह अभिप्राय प्रतीत होता है कि कान्सटेन्टाइन का कार्य केवल सामान्य दैवी व्यवस्था की स्वीकृति मात्र है यह प्रतिपादित करता है कि ईसा ने दो सत्ताओं को चर्च का शासक नियुक्त नहीं किया है किन्तु केवल धार्मिक सत्ता को ही बनाया है तथा दैवी व्यवस्था के अन्तर्गत ही वास्तव मे सभी सत्ताएं निहित हैं। अत यह प्रतीत होगा कि कम से कम होनोरियस कुछ उत्तर कालीन लेखकों द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त का सुझाव दे रहा है कि सम्पूर्ण सत्ता चाहे वह धार्मिक हो अथवा लौकिक चर्च एवं उसके अध्यक्ष पोप मे निहित है तथा सभी लौकिक शासक जिस सत्ता को धारण करते हैं वह उनको धार्मिक सत्ता द्वारा प्रदान की गई है।[79] यह कभी क्या मध्यकाल मे स्वीकृत सामान्य सिद्धान्त बन पाया इस पर हम बाद मे विचार करेंगे किन्तु निश्चय ही यह सत्य है कि यह इसकी सर्वप्रथम अभिव्यक्ति है। वास्तव मे यह भी कहा जा सकता है कि इसे ग्रेगोरी सप्तम ने प्रस्तुत किया था किन्तु चाहे यह सिद्ध किया जा सके कि यह उसके दावों मे निहित है[80] यह निश्चित है कि इसका स्पष्ट अभिकथन उसमें नहीं है।

सम्भवत इसी धारणा से हमे होनोरियस की घोषणा को सम्बद्ध करना होगा कि सम्राट का निर्वाचन पोप द्वारा राजाओं की सहमति तथा जनता की स्वीकृति से होना चाहिए। वास्तव मे अन्यत्र वह दावा करता है कि वे लौकिक राजा नहीं बल्कि बिशप वास्तविक निर्वाचक थे किन्तु होनोरियस के तर्क का प्रधान बल उसकी इस मान्यता मे प्रतीत होता है कि नियुक्ति का अधिकार पोप तथा आध्यात्मिक राजाओं म निहित है तथा वह यह प्रतिपादित करते हुए समापन करता है कि राजकीय सत्ता वैधानिक रूप से धार्मिक सत्ता के अधीन है तथा इसका कारण यह है कि धार्मिक सत्ता ने ही राजकीय सत्ता को स्थापित किया है।[81]

इन दूरगामी प्रभाववाली धारणाओं की तुलना म यह सापेक्ष रूप से तुच्छ विषय प्रतीत होता है कि होनोरियस यह भी मानता है कि पोप का निर्वाचन कार्डीनलों द्वारा रोम के बिशपों तथा पादरियों की सहमति से तथा जनता के अनुमोदन से होना चाहिए। वह सम्राट को सहमति या स्वीकृति का उल्लेख नहीं करता और वह यह भी जानता है कि प्रत्येक नगर के बिशप का निर्वाचन बिशप क्षेत्रों के पादरियों द्वारा जनता के अनुमोदन से होना चाहिए एव उसको मुद्रा एव दण्ड से प्रतिष्ठापित पोप द्वारा किया जाना चाहिए।[8]

तथापि अब हम ध्यान रखना चाहिए कि धार्मिक एवं लौकिक सत्ता के सम्बन्धो म होनोरियस के सिद्धान्तों का एक अन्य पक्ष भी है जो वास्तव म औपचारिक रूप से हमारे द्वारा अभी निरूपित सिद्धान्तों से असंगत नहीं किन्तु इस पर आधारित कुछ निष्कर्षों को

संशोधित करने की दृष्टि से पर्याप्त रूप से महत्त्वपूर्ण है।

वह सुस्पष्ट रूप से मानता है कि एक प्रयाजक के रूप में राजा दैवी विषयों में धार्मिक अध्यक्ष अर्थात् चर्च के अध्यक्ष पोप के अधीन है इसी प्रकार पोप एवं सभी पादरी लौकिक मामलों में राजा के अधीन हैं एवं वह यह भी मानता है कि प्राचीन विधान में भी यही नियम था। राजा की नियुक्ति पुरोहित अथवा पैगम्बर करते थे दैवी कानून से सम्बन्धित विषयों में उनकी आज्ञा का पालन करते थे किन्तु पैगम्बर एवं पुरोहित भी सभी लौकिक मामलों में राजाओं की आज्ञा का पालन करते थे।[83]

दूसरे कुछ वाक्यांशों में वह लौकिक सत्ता के उच्च तथा स्वरूप के सिद्धान्तों का कुछ विस्तार से एवं निश्चितता पूर्वक विवेचन करता है। वह स्टोइक तथा पूर्वाचार्यों की परम्परा का अनुसरण करता है कि मूल रूप में ईश्वर ने अपने मनुष्य को अपने समान मनुष्यों पर अधिपति नहीं बनाया किन्तु मनुष्यों के पापों तथा बुद्धिहीन आचरण के कारण ही ईश्वर ने कुछ लोगों को दूसरों पर अधिकारों से सम्पन्न किया ताकि मनुष्य वास्तविक मानवीय जीवन व्यतीत करने के लिए भय द्वारा नियन्त्रित किए जा सकें। चर्च के शासन के लिए संसार में दो तलवारों की आवश्यकता है धार्मिक जो कि धार्मिक सत्ता के *हाथों में है तथा भौतिक जो कि राजकीय सत्ता के हाथों में है जिससे वह उनको दण्ड देता है जो दुष्टता में रत हैं।*[84] इस प्रकार लौकिक सत्ता स्वयं ईश्वर की संस्था है तथा लौकिक विषयों में उसकी आज्ञा पालन केवल जनता ही नहीं पादरियों द्वारा भी किया जाना चाहिए। प्राचीन काल के "सार" लौकिक विषयों में मूर्ति पूजक राजाओं की आज्ञा का पालन करते थे जबकि धार्मिक विषयों में वे केवल ईश्वर के अनुयायी थे क्योंकि केवल अच्छे ही नहीं बुरे शासकों का भी आज्ञा पालन करना चाहिए। संत पाल एवं संत पीटर ने सीधी सादी शिक्षा दी है कि लौकिक सत्ता ईश्वर द्वारा प्रतिष्ठित है।[85] *अनन्तः यह प्रतीत होता कि होनोरियस का मत था कि चाहे राजा रोमन धर्म-पीठ पर के विरुद्ध निर्णय भी करे अथवा धर्म का धर्म त्याग अथवा धर्म में फूट डालने में संलग्न भी हो तो निष्ठावानों को* यद्यपि उससे सभी सम्पर्क को त्याग देना चाहिए तथापि धैर्यपूर्वक उसे सहन करना चाहिए।[86]

यदि अब हम इन ग्रन्थों में जिनकी इस अध्याय में हमने परीक्षा की है कहे गए तथा व्याख्या किए गए सिद्धान्तों के सामान्य स्वरूप को संक्षिप्त करने का प्रयास करें तो हम पायेंगे कि यह संदिग्ध है कि कहाँ तक इन लेखकों के समक्ष सम्पूर्ण विषय की तर्कसंगत *धारणा थी और जब कि उनमें स्पष्ट और दूरगामी मतभेद भी हैं यह भी निश्चित है कि कुछ स्थलों पर उनमें एकता न स्पष्ट है।*

सर्व प्रथम उनको इसमें कोई संदेह नहीं था कि लौकिक सत्ता एक दिव्य संस्था है जैसी कि धार्मिक सत्ता है। ब्यू मर्डेडिट तथा होनोरियस सुस्पष्ट रूप से इस पर बल देते हैं यद्यपि वे इसका मूल उन्य पापों के कारण मानते हैं। इसलिए जब पनूरी के ह्यू तथा केंटोनो के ग्रेगोरी ने स्पष्ट सत्ता पर बल दिया तथा जब ह्यू ने लौकिक शासन के उदय के बारे में हिल्डेब्राण्ड के वाक्यों के उस अभिप्राय का जैसा वह समझता था निराकरण किया *वे वास्तव में उस सिद्धांत से भिन्न किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं कर रहे थे जिस*

ह्यू सवेंडिट तथा ह्रोनोरियस सच्चा मानते।

पुन जसा हम देख चुके हैं ह्यू मवेन्टि बन्न उम्पुन या कि यह समझा जाए कि यह निर्सा ग्न है कि प्रत्यक सत्ता का अपना उचित क्षेत्र है जिसम दूसरी सत्ता को हस्तक्षेप नही करना चाहिए ज्योफ्रा तथा ह्रोनोरियस सुस्पष्ट रूप स इस पर बल देते हैं कि सभी पादरी तथा ह्रोनोरियस इसम विशेष रूप से पोप को भी सम्मिलित करता ह लौकिक विषयो म लौकिक सत्ता क अधीन हैं।

उनम महान सघष द्वारा उठाए गए कुछ व्यावहारिक प्रश्नो के प्रति लगभग एक-सी ही प्रवृत्ति भी देखी जा सकती है यदि मेम्बलाउ क सीजबट को राजा को धर्म बहिष्कृत करने के विषय म सदेह था तथा उसन यह सुझाया कि हनरी चतुथ का धर्म-बहिष्कार अन्यायपूर्ण था तो फर्रूरी का ह्यू भी यद्यपि वह पोप का नीतियो का प्रबल आलोचक था यह स्पष्ट कर देता है कि बिशप राजा को धर्म-बहिष्कृत कर सकता है जबकि ज्योफ्री जो यद्यपि पोप के मत का प्रबल समथक था सम्भवत राजाओ के धर्म-बहिष्कार की न्याय सगतता पर नही किन्तु निश्चित रूप से बुद्धिमत्ता पर सन्देह व्यक्त करता है। पुन जब कि मीजबर्ट फ्लूरी का ह्यू तथा केटीना का ग्रगोरी इस मान्यता का प्रबल खण्डन करते हैं कि पोप राजा को पदच्युत कर सकता है अथवा उनकी प्रजा को निष्ठा स मुक्त कर सकता ह ह्रोनोरियस का यह अभिप्राय प्रतीत होता ह कि निष्ठावान व्यक्तियो को धर्मद्रोही तथा धर्म म फूट डालन वाले राजा क सम्पक स बचना चाहिए परन्तु उसकी राजनीतिक सत्ता को धय पूवक स्वीकार करना चाहिए।

अत यह कहा जा सकता है कि हम इन लेखको म लौकिक सत्ता का दवी उत्पत्ति क सम्बन्ध म एक वास्तविक सहमति पाते हैं तथा अपन युग क व्यावहारिक प्रश्नो पर उनक दृष्टिकोण म निकटता की प्रवृत्ति पाते हैं। हमन इस पुस्तक के प्रारभिक खण्ड म उन विभिन्न स्थितियो का खोजन का प्रयास किया जिनम कि प्रतिष्ठापन के प्रश्न पर अन्तिम रूप से समझौता हो सका और कुछ पोप के पक्ष क लेखका क बारे म यह कहना सत्य होगा कि व प्रारभिक रूप म चच का धार्मिक स्वतन्त्रता के समथन म लीन थे तथा उनको यह प्रतिपादन करन की इच्छा नही था कि चच या पोप को लौकिक सत्ता के ऊपर कोई सामान्य प्रभुत्व का अधिकार है।

दूसरी ओर यह कहा जा सकता ह कि कुछ लेखको म हम दोनो सत्ताओ के सम्बन्धो क सिद्धान्त का अतिरिक्त विकास खोज सकते हैं। फ्लूरी के ह्यू न इस पर बल दिया कि ईश्वर की जो पिता है राजा प्रतिमूर्ति है तथा बिशप ईसा की और इसीलिए साम्राज्य के सभी बिशप ठीक ही राजा क अधीन थ जिस प्रकार कि ईसा पिता ईश्वर के अधीन है प्रकृति म नही अपितु आदेश से तथा Universitas regni को ad unum principium म बदला जा सकता है।

ट्रक्टेटस ऐबोरासेसस क लेखक न जसा कि हम देख चुके हैं इसी प्रकार के वाक्यो का प्रयोग किया है किन्तु विषय का और आगे बढ़ाया है तथा वह यह मानता प्रतीत होता है कि राजकीय सत्ता अपनी प्रकृति की दृष्टि स पुरोहित का सत्ता से अधिक बड़ी है तथा राजा जो कि साधारण अयाजक नही है धार्मिक मामलो म भी महान सत्ता स सम्पन्न

है। बेटोना के ग्रेगोरी ने कहा है कि राजा चर्च का अध्यक्ष था तथा इसीलिए यह उचित था कि बिशप राजा से मुद्रा एवं दण्ड द्वारा प्रतिष्ठापन प्राप्त करे क्योंकि वह चर्च का अध्यक्ष था अतः उसे चर्च के सदस्या के पद या पुरोहिता[6] की सृष्टि से वंचित नहीं रखा जा सकता। वास्तव में इन वाक्यों की व्याख्या सुगम नहीं है किन्तु हम संभवतः बहुत अधिक गलती पर नहीं होंगे यदि हम इनको धार्मिक दावों के प्रति प्रतिक्रिया के रूप में लें। तथापि हम यह ध्यान रखना चाहिए कि वह़ी पहूरी का था जो आग्रहपूर्वक यह प्रतिपादित करता था कि बिशप अपने पद की गरिमा में राजा से उतना ही श्रेष्ठ है जितना कि दिव्य पद अपनी पवित्रता में लौकिक मामलों में श्रेष्ठ है तथा वह लौकिक न्यायालयों के निर्णय के अधीन नहीं। तथापि ... तथा सीब्रट यह दिखलाते हैं कि किस प्रकार अनेक बार सम्राटों ने इन पापपूर्ण और भ्रष्टाचार भरी परिस्थितियों को सुधारा है तथा वे यह मानना अस्वीकार कर देते हैं कि पाप मानवीय न्याय से परे है तथा यह प्रतिपादित करते हैं कि उस भर्त्सना एवं दण्ड को स्वीकार करना चाहिए।

यदि इन लेखकों को लौकिक सत्ता के समर्थकों की स्थिति के उच्चतम पहलू का प्रतिनिधित्व करने वाला न माना जाए तो प्लसीडस तथा होनोरियस मोपवाल्ड की स्थिति में एक नए विकास का प्रतिनिधित्व करते हैं। हम उनके द्वारा कांस्टन्टाइन के दान के विवरण तथा व्याख्या का विवेचन कर चुके हैं किन्तु बाद वाले महत्त्वपूर्ण हो होनोरियस के द्वारा प्रतिपादित लौकिक सत्ता के धार्मिक सत्ता के अधीन होने के सिद्धान्तों की तुलना में उसका महत्त्व बहुत थोड़ा है। होनोरियस की मान्यता बहुत रोचक है तथा उसका उल्लेख करने का अवसर हम बाद में भी मिलेगा यहाँ हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि यदि इसका कोई सम्बन्ध हिल्डब्राण्ड के कुछ दावों से हो तथा यह तर्क दिया जा सके कि ये उन दावों में अन्तर्निहित हैं तो यह स्पष्टतया समझ लेना चाहिए कि इसकी कोई समानता उस साहित्य में नहीं मिलती जिसका विवेचन हम इन दो अध्यायों में कर रहे थे।

संदर्भ

1 Cf H ... Arch ... ge ... h ... hi D ... hi d ... oi ... p 852
2 J ff M ... c t B mbe g ... p 503
3 M ... C ... l ... x p 715
4 Id d ... p 723 C ... ll m M l ... lii ... 8
5 ... Id Chr ... con 1089 1091
6 Id d ... 1095
7 M ... C ... l ... p 815 ff
8 B ... Id Ch ... 1095
9 Jaff W ... h Reg t 5817
10 S g be t f G rablo ... Le d cen ... m Ep tol d ... p h l m P p m
11 Jaffe W tte ba h Reg t 5868 5908 5928 5956 5960
12 Id d 5909
13 A ... l H ld ... s 1105
14 Ekk h d Ch ... n 1105
15 J ff M ... m ... M g t ... p 379
16 D d d t L bell contr ... o- e et ym ... P l g e

17 Cf vol ı p 147
18 Cf v l ı pp 233 235
19 Deusded t Libell s contra Invasores et Symoni cos ı 12
0 Cf v l ı ı p 99
21 Cf vol ıı pp 80 and 227 233
22 उसने इसका दृढ़ता से खण्डन किया है कि पोप के चुनाव पर साम्राज्य की पुष्टि वाछित है पृ 92–93।
23 Cf the admirable k of A C uch e *La Querelle des In e t ture d s* les d oce s d L g et de Cambra Paris 1890
4 S gebe t of Gemblo Leod cen um *Ep stola ad us Paschal m* Papam 7
5 *Id id 6*
6 Id id 9
7 *Id id 11*
28 Id d 8
9 *Id id 1 4 10 13*
30 Id id 4
31 *An lm G ta Ep copor n Le di* cens m 6 64
3 *Id id 10*
33 Cf Ed t m Lib d Lit 1
34 *Cf p 04*
35 H gh f Fl u y Tract t s de Re *g a Potestate et Sa d xtal D gn ta* ti 1 1
36 *Id d. i*
37 Id d Prolog ı f ı 4
38 Id id ı 10
39 Id id ı 7
40 Id ıd ı 12
41 Id id ı 4
4 Id d ı 10
43 *Cf p 102.*
44 Id d ı 4
45 Id d ıı 3 4 5
46 ग्रन्थ के पूर्ण विवरण के लिए देख—H Bohmer Kirche and Staat in England and in der Normandie इससे मुझे बहुत सहायता मिली है।
47 *Cf Vol i pp 149 215*
48 Tra tatus Eboracencse ıv (p 665)
49 Id id *(p 666)*
50 Id id (p 667)
51 Id id (p 669)
5 Id id (p 670)
53 Id id (p 672)
54 Id id (p 675)
55 Id id (p 679)
56 Id id (p 678)
57 Id d (p 667–668)
58 Id d ı (p 656)
59 Id d (p 657)
60 Id d (p 659)
61 Id v (p 680)
62 Id id (p 681)
63 Id id (p 684)
64 देख खण्ड 3 तथा इस खण्ड में भाग 2 अध्याय 3।
65 *Grego y of Catino Orthodoxa De*fens o Imperialis 2.
66 Id d 6
67 भाग 2 अध्याय 6।
68 देखें खण्ड 1।
69 Plac dus of Nonantula Liber de Honore Eccl ı 57
70 देखें भाग 2 अध्याय 7।
71 लगता है यह गद्यांश बाद में जोड़ा होगा Cf Lib De Lit 1 ı p 678
72 Geoggrey About of Vendome Libellus ıv., Augustodunensis यही वास्तव प्रतीत होता है।
73 *Hono ius Augustodunens s Summa* Glona 1
74 Id id 9
75 देख खण्ड 1।
76 *Id d 18–14*
77 Id id 15
78 Id id 16 17 18
79 Cf Gierk Polit cal Theory of th Middle Ag s p 11 and Note 9 t 0
80 Cf speci lly pp 200–209
81 H oriu Summa Glo ia 11
8 Id id 19
83 Id id 9
84 *Id d 26*
85 Id d 24
86 Id id 7

चतुर्थ अध्याय

पोप-पद की सामन्ती सत्ता का विकास

हम संक्षेप से ग्रेगोरी सप्तम की नीति के दूसरे पक्ष का विचार करना चाहिए। यह उसका सतत प्रयत्न प्रतीत होता है कि पोप के विभिन्न देशों एवं प्रान्तों पर सामन्ती प्रभुत्व के दावे को सिद्ध कर सके। वास्तव में हम नहीं कह सकते कि इस नीति के ग्रेगोरी के पोप पद के कार्यकाल से पूर्व कोई उदाहरण नहीं थे। वस्तुतः यह सत्य है कि उसके विकास के कुछ सबसे महत्वपूर्ण कदम उसके ठीक पूर्वाधिकारियों द्वारा उठाये गए थे। किन्तु यह माना जा सकता है कि तब भी हिल्डेब्राण्ड ने ही इस नीति को प्रेरित किया था।

इस विषय का कम से कम एक संकेत सिल्वेस्टर द्वितीय के पोप पद जितना प्राचीन है। यह एक पत्र में विद्यमान है जिसमें कहा गया है कि हंगरी के राजा स्टीफन ने अपने आपको पोप की निष्ठा के लिए समर्पित कर दिया है।[1] यद्यपि इस पत्र की प्रामाणिकता पर कुछ आलोचकों ने सन्देह किया है तथापि अन्य ने इसका समर्थन किया है। यद्यपि यह स्पष्ट है कि चाहे विभिन्न राज्यों पर पोप के सामन्ती प्रभुत्व की स्थापना की नीति प्राचीन काल से ही विद्यमान है तथापि ग्रेगोरी सप्तम के ठीक पहले के पूर्वाधिकारियों के काल से ही यह महत्वपूर्ण हो गई है। यह कहना तर्कसंगत प्रतीत होगा कि यह नीति एक ऐसी व्यवस्था को संगठित करने के प्रयास का प्रतिनिधित्व करती है जिसके द्वारा साम्राज्य तथा रोम नगर दोनों के ही साथ सम्बन्ध में पोप के पद की राजनीतिक स्वतन्त्रता प्रभुत्व रखी जा सके तथा नेतृत्वी प्रतिद्वन्द्वियों के दमिन ... इस नीति के महत्वपूर्ण परिणाम पाने का अवसर उपलब्ध होगा।

इस नीति का प्रथम एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण विकास पोप एवं दक्षिण इटली के नारमनों के बीच सामन्ती सम्बन्धों की स्थापना में पाया जाता है। कार्डीनल डयूसडेडिट ने अपने ग्रन्थ कलेक्टियो कनोनम (Collectio Cenonum) नामक ग्रन्थ में राबर्ट ग्यूसकार्ड (Robert Guiscord) द्वारा 1059 ई० में पोप निकोलस द्वितीय के प्रति की गई निष्ठा की प्रतिज्ञाओं को सुरक्षित रखा है। वह अपने को ईश्वर तथा संत पीटर की कृपा से एपुलिया तथा कलाब्रिया (Apulia and Calabria) का ड्यूक घोषित करता

है तथा उनकी सहायता से सिसली का ड्यूक होने वाला बनाता है तथा इस दान की पुष्टि एव उसके लिए दय निष्ठा को मान्यता देते हुए वह सत पीटर पोप निकोलस तथा उसके उत्तराधिकारियों को वार्षिक नजराना देने की प्रतिज्ञा करता है। वह प्रतिज्ञा करता है कि वह पवित्र रोमन चर्च के प्रति निष्ठावान बना रहेगा तथा पोप निकोलस तथा रोमन चर्च की निष्ठा को छोड़कर किसी के प्रति निष्ठा की शपथ नहीं लेगा।[2] ड्यूसडेडिट उस निष्ठा का शपथ को भी उद्धत करता है जो कि कापुआ के राजा रिचर्ड द्वारा तथा कापुआ के राजा जोर्डेनस (Jordanus) द्वारा पोप एलेक्जेण्डर द्वितीय के प्रति ली गई थी।[3]

इस नीति के विकास का महत्वपूर्ण बात यह है कि पोप एलेक्जेण्डर द्वितीय ने विजेता विलियम को लिखा तथा घोषणा की कि ईसाई धर्म के अंगीकार करने के काल से ही अंग्रेज राज्य पोप के धर्मासन के सरक्षण म (Sub apostolorum Principe manu et tutela) रहा है तथा पोप की गद्दी को एक वार्षिक रकम अदा करता है जिसका एक भाग पोप को मिलता था तथा एक भाग सत मेरी के चर्च को जिसे स्कोला एग्लोरम (Schola Anglorum) कहा जाता था।[4] तथापि सामन्ती प्रभुत्व के इस दावे का विलियम द्वारा जोरदार खण्डन किया गया उसने इस आधार पर निष्ठा रखने से अस्वीकार कर दिया कि उसने वैसा करने की प्रतिज्ञा नहीं की थी तथा उसके पूर्वाधिकारियों ने कभी एसा नहीं किया था परन्तु उसने प्रतिज्ञा की कि धन दिया जाएगा।[5]

अत यह स्पष्ट है कि ग्रेगोरी सप्तम के पोप की गद्दी पर पदारोहण के पूर्व पोप की गद्दी के सामन्ती प्रभुत्व के विस्तार की नीति सुविकसित थी किन्तु यह भी स्पष्ट है कि अपने पोप पद के कार्यकाल म उसने इसके विस्तार का कोई भी अवसर नहीं खोया। वह सर्वप्रथम दक्षिण इटली म नारमनो के साथ इस सम्बन्ध को बनाए रखने म सावधान रहा। कापुआ के रिचर्ड द्वारा सितम्बर 1073 ई० म ग्रेगोरी सप्तम के प्रति ली गई निष्ठा की शपथ म महत्वपूर्ण व्यवस्थाएं हैं। रिचर्ड अपने को ईश्वर तथा सत पीटर की कृपा से कापुआ का सामन्त घोषित करता है तथा प्रतिज्ञा करता है कि वह पवित्र रोमन चर्च तथा विश्वव्यापक पोप ग्रेगोरी के प्रति निष्ठावान रहेगा। वह प्रतिज्ञा करता है कि वह उसको तथा रोमन चर्च के राजचिह्नों को प्राप्त करने तथा सुरक्षित रखने तथा सत पीटर की सम्पत्ति को सभी मनुष्यों से बचाने म सहायता करेगा तथा रोमन पोप पद की सुरक्षा एव सम्मान को बनाए रखने म ग्रेगोरी की मदद करेगा। वह ग्रेगोरी तथा उसके उत्तराधिकारियों द्वारा अनुमोदित होने पर राजा हेनरी के प्रति निष्ठा की शपथ ले लेगा किन्तु सदैव रोमन चर्च के प्रति अपनी निष्ठा बनाए रखेगा। पोप की गद्दी रिक्त होने की दशा म सर्वश्रेष्ठ कार्डीनलों रोमन पादरियों एव जनता के प्रबोधनानुसार पोप के निर्वाचन म सहायता देगा।[6] रावर्ट ग्यूसकार्ड द्वारा सन 1080 ई० म ग्रेगोरी सप्तम के प्रति ली गई शपथ भी व्यावहारिक रूप से वही है।[7] यह उल्लेखनीय है कि इन शपथों म जबकि नारमनो ने जर्मन राजा के प्रति निष्ठा की शपथ लेने की अपनी सहमति तो व्यक्त की किन्तु वे पोप की स्वीकृति से वैसा करने को तैयार है तथा रोमन चर्च के प्रति अपनी निष्ठा को भी सुरक्षित रखते हैं। ये वाक्यांश पूर्णत एक अधिप्रभु (Overlord) के प्रति

कर्तव्यों को सुरक्षित रखते हुए प्रभु (Lord) के प्रति की गई शपथ के समान हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि ग्रेगोरी नारमनों के साथ पोप की गद्दी के सम्बन्धों का वास्तविक वर्णन करता है जब 1076 ई० के एक पत्र में वह कहता है कि वे ईश्वर के बाद केवल सन्त पीटर को ही अपना स्वामी तथा सम्राट बनाना चाहते हैं।[8]

1073 ई० तथा 1077 ई० में ग्रेगोरी सप्तम द्वारा लिखे गए पत्रों में स्पेन पर भी बहुत कुछ दावा प्रदर्शित किया गया है। पहला स्पेन के कुछ भागों को सारसेनों (Saracens) से वापस लाने के लिए प्रस्तावित प्रयत्नों के विषय में लिखा गया है तथा ग्रेगोरी दावा करता है कि स्पेन का साम्राज्य पर प्राचीन काल से ही सन्त पीटर का स्वामित्व था तथा अब भी यद्यपि मूर्ति पूजकों ने उस पर अधिकार कर रखा है वह किसी मरणधर्मा मनुष्य के स्वामित्व में न होकर पोप की गद्दी के स्वामित्व में है। अतः उसने उसे काउन्ट इवूलुस डिरोसियो (Count Evulus de Roceio) को प्रदान कर दिया है जो इस भूमि को मूर्तिपूजकों से मुक्त करना चाहता है तथा वह जिस भूमि से उनको हटा देगा वह सन्त पीटर की सत्ता से उसके अधिकार में रहेगा।[9] 1077 ई० का पत्र भी इसी दावे को दोहराता है कि स्पेन प्राचीन संविधानों के अनुसार सन्त पीटर तथा रोमन चर्च के अधीन है।[10]

दूसरा दावा जो अत्यन्त उसके पूर्व ग्रेगोरी सप्तम द्वारा किया गया था वह था कि हंगरी का साम्राज्य रोमन पोप के स्वामित्व में है। अक्टूबर 1074 ई० में हंगरी के राजा सोलोमन को लिखे गए पत्र में इस दावे के समर्थन में वह तर्क दिए पहला यह कि राजा स्टीफन द्वारा सभी अधिकारों एवं शक्तियों सहित साम्राज्य को सन्त पीटर को सौंप देने का अभिकथित कार्य, दूसरा यह कि सम्राट हेनरी तृतीय ने हंगरी के राजा पर अपनी विजय के बाद भाला तथा मुकुट को सन्त पीटर की समाधि पर भेज दिया था तथा इस प्रकार उसके स्वामित्व के अधिकार को मान्यता दी थी। उसने जर्मनी के राजा से एक अधीन सामन्त के रूप में राज्य स्वीकार करने के लिए सोलोमन की भर्त्सना की तथा धमकी दी कि वह उस पुनः खो देगा यदि वह स्वीकार नहीं करेगा कि उसका राज्य रोमन पोपत्व के अधीन है जर्मन राजा के अधीन नहीं।[11] अगले वर्ष के पत्रों में ग्रेगोरी ने हंगरी के राजसिंहासन पर गूसा (Geusa) के दावे का इसी आधार पर समर्थन किया कि जर्मन राजा से एक सामन्त के रूप में उसे प्राप्त करके सोलोमन ने अपना अधिकार खो दिया है। यहाँ ग्रेगोरी का कार्य अधिक उल्लेखनीय है क्योंकि इसमें हंगरी पर जर्मन सम्राट के सामन्ती प्रभुत्व के दावों से संघर्ष निहित था।

1075 ई० में रूसिया के राजा डिमट्रियस (Demetrius) को लिखे गए एक पत्र में ग्रेगोरी सप्तम कहता है कि डिमट्रियस का पुत्र रोम आया था तथा अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक प्रार्थना की थी कि वह उस राज्य को सन्त पीटर के अनुदान रूप पोप के हाथों से प्राप्त कर सके। ग्रेगोरी ने यह समझकर कि यह अनुरोध डिमट्रियस की सहमति से किया गया है इसकी अनुमति दे दी तथा सन्त पीटर के नाम पर वह साम्राज्य उसके पुत्र को प्रदान कर दिया तथा यह प्रतिज्ञा भी की कि सभी न्यायसंगत मामलों में वह उस पवित्र धर्मासन का समर्थन प्रदान करेगा।[12] उसी वर्ष के एक दूसरे पत्र में ग्रेगोरी ने डनो

(Danes) के राजा स्वयन (Sweyn) को लिखा कि रोमन पोप के कानून सम्राट के कानूनों से अधिक दूर तक फैले हैं तथा जहाँ तक ऑगस्टस का शासन था वहीं तक ईसा का भी शासन था। स्वयन ने पोप एलेक्जेण्डर द्वितीय का संरक्षण माँगा था तथा ग्रेगोरी जानना चाहता है कि क्या अब भी उसकी वही इच्छा है।[13] 1077 ई के कार्सिकनों (Corsicans) को सम्बोधित एक पत्र में वह उनको बतलाता है कि उनका द्वीप वैधानिक रूप से रोमन चर्च के अतिरिक्त किसी भी दूसरी सत्ता के अधिकार में नहीं है; जो यह मानने से अस्वीकार करता है वे देवद्रोह के दोषी हैं तथा उसे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि वे संत पीटर के अधिकारों को मान्यता देने को प्रस्तुत हैं तथा वह उनको सैनिक सहायता भेजने को तैयार है।[14] 1079 ई में वेजलिन (Wezelin) को लिखे गए एक पत्र में वह उसको चेतावनी देता है कि वह उसके विरुद्ध विचार न उठाये जिसे पोप पद की सत्ता द्वारा डालमेशिया (Dalmatia) में राजा बनाया गया है तथा उसे यह बतलाता है कि वह इस राजा के विरुद्ध जो भी कार्य करेगा रोमन पोप के विरुद्ध होगा।[1] ड्यूसडेडिट ने निष्ठा की उस शपथ को सुरक्षित रखा है जो कि डालमेशिया के साम्राज्य को प्राप्त करने के बाद डेमिट्रियस ने ग्रेगोरी में तथा के प्रति ली थी। वह स्वीकार करता है कि उसका राजत्व का प्रतिष्ठापन पोप के अधिकारों के प्रतीक स्वरूप ध्वजा तलवार दण्ड एवं मुकुट द्वारा हुआ है तथा सामन्ती कर्तव्यों की सुनिश्चित शर्तों की में आज्ञापालन तथा निष्ठा की तथा नियमित रूप से वार्षिक कर प्रदान की प्रतिज्ञा करता है।[16] एक पत्र में ग्रेगोरी ने यहाँ तक दावा किया है कि चार्ल्स महान ने संत पीटर को सैक्सनी का प्रान्त प्रदान किया था तथा सैक्सनी के अधिकार में इसके लिखित प्रमाण हैं।[17] अंत ग्रेगोरी के रजिस्टर में 1081 ई में प्रोवेंस (Provence) के काउन्ट बर्ट्रेण्ड (Bertrand) की एक शपथ है कि वह अपनी सारी वंश परम्परागत गरिमा को ईश्वर संत पीटर संत पाल ग्रेगोरी तथा उसके उत्तराधिकारियों को समर्पित करता है।[18]

रोमन पोप पद की सामन्ती सत्ता का विस्तार करने की इस भरपूर विकसित नीति को तुलना ग्रेगोरी सप्तम द्वारा पासाऊ के अल्टमान को सम्बोधित 1081 ई के एक पत्र के पक्ष से करना न्यायोचित होगा तथा हमारा यह सोचना अयुक्तिसंगत नहीं होगा कि यह पत्र जर्मन साम्राज्य पर भी पोप पद के सामन्ती प्रभुत्व के विस्तार की नीति की अभिलाषा का द्योतक है।

सन्दर्भ

1 Sylveste II Ep
2 Deusdedit Collect C o um 156
3 Ibid 159
4 Alexande II Ep 139
5 William the Conqueror Epistle (Greg VII)
6 Gregory Reg 21 (a)
7 Ibid 11 1( )
8 Ibid 15

9 Id Id ı, 7
10 Id Id i 13
11 Id id ı 63
12 Id d i 74
13 Id id ı 75
14 Id id v 1
15 Id Id vi 11
16 D usded t Coll ct o Can n m 150
17 Id id ı 23
18 Id id 35

चतुर्थ खण्ड

चच एव साम्राज्य 1122 ई० से 1177 ई० तक

प्रथम अध्याय

फ्रेडरिक प्रथम तथा पोप-पद

वाम्स के समझौते ने साम्राज्य तथा चच के बीच तीस वर्षों से अधिक समय तक शांति बनाए रखी तथा जब एक नया सघष प्रारम्भ हुआ तो उसकी परिस्थितियाँ और कारण भिन्न थे। यह कहना अधिक कठिन है कि इस शान्ति की प्रवृत्ति कसी थी कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जो यह मानते हैं कि इस काल मे पोप पद की साम्राज्य पर विजय हो गई थी किन्तु यह बहुत सदिग्ध है कि इस मत का गभीर समयन किया जा सकता है। सत्य यह प्रतीत होता है कि मनुष्य हार्दिक रूप से सघष से ऊब चुके थे तथा किसी भी पक्ष म उसे पुन सुलगाने की बहुत थोडी इच्छा रह गई थी। निस्सदेह यह तक करना बहुत आसान है कि वाम्स के समझौते ने मामले को अतिम रूप से निश्चित नही किया तथा वास्तव मे यह भी सत्य है कि विशप पदों या मठों की नियुक्तियो के प्रश्न पर कोई पूर्ण या अन्तिम समझौता नहीं हुआ था किन्तु यथाशक्त समग्र रूप से इस समझौते का कोई गभीर खण्डन नहीं हुआ तथा जो परिवतन आए वे धीरे धीरे तथा बिना किसी गभीर सघष के आए।

बनहीम का एक उत्कृष्ट प्रबन्ध बहुत स्पष्टता पूवक समझौते की शर्तों के प्रयोग एव याख्या के सम्बन्ध मे विभिन्न की सीमाओं तथा विस्तार को प्रस्तुत करता है।[1] एक ओर तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि समझौते के सम्पादन के एक ही वष के अन्दर उसकी शर्तों का एक सस्करण विद्यमान था जो कि सम्राट की सत्ता को बहुत अधिक बढ़ा देता था—यह उसे विवादास्पद निर्वाचन की दशा मे अधिधर्माध्यक्ष तथा सम्प्रान्तीय विशपो की सम्मति तथा निर्णय के बिना अपनी बुद्धि से ही मामले के निर्णय का अधिकार प्रदान करता था।[2] वाम्स के बाद 1122 या 1123 ई मे हेनरी पचम ने सत पाल के मठ के विवादास्पद निर्वाचन मे अपने न्यायालय से यह निर्णय प्राप्त किया कि विवाद के कारण यह उस की इच्छा पर ही निभर है कि वह चाहे जिसे नियुक्त करे।[3] यह प्रतीत होगा कि यही वह परम्परा थी जिसकी ओर फ्राइजिंग (Freising) के ओटो ने गेस्टा फ्रीडेरिकी (Gesta Friderici) म एक स्थान पर सकेत किया है जिस पर हम बाद मे

विचार करेंगे।[4] किन्तु ऐसा प्रतीत नहीं होता कि हेनरी पंचम के तत्काल उत्तराधिकारी लोथेयर तृतीय तथा कोनाड तृतीय म से किसी ने भी ऐसे अधिकार पर बल देने का कोई प्रयास किया हो।

दूसरी ओर यह प्रतीत होता कि उनम से कुछ जो 1125 ई में लोथेयर का सम्राट रूप म निर्वाचन करवाने वाले थे यह चाहते थे कि समझौते की शर्तें पक्ष के पक्ष म परिवर्तित कर दी जाए। इस निर्वाचन के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विवरण के लेखक के अनुसार मेंज म यह निश्चय किया गया था कि बिशप का निर्वाचन स्वतन्त्र होना चाहिए तथा यह राजा की उपस्थिति एवं भय से नियंत्रित नहीं होना चाहिए तथा सम्राट स्वतन्त्र रूप से निर्वाचित तथा अभिषिक्त बिशप का प्रतिष्ठापन दण्ड द्वारा राज चिन्ह से करें तथा उस समय बिशप यह शपथ ले Salvo qui dem or dinis sui proposito इसका यह अभिप्राय प्रतीत होता है कि यह समझौता हुआ था कि वार्म्स की शर्तों में दो महत्वपूर्ण विषयों म परिवर्तन किया जाए—प्रथम यह कि निर्वाचन सम्राट की उपस्थिति म न हो तथा दूसरा यह कि अभिषेक के बाद न कि पहले लौकिक सम्पदाओं से प्रतिष्ठापन हो।

क्या इस वक्तव्य से यह सिद्ध किया जा सकता है कि इस आधार पर कोई समझौता हुआ था तथा लोथेयर भी इसम एक पक्ष था बहुत सन्दिग्ध है बर्नहीम ने दूसरे ग्रन्थ म इसको स्पष्ट कर दिया है कि लोथयर के वास्तविक शासन ने किसी ऐसे समझौते की पुष्टि नहीं की किन्तु उसने वार्म्स के समझौते की शर्तों को सामान्यत माना।[5]

यदि हम संत बर्नार्ड के जीवन चरित्र के एक वक्तव्य पर विश्वास करें तो लोथयर ने जब उसने 1131 ई म लीज नामक स्थान पर पोप इन्नोसेन्ट द्वितीय से भेंट की तो निस्सदेह पोप-पद के विवादास्पद निर्वाचन का लाभ उठाते हुए उसने पहले की भाँति ही प्रतिष्ठापन को पुन प्रारम्भ करने का आग्रह किया किन्तु इन्नोसेन्ट के पोप की गद्दी पर दावे का सबसे प्रबल समर्थक सन्त बर्नार्ड वहाँ उपस्थित था तथा उसके प्रभाव के कारण पोप की अस्वीकृति म बहुत अधिक प्रेरणा मिली।[7] इस वक्तव्य की पुष्टि कुछ दूसरे उद्धरणों म भी होती है।[8] यह सभव है कि इसी घटना से कुछ सम्बद्ध रूप मे हम इन्नोसेन्ट द्वारा रोम की पुन प्राप्ति तथा जून 1133 ई म लोथयर के सम्राट रूप म अभिषेक के बाद जारी किए गए उसके घोषणा-पत्र को रखना चाहिए जिसम दृढ़ता पूर्वक जर्मन साम्राज्य के बिशपों एव मठाधीशों को जब तक वे उन्हें सम्राट से प्राप्त न कर लें तब तक राज चिह्नों के धारण का निषेध किया गया है।[9] यह सम्भव प्रतीत होता है कि राजकीय माँग को किसी सीमा तक सतुष्ट करने के लिए ही पोप द्वारा इसे जारी किया गया था तथा यह विषय बहुत महत्वपूर्ण था क्योंकि बिशप या एबट को लौकिक एव धार्मिक सत्ता के इसी विभेद पर ही वार्म्स का समझौता आधारित था।

लोथयर के उत्तराधिकारी कोनाड तृतीय की स्थिति की परीक्षा विट्टे (Witte) ने बड़ी सावधानी से उसके राज्यकाल के पादरियों के निर्वाचनों पर लिखे गए प्रबन्ध म की है तथा यह प्रतीत होगा कि कोनाड वार्म्स की शर्तों के कठोर पालन का न तो आग्रह करने में समर्थ था न उसकी वैसा करने की कोई इच्छा ही थी। कभी कभी तथा विशेषतया अपने व्यक्तिगत प्रदेशों म उसने उन पर बल दिया, किन्तु दूसरे समय, तथा उसके साम्राज्य

के दूसरे स्थानों पर वह उनको क्रियान्वित नहीं कर सका था या कम से कम उसने उनको क्रियान्वित नहीं किया। वह प्राय: निर्वाचनों में उपस्थित नहीं रहता था तथा लौकिक सम्पदाओं से प्रतिष्ठापन अभिषेक से पूर्व न होकर बाद में होने लगा। एक मामले में एक विवादास्पद निर्वाचन को राजा के लिए न छोड़कर पोप ने अधिधर्माध्यक्ष तथा प्रांत के बिशपों की राय एवं निर्णय से करके अपने निर्णय करने के अधिकार का दावा किया प्रतीत होता है।[10]

तथापि समग्र रूप से यह कहना सत्य होगा कि वाम्स में समझौते के मूल सिद्धान्तों को पूर्णतया मान लिया गया था—अर्थात् बिशप की धार्मिक स्थिति तथा उसकी लौकिक सम्पत्ति एवं स्वामित्व का अन्तर और इसीलिए जबकि पहली वस्तु प्रदान करना चर्च की सत्ता के अधिकार में था तो दूसरी वस्तु प्रदान करने का अधिकार लौकिक सत्ता को था तथा इस समझौते ने कुछ समय के लिए साम्राज्य तथा पोप के सम्बन्धों में शान्ति ला दी।

अब हम फ्रेडरिक बारबरोसा (Frederick Barbarossa) तथा उसके समकालीन पोपों के बीच सघर्ष के आधारभूत सिद्धान्तों तथा परिस्थितियों का अध्ययन करना है।

फ्रेडरिक प्रथम मार्च 1152 ई० में राजाओं द्वारा फ्रेंकफर्ट नामक स्थान पर निर्वाचित हुआ तथा उसके प्रथम वर्षों में चर्च से सम्बन्धों में शान्ति बनी रही। वास्तव में उसने वाम्स के समझौते द्वारा लौकिक सत्ता को प्रदत्त अधिकारों को बनाए रखा तथा कम से कम एक मामले में उसने उनकी व्याख्या इस ढंग से की जो मूल शब्दों से संगत नहीं थी किन्तु संभवतः उस संस्करण पर आधारित थी जो कोडेक्स उदालरिकी (Codex Udalrici) में सुरक्षित है। फ्राइजिंग के ओटो का गेस्टा फ्रेडरिकी नामक ग्रन्थ में कथन है कि क्यूरिया अर्थात् राजसभा की परम्परा यह थी कि विवादास्पद निर्वाचन के विषय में राजा चाहे जिसे अपने सामन्तों (optimates) की राय से बिशप नियुक्त कर देता था।[11] स्पष्टतः इसी दावे के कारण ही फ्रेडरिक ने 1152 ई० में वाइडमेन (Weidmann) को जो जाइत्स (Zeitz) का बिशप था मेग्डेबर्ग का आर्चबिशप नियुक्त कर दिया। पोप यूजीनियस तृतीय (Eugenius III) ने जर्मनी के बिशपों को लिखे गए पत्र में नियुक्ति को अस्वीकार कर दिया किन्तु वह इस आधार पर नहीं था कि वाम्स के समझौते की व्यवस्था के अनुसार राजा को सम्राट के रूप में ऐसे विषय का निर्णय केवल अधिधर्माध्यक्ष तथा सम्प्रान्तीय बिशपों की सम्मति से करना है अपितु इस आधार पर कि फ्रेडरिक ने निर्वाचकों के अधिकारों का अतिक्रमण किया है।[1]

दूसरी ओर फ्रेडरिक ने अपने पक्ष में अपने को पोप की मांगों को पूरा करने का इच्छुक प्रदर्शित किया। फ्रेडरिक तथा उसके युग के पोपों के सम्बन्ध कान्सटेंस की सन्धि के शब्दों में सबसे अधिक अच्छी तरह से सुरक्षित हैं जो कि 1153 ई० में की गई थी। इस सन्धि के द्वारा फ्रेडरिक ने यूनानियों नारमनों तथा रोम के विद्रोहियों के विरुद्ध पोप की सहायता करने की प्रतिज्ञा की जबकि पोप ने उसे सम्राट के रूप में अभिषिक्त करने तथा उसके साम्राज्य के न्याय तथा गरिमा पर आक्रमण करने वाले किसी भी व्यक्ति को धर्म बहिष्कृत करके उसका समर्थन करने तथा यूनानियों का मुकाबला करने की प्रतिज्ञा की।[13]

1155 ई. में रोम में फ्रेडरिक का सम्राट के रूप में अभिषेक हुआ। तथापि 1156 ई. में पोप की नीति परिवर्तित प्रतीत होती है। जब कान्सटेन्स की संधि हुई थी, पोप के सम्बन्ध नारमनों के साथ खराब थे तथा वह उनके विरुद्ध फ्रेडरिक से समर्थन की अपेक्षा करता था। किन्तु 1156 ई. में हैड्रियन चतुर्थ ने नारमनों से समझौता कर लिया तथा नए सम्बन्धों को बेनेवन्टम की संधि का रूप दिया गया। इस संधि की सबसे महत्वपूर्ण राजनतिक व्यवस्था थी कि हैड्रियन ने विलियम, उसके पुत्र रोजर तथा उनके उत्तराधिकारियों को सिसली का राजा, एपूलिया का ड्यूक तथा नेपल्स, सालेरनो, अमल्फी तथा उनके क्षेत्रों सहित कापुआ का राजा मान लिया, जबकि उनके द्वारा पोप हैड्रियन, उसके उत्तराधिकारियों तथा रोमन चर्च के प्रति निष्ठा की शपथ ली गई तथा उनके प्रति स्वामिभक्ति प्रदर्शित की गई।[14]

तथापि 1157 ई. तक फ्रेडरिक एवं हैड्रियन चतुर्थ में कोई गंभीर विवाद उपस्थित नहीं हुआ तथा तब भी वह किसी नीति के वास्तविक प्रश्न पर नहीं अपितु पोप द्वारा प्रयुक्त एक वाक्य पर हुआ जिसमें यह निहित प्रतीत होता था कि फ्रेडरिक ने इस साम्राज्य को पोप के अधीनस्थ सामन्त के रूप में प्राप्त किया है। उसकी परिस्थितियाँ इस प्रकार थीं स्वीडन में स्थित लुण्ड (Lund) के आर्चबिशप एस्कील को रोम से लौटते समय बरगंडी के कुछ विद्रोहियों द्वारा बन्दी बना लिया गया तथा बन्धक के रूप में रख लिया गया। कुछ कारणों से फ्रेडरिक ने उसे मुक्त कराने या अपराधियों को दण्ड देने के लिए सक्रिय कदम नहीं उठाए तथा हैड्रियन चतुर्थ ने उसे सितम्बर में प्रतिवाद स्वरूप लिखा। उसे हस्तक्षेप करने के कर्तव्य का ध्यान दिलाते हुए वह उस प्रसन्नता एवं स्नेह का स्मरण दिलाता है जिससे कि रोमन चर्च ने उसका स्वागत किया था, उस पर साम्राज्यिक मुकुट के साथ पूर्ण प्रतिष्ठा तथा गरिमा प्रतिष्ठित की थी तथा वह उसे और भी अधिक जागीर (Beneficia) प्रसन्नता से देने को प्रस्तुत रहेगा।

यह पत्र फ्रेडरिक के पास तब पहुँचा जबकि वह बर्सेंसों में एक सभा का सचालन कर रहा था तथा फार्निंग के शब्दों की सूचना के अनुसार राजाओं में इसने प्रचण्ड रोष उत्पन्न किया क्योंकि इसका अर्थ उनके द्वारा यह समझा गया कि जर्मन सम्राट साम्राज्य एवं इटली के राज्य को पोप के प्रदान करने के कारण धारण कर रहे थे। आगे के अनुसार वे इसे स्मरण करके बहुत विचलित हुए कि लेटेरन के महल में सम्राट लोथेयर तृतीय के चित्र के नीचे एक लेख इन शब्दों में लिखा है।

Rex venit ante foras iurans prius urbis honores Post homo fit papae sumit quo dante coronam[15]

हैड्रियन के पत्र के पठन से उत्पन्न क्षोभ उन अविवेकपूर्ण शब्दों के प्रयोग से और भी बढ़ गया जो एक पोप के प्रतिनिधि द्वारा प्रयुक्त कहे गए थे, "यदि पोप द्वारा उसे साम्राज्य नहीं दिया गया तो किसके द्वारा दिया गया?" और उन प्रतिनिधियों की हत्या कर दी जाती यदि फ्रेडरिक हस्तक्षेप न करता तथा उन्हें उनके निवास स्थान को भेजकर बिना विलम्ब किए दूसरे ही दिन रोम जाने की आज्ञा नहीं देता।[16]

अक्टूबर में फ्रेडरिक ने एक परिपत्र जारी किया जिसमें पोप के प्रतिनिधिमंडल के

साथ घटी घटनाओं तथा हैड्रियन के पत्र वस्तु का विवरण दिया गया था। उसने शिकायत की कि चर्च का अध्यक्ष जो कि ईसा की शांति तथा दयालुता का प्रतीक होना चाहिए बुराई का साधन व झगड़े का कारण बन गया है तथा उसने घोषणा की कि उसे साम्राज्य तथा राजत्व राजाओं के निर्वाचन द्वारा केवल ईश्वर से प्राप्त हुआ है जिसने संसार को दो तलवारों के अधीन बनाया है तथा जो भी यह प्रतिपादित करे कि उसने शाही मुकुट को सामन्त के रूप में पोप द्वारा प्राप्त किया है उस पर उसने संत पीटर के सिद्धान्तों की अवहेलना का आरोप लगाया जिसने मनुष्यों को ईश्वर से डरने तथा राजा का सम्मान करने की आज्ञा दी थी।[37]

इस बीच अपने प्रतिनिधियों से किए गए व्यवहार से तथा उन उपायों से जो उसके आरोप के अनुसार फ्रेडरिक ने जर्मनी से किसी को भी पोप के स्थान पर जाने से रोकने के लिए उठाए थे पोप बहुत विक्षुब्ध हुआ तथा उसने फ्रेडरिक के आचरण की शिकायत करते हुए जर्मनी के आर्चबिशप तथा बिशपों को पत्र लिखा जिसमें उसके कार्यों को रोकने तथा उसे अधिक तर्क संगत नीति अपनाने के लिए राजी करने का आग्रह किया। यह उल्लेखनीय है कि उसने स्वीकार किया कि गड़बड़ का मूल कारण उसके द्वारा किया गया शब्द प्रयोग है। Insigne videlicet coronae tibi beneficium contulimus किन्तु उसने अब तक इस वाक्य की कोई सफाई नहीं दी।[38] जर्मन बिशपों ने शिष्टता तथा आदर पूर्वक किन्तु दृढ़ता से उत्तर दिया कि पहले पत्र में प्रयुक्त शब्द ही सभी झगड़े की जड़ थे तथा वे इतने अस्वाभाविक अपूर्व तथा दुर्भाग्यपूर्ण द्वयर्थक थे कि वे न तो उनका समर्थन कर सकते हैं न उनको स्वीकार कर सकते हैं। जैसी पोप ने इच्छा की थी वे सम्राट से इस मामले में बातचीत कर चुके हैं तथा वे उसका उत्तर सूचित कर रहे हैं। इसमें फ्रेडरिक ने यह स्पष्ट कर दिया कि यद्यपि वह पोप के प्रति सभी उचित सम्मान प्रदर्शित करने का इच्छुक है वह वैधानिक एवं परम्परागत शब्दावली के किसी परिवर्तन को सहन नहीं करेगा। उसने दैवी अनुग्रह (Beneficium divinum) के कारण प्राप्त राजमुकुट की स्वतन्त्रता का दावा किया तथा कुछ विस्तार से निर्वाचन तथा राज्यारोहण के क्रम का वर्णन किया। उसने इसे अस्वीकार किया कि कार्डीनलों के प्रति उसका व्यवहार पोप के प्रति घृणा से प्रभावित है किन्तु वह उन्हें कोई ऐसा दस्तावेज ले जाने की अनुमति नहीं दे सकता जो साम्राज्य के लिए हानिप्रद हो। उसने किसी को भी उचित कार्य से इटली से आने या जाने को मना नहीं किया है किन्तु वह उन दुरुपयोगों को रोकने के लिए कृतनिश्चय है जिनसे कि साम्राज्य के चर्च नष्ट हुए हैं और पुनः स्पष्टतः पहले उल्लिखित चित्र का उल्लेख करते हुए वह कहता है कि जो बात पहले एक चित्र में प्रारम्भ हुई थी वह लेख के रूप में आने लगी है तथा अब इस लेख को अधिकारपूर्ण बनाने का प्रयास किया जा रहा है। वह इसे सहन नहीं करेगा तथा साम्राज्य का इतना अनादर होने देने की अपेक्षा अपना सम्राट पद छोड़ देने को उचित समझेगा। यदि राजकीय सत्ता तथा धार्मिक सत्ता के बीच मित्रता स्थापित करनी है तो इस प्रकार के चित्र नष्ट कर देने चाहिए तथा ऐसे पत्र वापस लिए जाने चाहिए।

बिशप आगे लिखते हैं कि उन्होंने सम्राट से जिन्हें वे स्पष्टतया अशांति उत्पन्न करने

वाली सूचना समझते हैं जिसकी [redacted] विनियम तथा रोजर के साथ संधि के विषय में सुना है निस्सदेह यह उल्लेख बेनेवेण्टम की संधि के बारे में है जो हैड्रियन चतुर्थ तथा सिसली के विलियम प्रथम के बीच 1156 ई में हुई थी तथा उन्होंने दूसरी संधियों के बारे में भी सुना है।[19]

जून 1158 ई में पोप के दूत ऑग्सबर्ग में स्थित फ्रेडरिक के पास हैड्रियन चतुर्थ से पत्र लेकर आए जिसमें पोप ने बुरा लगने वाले वाक्यों का स्पष्टीकरण देने की सावधानी रखी थी जिन्हें उसके अनुसार गलत समझा गया। उसने घोषणा की कि बेनेफीसीयम (Beneficium) शब्द का उस पत्र में यह तात्पर्य नहीं जाता कि समझा गया है। उसका अर्थ जागीर नहीं किन्तु केवल लाभ है तथा यह उन व्यक्तियों की सुविचारित ईर्ष्या है जो चर्च तथा साम्राज्य की शांति नहीं चाहते हैं जिनके द्वारा उसकी गलत व्याख्या की गई है।[20] फ्रेडरिक ने इस स्पष्टीकरण को मित्रतापूर्ण ढंग से ग्रहण किया तथा कुछ समय के लिए रोम से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध पुनः स्थापित हो गए।

इन परिस्थितियों के महत्व के बारे में स्पष्ट निर्णय पर पहुँचना सुगम नहीं। यह समझना अति कठिन है कि हैड्रियन ने सम्राट से झगड़ा करने की इच्छा क्यों की होगी तथा उसने यह ढंग क्या चुना होगा। उसने इस शब्द का प्रयोग जानबूझकर किया [redacted] पक्ष में एक मात्र महत्वपूर्ण तर्क यही तथ्य है कि उसने जर्मन बिशपों के पत्र में इसका स्पष्टीकरण क्यों नहीं किया? सम्पूर्ण रूप से यह बहुत संदिग्ध प्रतीत होता है कि हैड्रियन के वाक्य पद उसके इस निश्चय को बताने के लिए जानबूझकर प्रयोग किए गए थे कि वह सम्राट को पवित्र पोप पद के अधीन एक जागीरदार समझता है यह अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि असावधानी से ही उनका प्रयोग किया गया था। तथापि इस ओर ध्यान देना बहुत महत्वपूर्ण है कि जर्मन बिशपों ने इस सम्भावित दावे का तत्काल सशक्त खण्डन किया तथा पोप ने भी इसका स्पष्टीकरण देने की सावधानी दिखाई।

1159 ई में हैड्रियन चतुर्थ की मृत्यु से कुछ समय पहले फ्रेडरिक तथा हैड्रियन चतुर्थ के बीच फिर झगड़ा उठ खड़ा हुआ। बम्बर्ग के बिशप ने साल्जबर्ग को लिखे गए एक पत्र में जिसे फ्राइजिंग के ओटो ने गेस्टा फ्रिडरिकी में उद्धृत किया है सूचना दी कि पोप ने बहुत महत्वपूर्ण माँगें करते हुए फ्रेडरिक के पास दो कार्डीनलों को भेजा था तथा कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्तों को निश्चित किया। उसने घोषणा की कि सम्राट को पोप को बताए बिना रोम को कोई दूत नहीं भेजने चाहिए क्योंकि नगर पर अधिकार और सभी राज चिह्नों पर संत पीटर का स्वामित्व था। इटली के बिशपों को बिना सम्मान अर्पित किए सम्राट के प्रति निष्ठा की शपथ लेनी थी तथा उनके द्वारा सम्राट के दूतों का अपने महलों में स्वागत करने की आवश्यकता नहीं थी। उसने रोमन चर्च को टाइबर फरेरा मस्सा काउन्टेस माटिल्डा का सम्पूर्ण क्षेत्र एक्वापेन्डेन्टे से रोम तक का सम्पूर्ण क्षेत्र स्पोलेटो का ड्यूक क्षेत्र तथा सार्डीनिया और कार्सिका के टापू लौटाने की माँग की।[21]

उसके उत्तर में फ्रेडरिक ने पहले तो यह कहा कि इस महत्वपूर्ण विषय का उत्तर वह अपने सामन्तों से राय लिए बिना नहीं दे सकता तथापि अस्थायी रूप से उसने यह उत्तर दिया यदि वे राजचिह्नों का त्याग करने को राजी हों तो वह इटली के बिशपों से कर

नहीं मांगेगा। वह यह मानने को राजी था कि बिशपों को राजदूता का स्वागत अपने मन्लो में करने की आवश्यकता नही थी यदि वे उस भूमि पर बने हो जो बिशपों की अपनी है किन्तु यदि व सम्राट की भूमि पर बन ा न े व स्वत म वे सम्राट के ही मन्त ये। पोप की इस माग के बारे म कि उस रोम को दूत नहीं भेजने चाहिए क्योंकि यहाँ का सम्पूर्ण शांति तथा व्यवस्था पर सन पीटर का स्वामित्व है उसने कहा कि यह एक गम्भीर मामला है जिस पर सावधानी से विचार की आवश्यकता है क्योंकि यदि रोम के नगर पर सम्राट का अधिकार नही है तो स्पष्ट भय यही होगा कि उसकी राजकीय सत्ता का केवल नाम तथा दिखावा मात्र है।

ऐसा प्रतीत होता है कि लगभग इसी समय हैड्रियन ने कान्सटेन्स म पोप यूजेनियस तृतीय के साथ 1153 ई म हुई सधि के पुनर्नवीकरण की मांग की किन्तु जसा फ्रेडरिक द्वारा साल्जबर्ग के आर्चबिशप को लिखे गए पत्र से ज्ञात होता है फ्रेडरिक ने इस आधार पर इसे अस्वीकार कर दिया कि हैड्रियन ने बेनेवेन्टम म सिसली के विलियम के साथ 1156 ई म सधि करके उक्त सधि की शर्तों का उल्लघन किया है। फ्रेडरिक की मान्यता थी की यह कान्सटेन्स के समझौते का उल्लघन है कि पोप ने उससे राय लिए बिना ही सिसली के राजा से सधि कर ली।[23]

इस प्रकार उठाए गए प्रश्न निस्सन्देह गम्भीर एव दूरगामी थे तथा एक गभीर परिस्थिति उत्पन्न कर देते किन्तु इसी समय दूसरे अधिक गम्भीर प्रश्न उठ खड़े हुए।

1159 ई म हैड्रियन चतुर्थ का देहावसान हो गया तथा उसकी मृत्यु के बाद पोप पद का दोहरा निर्वाचन हो गया। रोलेण्ड को एलेक्जेण्डर तृतीय के रूप म तथा आक्टेवियन को विक्टर चतुर्थ के रूप म चुना गया। इस परिस्थिति का बहुत स्पष्ट वर्णन राइखसबर्ग के गेरहोह के एक ग्रन्थ म किया गया है। वह जर्मनी के सुधारवादी पादरियों म सर्वाधिक उत्साही था किन्तु उसने कुछ समय के लिए प्रतिस्पर्धी दावेदारों की ओर अनिश्चित दृष्टिकोण अपनाए रखा। यह इस मामले म स्पष्ट था कि जहाँ तक निर्वाचन का प्रश्न है एलेक्जेण्डर को वैधानिक एव सैद्धान्तिक रूप से कार्डिनलो के बहुमत द्वारा निर्वाचित किया गया है किन्तु दूसरी और उसने गभीरतापूर्वक तथा पूर्ण दायित्व से विक्टर के समर्थकों की इस मान्यता की सूचना दी है कि एलेक्जेण्डर तथा उसका निर्वाचन करने वाले कार्डीनल दोनों ही सम्राट के विरुद्ध षडयन्त्र म लीन थे। यह आरोप लगाया गया कि हैड्रियन चतुर्थ की मृत्यु से पहले ही उन सबने सिसली के राजा विलियम मिलान के निवासियों तथा साम्राज्य के दूसरे शत्रुओं से समझौता कर लिया था उन लोगों ने एक शपथ द्वारा अपने को बाध लिया था कि हैड्रियन की मृत्यु के बाद व पोप पद पर किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं चुनेंगे जो षडयन्त्र मे उनके साथ नहीं है तथा उनको विलियम तथा मिलानवासियों द्वारा यह प्रतिज्ञा करने के लिए रिश्वत दी गई कि फ्रेडरिक को धर्म बहिष्कृत किया जाएगा तथा उनकी स्वीकृति के बिना पुन धर्म-बहिष्कार समाप्त नहीं होगा।[4]

इन परिस्थितियों में फ्रेडरिक ने दो सिद्धान्त प्रस्तुत किए। पहला यह कि चर्च की एक सामान्य-सभा द्वारा पोप-पद के दोनो अभिलाषियों के दावों का अध्ययन किया जाए तथा

न्यायालय तथा परिषद् बुलाने का आदेश दिया है (Indicimus Celebrandum) जिसमें उसने आर्चबिशपों बिशपों मठाध्यक्षों तथा दूसरे धार्मिक व्यक्तियों को बुलाया है ताकि लौकिक न्याय को सम्पूर्णतया दूर हटा कर चर्च के इस महत्त्वपूर्ण विषय का निर्णय केवल धार्मिक व्यक्तियों द्वारा इस रूप में हो कि ईश्वर का सम्मान हो सके तथा कोई भी रोमन चर्च को पवित्रता तथा न्याय से वंचित न कर सके तथा रोम नगर में शांति स्थापित हो सके। अतः वह ईश्वर तथा कैथोलिक चर्च के नाम पर उनको परिषद् में उपस्थित होने तथा धार्मिक पुरुषों के निर्णयों को सुनने तथा मानने की आज्ञा तथा समादेश करता है।[6] ये सिद्धान्त वही हैं जो जर्मन बिशपों के पत्र में हैं किन्तु फ्रेडरिक रोमन चर्च की सुरक्षा तथा दयाभाव के विशेष कर्त्तव्य पर बल देता है तथा वह इस सन्देह का बलपूर्वक खण्डन करता है कि विवादास्पद प्रश्न के निर्धारण में योगदान के अधिकार का लौकिक सत्ता द्वारा दावा किया गया है। तथापि वह एलेक्जेण्डर को परिषद् में उपस्थित होने के लिए बुलाने में अधिकारपूर्ण स्वर का प्रयोग करता है।

यह ध्यान देना महत्त्वपूर्ण है कि एक दूसरे पत्र में फ्रेडरिक की स्थिति ठीक वही नहीं है। इसमें वह साल्ज़बर्ग के आर्चबिशप से प्रार्थना करता है कि वह उससे राय लिए बिना किसी भी पक्ष को समर्थन न दे ताकि साम्राज्य में किसी भी प्रकार की फूट न पड़े। वह कहता है कि उसने फ्रांस तथा इंगलैंड के राजाओं को केवल एक ऐसे प्रत्याशी का समर्थन करने को कहा है जिस पर वे तीनों सहमत हो जाएं। वह यह कह कर उपसंहार करता है कि वह किसी भी ऐसे व्यक्ति को पोप नहीं मानेगा जिसे निष्ठावानों ने एकमत से न चुना हो।[27] यहां फ्रेडरिक का स्वर कुछ भिन्न है। यद्यपि वह चर्च के सामान्य निर्णय को ही अधिकारी सत्ता मानता है जिसके द्वारा मामले का निर्णय अंतिम रूप से होगा किन्तु साथ ही साथ वह इस प्रकार की भाषा का प्रयोग कर रहा है मानो उसे तथा फ्रांस और इंगलैंड के राजाओं को न्यायसम्मत प्रत्याशी को मान्यता देने की कुछ सत्ता या अधिकार हो। किन्तु यह कहा जा सकता है कि यह सम्पूर्ण चर्च के निर्णय की घोषणा से पूर्व के समय की ही ओर संकेत करती है।

एलेक्जेण्डर तृतीय ने उसको सम्बोधित इस चुनौती को स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं किया किन्तु तुरंत ही दृढ़ता से सम्राट के कार्य तथा इस दावे का कि सम्पूर्ण चर्च इस मामले का निर्णय देने का अधिकारी है खण्डन एवं निन्दा की। उसके वक्तव्य का स्वर शिष्ट था किन्तु उसका दृष्टिकोण समझौते से विमुख था।

उसने मान लिया कि अपनी विशेष स्थिति के कारण सम्राट रोमन चर्च का समर्थक तथा विशेष संरक्षक था तथा उसे विश्वास दिलाया कि वह उसका सभी राजाओं से अधिक सम्मान करता है किन्तु उसको ईश्वर का अधिक सम्मान करना चाहिए तथा उसे आश्चर्य है सम्राट रोमन चर्च को वह सम्मान प्रदान करने को प्रस्तुत नहीं जो न्यायोचित रूप में उसका है। वह कहता है कि उसे सम्राट के पत्र से विदित होता है कि उसने पांच राष्ट्रों के धार्मिक पुरुषों की एक परिषद् बुलाई है किन्तु ऐसा करने में उसने अपने पूर्वाधिकारियों की परम्परा का उल्लंघन किया है क्योंकि उसने रोमन पोप की जानकारी के बिना ऐसा किया है तथा उसे उपस्थित होने को बुलाया है मानो वह उससे ऊपर

अधिकार रखता हो क्योंकि ईसा ने सन्त पीटर को तथा उसके माध्यम से रोमन चर्च को यह विशेषाधिकार दिया है कि वह सभी चर्चों के मामलों का विचार तथा निर्णय करेगा तथा स्वयं किसी के भी निर्णय से परे होगा तथा इस विशेषाधिकार की रक्षा वह प्राण देकर भी करेगा। अतः सैद्धान्तिक परम्परा तथा पवित्र धर्माचार्यों की सत्ता उसे सम्राट के न्यायालयों में उपस्थित होने तथा उसके निर्णय को ग्रहण करने का निषेध करती है तथा यदि वह अपने अज्ञान अथवा दुर्बलचित्तता के कारण चर्च को दासता के स्तर पर लाने का अपराध करेगा तो वह कठोरतम निन्दा का पात्र होगा।[28]

इसलिए जब *1160* ई. के पूर्वार्द्ध में परिषद् की सभा पाविया में हुई तो अलेक्जेण्डर तृतीय का कोई प्रतिनिधि नहीं था किन्तु विक्टर का मामला सभा के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। उसके प्रतिनिधि ने दावा किया कि उनका विधिवत् निर्वाचन व पदारोहण हुआ है तथा रोमन पादरियों द्वारा उसे मान्यता दी गई है जबकि एलेक्जेण्डर के विरुद्ध में विशेषतया उसने कहा कि वह साम्राज्य को उच्छिन्न करने के प्रयत्न में भागीदार है तथा षड्यन्त्रकारियों ने सिसली के राजा तथा मिलनवासियों से यह समझौता कर लिया था कि हैड्रियन चतुर्थ की मृत्यु होने पर वे अपने में से एक को पोप चुन लेंगे।[29]

परिषद् का निर्णय हमारे सम्मुख दो रूपों में सुरक्षित है, एक स्वयं परिषद् द्वारा प्रकाशित विज्ञप्ति पत्र के रूप में तथा दूसरा सम्राट के द्वारा परिषद् के निर्णय से सहमति व्यक्त करने वाले सार्वभौम पत्र के रूप में। परिषद् का पत्र पहले यह घोषित करता है कि मामले की उनके द्वारा सैद्धान्तिक तथा वैधानिक रूप में परीक्षा कर ली गई है (remoto omni s culari ind cio) तथा यह सिद्ध हुआ कि विक्टर सन्त पीटर की समाधि पर कार्डीनलों के अधिक समझदार वर्ग द्वारा (Saniori parte) जनता की प्रार्थना पर तथा रोमन पादरियों की अभिलाषा तथा सहमति से चुना गया था। वे मानते हैं कि बीस में से भी कार्डीनलों ने उसके निर्वाचन को सम्मति दी है किन्तु वे इसे अस्वीकार नहीं करते कि वे अल्पमत में थे। वे इस बात पर अधिक बल देते हैं कि वह रालेण्ड (एलेक्जेण्डर तृतीय) से बहुत दिनों पूर्व निर्वाचित हो गया था तथा इसके महत्त्व को प्रदर्शित करने के लिए वे एक ग्रन्थ का उल्लेख करते हैं जिसे वे (Liber de Ritu et ordinatione Romanorum Pontifi um) कहते हैं तथा यह प्रदर्शित करते हैं कि इस पोप इन्नोसेन्ट द्वितीय के निर्वाचन से सम्बन्धित विवाद में महत्त्वपूर्ण माना गया था। वे इस पर बल देते हैं कि रोलण्ड को परिषद् में निमन्त्रित किया गया था (remoto omni seculari indicio) किन्तु उसने तथा उसके प्रधान पादरियों ने चर्च की किसी भी जाँच अथवा निर्णय को मान्यता देना अस्वीकार कर दिया। वे... [illegible] भी विवरण देते हैं। अन्त में वे घोषणा करते हैं कि परिषद् ने यह निर्णय किया कि विक्टर का निर्वाचन [illegible] तथा चर्च के निर्णय को मानने को तैयार या पुष्ट और रौशन किया जाए तथा रोलेण्ड का निर्वाचन अवैध घोषित हो। वे इतना और कहते का ध्यान रखते हैं कि यह सब किसी लौकिक हस्तक्षेप के बिना कर लेने के बाद परिषद् की राय तथा प्रार्थना पर तथा सभी [illegible] एवं पादरियों के पश्चात् सम्राट ने अन्त में विक्टर के निर्वाचन को स्वीकार किया तथा उसके बाद उपस्थित राजाओं एवं

विशाल जनसमूह ने अपनी सहमति दी।[30]

फ्रेडरिक के विश्व पत्र में एलेक्जेण्डर द्वारा पाविया की परिषद् में उपस्थित होने से अस्वीकार करने का वर्णन है किन्तु अन्यत्र के प्रमाणों पर अधिक बल दिया गया है। वह कहता है कि परिषद् कोई लौकिक न्यायालय नहीं थी क्योंकि वह किसी भी अभियोजक की उपस्थिति के बिना ही बैठी तथा मामले पर विचार किया किन्तु एलेक्जेण्डर ने चर्च की जाँच को स्वीकार करने से यह घोषणा करके मना कर दिया कि उसे सभी मनुष्यों का निर्णय करने का अधिकार है परन्तु उसका निर्णय कोई नहीं कर सकता। परिषद् का निर्णय अन्यत्र के स्पष्ट प्रमाणों के आधार पर किया गया। तथा इस आधार पर कि विक्टर के विरुद्ध इसके अतिरिक्त कुछ भी आरोप नहीं था कि उसका निर्वाचन कार्डीनलों के अल्पमत से हुआ है अतः इसने (परिषद्) एलेक्जण्डर को दोषी माना तथा विक्टर के निर्वाचन की पुष्टि की। फ्रेडरिक चर्च के निर्णय को मानकर अपनी सहमति प्रदान करता है तथा विक्टर को विश्वव्यापी चर्च का शासक एवं पिता घोषित करता है।[31]

परिषद् का पत्र विक्टर के निर्वाचन की न्यायसंगतता एवं औचित्य पर अधिक बल देता है तथा फ्रेडरिक का साम्राज्य के विरुद्ध षड्यन्त्र पर किन्तु वे दोनों यह प्रतिपादन करने में एकमत हैं कि यह निर्णय चर्च का है लौकिक सत्ता का नहीं तथा एलेक्जेण्डर ने चर्च द्वारा निर्णय के लिए अपना मामला प्रस्तुत करना अस्वीकार किया।

इस प्रकार जो संघर्ष 1160 ई० में प्रारम्भ हुआ सत्रह वर्ष अर्थात् 1199 ई० में वेनिस की संधि तक चलता रहा जब फ्रेडरिक लाम्बार्ड नगरों की माँग को मानने तथा एलेक्जेण्डर तृतीय को मान्यता देने को विवश हो गया। हमारे उद्देश्य के लिए इन वर्षों के इतिहास का सम्प्रति विवरण देना आवश्यक नहीं अतः हम पुनः एक परवर्ती ग्रन्थ में नगरों की माँग में वर्तमान राजनीतिक सिद्धान्तों पर विचार करेंगे यहाँ हमारा सम्बन्ध लौकिक एवं धार्मिक सत्ताओं के बीच विवादास्पद प्रश्नों से है।

सन्दर्भ

1 E. Bernh m, Z r Cesch cht des W rmser Conco data Cord x Ud Iric; 214
3 Cas um Sa cti G lli Contd ; 8 (M G H Scriptores vol)
4 Otto of Fre sing Gesta Friderici
5 N rratio d elect one Lotharii n Regem Romanorum 6 (M G H S S iii 511)
6 E Ber he m Lothar III unddas Worme Co co dat
7 V ta Sancti Bernhardi 1,5 (M gne P L. 1 185)
8 Cf B rnheim op cit pp 37 38
9 M G H Legum Sect 1 Con stit ti nes v l ; 116
10 H W tte Fo schungen zur Geschi hte des W rmer Concordat
11 Otto of Fre s ng Gesta Friderici ; (p 392)
12 Id. d (pp 393 394)
13 M G H Leg Sect. Const ; 144 145
14 H dri ni IV et W lhelmi Regis Co ncordia Ben ve tana (n J m Watt r ch Pontificum Romanorum V tae vol p 35

15 सम्भव है जैसा Wilmar (the editor of the Gesta Friderici in M G H Scriptores vol xx) ने बताया है Lothair III या Innocent II द्वारा territory (allodium) of the Countess Mathilda के प्रश्न का इस लेख द्वारा गलत अर्थ न लिया गया होगा।
16 Ott f Fre s g Gest F de c 10
17 M G H Leg Se t Con t i 165
18 Id d 166
19 Id d 167 (2)
20 Id d 168
21 G ta F ide c v 34
22 M G H Leg Sect IV Const of i 179
23 Id id 180
24 Ge hoh of R chersbe g (De I vest gat oo e Ant chri t i 53
25 Id id 182
26 Id d 184
27 Id d 181
28 M G H Leg Sect IV Co t of i 185
29 Id d 187 188
30 Id d 190
31 Id id 189

द्वितीय अध्याय

सैलिस्बरी का जॉन

सलिस्बरी के जान का पोलीक्रटिक्स (Policrati us) 1115 ई तथा 1159 ई के बीच हेड्रियन चतुर्थ के पोप पद के कार्यालय म लिखा गया था[1] तथा इसलिए उस युग की रचना ह जबकि पोप तथा सम्राट क बीच पहले से कुछ सघष विद्यमान था तथा उस युग से पूव का रचना ह जब योरोप मे एलक्जेण्डर तृतीय तथा फ डरिक प्रथम के बीच सघष छिडा तथा इगलड म हनरी द्वितीय तथा थामस ए बेकेट के बीच स्थानीय किन्तु महत्त्वपूण विवाद छिडा। इस प्रकार लौकिक एव धार्मिक सत्ता क सम्बन्धो क बारे मे विचारा की प्रवृत्ति के प्रमाण क रूप म इसका अध्ययन लाभदायक ह क्योकि यह एक ऐसे समय म लिखी गई थी जबकि मनुष्या की भावनाए उग्र सघष से उत्तजित नहीं हुई थी किन्तु इसमे क्षतिपूरक कमी यह भी ह कि किसी सीमा तक इसम वचारिक तथा सामान्यीकृत सिद्धान्तो का प्रतिनिधित्व ह जिनक वास्तविक महत्त्व की विशिष्ट तथा व्यावहारिक प्रश्नो के सन्दभ म व्याख्या का आवश्यकतानुसार परीक्षण नही किया गया। जसा हम देखगे सलिस्बरी के जान तथा आगसबग के होनोरियस की सद्धान्तिक स्थिति मे पारस्परिक सम्बन्धा क कुछ रोचक सूत्र हैं तथा लगभग यह प्रतीत होता ह कि प्रथम महान् सघष क समाप्त होने तक उस युग क व्यावहारिक प्रश्नो क आधारभूत सिद्धान्ता क वचारिक विकास पर मनुष्य विचार करन लग थ।

जान एक उग्र चचवा। स्थिति का प्रतिनिधित्व करता ह। वह न क्वल लौकिक सत्ता द्वारा चच पर प्रत्येक आक्रमण की कठोर निन्दा तथा लौकिक कानून का अन्य सब कानूनो स श्रेष्ठ होने का खण्डन ही करता ह वरन् वह बहुत स्पष्टता स धार्मिक सत्ता तथा उसके कानूनो का लौकिक स श्रेष्ठ होन का प्रतिपादन भी करता ह। साथ ही वह निस्सकोच रूप स धार्मिक सत्ताधारियो द्वारा अवध धनापहरण की आलोचना करता ह तथा चच के निरकुश शासक की उतनी ही कठोरता स निन्दा करता ह जितनी कि वह लौकिक निरकुश शासक की करता ह। हम इसी क्रम मे दोनो ही स्थितियो का विचार करना चाहिए क्योकि प्रत्यक महत्त्वपूण ह।

एक स्थान पर वह अयोग्य व्यक्तियों की धार्मिक पदों पर नियुक्ति के ऊपर विचार करता है तथा राजा की निरंकुश सत्ता के समर्थकों का वह प्रतिपादित करता हुआ प्रदर्शित करता है कि राजा सभी कानूनों से परे था तथा किसी ऐसे व्यक्ति की योग्यता के बारे में सन्देह करना जिसे उसने उस पद के लिए चुना है धर्म द्रोह जैसा अपराध है। वह कहता है कि वे यह मानते हैं कि लौकिक कानून के बराबर कोई कानून नहीं है तथा परम्परा के पूर्वी प्ररणा पर तक के विपरीत होने पर भी आग्रह करते हैं तथा जो ऐसी कानूनों के प्रति भावे न करने का प्रयत्न करें उसे राज्य का शत्रु मानते हैं। जान ने पश्चतया राजकीय कानूनवेत्ताओं के स्वर एवं स्वभाव से गोपपूर्वक हानि उठाई थी अतः लौकिक हस्तक्षेप के विरुद्ध चर्च एवं उसके अधिकारों की सुरक्षा तथा लौकिक न्यायालयों के अधिकार-क्षेत्र से पादरियों को मुक्त रखने के लिए वह रोमन विधि तथा इसके उपबन्धों के उदाहरण प्रस्तुत करके अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाता है।[3] रोमन कानून की उसकी प्रशंसा रोचक है तथा हम इस तथ्य का स्मरण दिलाते हैं कि हम अब ऐसे युग में आ पहुँचे हैं जिसमें रोमन कानून का पुनः प्रारम्भ किया गया अध्ययन महत्वपूर्ण माना जाना प्रारम्भ हो गया था। हम राजनीतिक सत्ता के स्वरूप के बारे में उसके सिद्धान्तों का विवेचन करते समय पहले ही देख चुके हैं कि रोमन न्याय-व्यवस्था के विस्तृत परिचय का उस पर बहुत प्रभाव पड़ा।[4] लौकिक एवं धार्मिक सत्ताओं के संघर्षों में वास्तव में रोम का कानून एक दुधारी तलवार थी[5] किन्तु सलिसबरी के जान को वह एक सुरक्षा का स्वागत योग्य शस्त्र प्रतीत हुआ।

सलिसबरी के जान ने अपने को धार्मिक सत्ता पर लौकिक आक्रमण की निन्दा तथा उसका विरोध करने तक ही सीमित नहीं रखा। उसने धार्मिक सत्ता की उत्कृष्ट गरिमा तथा शक्ति की ओजपूर्ण घोषणा की। एक स्थान पर वह हठपूर्वक कहता है कि जो दैवी कानूनों के स्वरूप तथा चर्च के अनुशासन से मेल नहीं खाते वे राजाओं के सभी कानून निरर्थक तथा अवैध हैं। वह जस्टीनियन की संहिताओं से उद्धरण देकर यह सिद्ध करता है कि राजकीय कानून धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसारी होने चाहिए।[6] दूसरे स्थान पर वह एक मान्यता प्रस्तुत करता है जो हम पहले ही सुविदित है तथा प्रतिपादन करता है कि राजा ईश्वर के तथा धरती पर उसका स्थान लेने वाले व्यक्तियों के उसी प्रकार अधीन है जैसे कि मानव शरीर आत्मा से शासित होता है।[7]

तथापि वह इन कल्पनाओं को केवल मात्र सामान्य शब्दों में ही प्रस्तुत नहीं करता अपितु एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंश में उनको दो तलवारों के सिद्धान्त की व्याख्या के रूप में प्रस्तुत करता है तथा घोषणा करता है कि चर्च से ही राजा अपनी भौतिक तलवार को प्राप्त करता है क्योंकि दोनों तलवारों पर स्वामित्व चर्च का ही है किन्तु वह भौतिक तलवार का उपयोग राजा के माध्यम से कराता है। अतः राजा धार्मिक सत्ता का दूत (या अभिकर्त्ता) है तथा पवित्र पद के उस निम्नस्तरीय कर्तव्य का पालन करता है जो कि पुरोहित के हाथों से करने योग्य नहीं है।[8] यह धारणा संत बर्नार्ड के ग्रन्थ डे कन्सीडरेशन (De Consideratione) के कुछ अंशों तथा उसके एक पत्र के ही समानान्तर है तथा उनको इसका मूल स्रोत माना जा सकता है। इनमें से पहले में वह

पाप यूजनियस तृतीय से आग्रह करता है कि धार्मिक एवं भौतिक दोनों ही तलवारें चर्च तथा पोप के स्वामित्व में हैं वास्तव में भौतिक तलवार का उपयोग उसे नहीं करना है किन्तु उसे पुरोहित के अनुरोध (ad nutum) तथा सम्राट की आज्ञा से ही निकाला जाएगा। दूसरे में वह यह घोषणा करता है कि दोनों तलवारें संत पीटर की हैं इनमें से एक का उसके अनुरोध पर तथा दूसरी को उसके हाथों से निकाला जाएगा।[9]

यह सिद्धान्त कि दोनों तलवारों पर चर्च का अधिकार है बहुत महत्वपूर्ण है। जहां तक हमने अध्ययन किया है सलिस्बरी के जान तथा संत बर्नार्ड के इन वक्तव्यों की मध्यकाल के प्राचीन साहित्य में ठीक समानता कहीं नहीं है। इनमें से सबसे निकट समानता आगसबर्ग के होनोरियस के सुम्मा ग्लोरिया के वाक्यों में है जिस पर हम एक भिन्न अध्याय में विचार कर चुके हैं। होनोरियस ने यह प्रतिपादित किया कि ईसा ने अपने चर्च पर शासन के लिए केवल धार्मिक सत्ता की स्थापना की राजकीय सत्ता की नहीं तथा सिल्वेस्टर प्रथम तथा कान्सटेन्टाइन के समय तक उसका शासन केवल पुरोहितों द्वारा ही होना था तथा कान्सटेन्टाइन ने सिल्वेस्टर को अपने साम्राज्य का मुकुट प्रदान किया तथा घोषणा की कि पोप की सम्मति के बिना किसी को भी साम्राज्य प्राप्त न हो। तथापि सिल्वेस्टर ने स्वीकार किया कि जो विद्रोही हो उनका दमन भौतिक तलवार के बिना नहीं हो सकता अतः उसने कान्सटेन्टाइन को एक सहायक के रूप में सम्मिलित कर लिया तथा कुकर्म करने वालों को दण्ड देने के लिए उसे भौतिक तलवार सौंप दी।[10] संत बर्नार्ड तथा सलिस्बरी के जान के वाक्यों का सम्बन्ध कहां तक होनोरियस से है यह कहना कठिन है। वे उसके समान इस सिद्धान्त का सम्बन्ध कि दोनों तलवारें चर्च की हैं कान्सटेन्टाइन के दान से नहीं जोड़ते संत बर्नार्ड यह सम्बन्ध सीधा ईसा द्वारा संत पीटर को कहे गए इस कथन से जोड़ता है जिसमें उसे अपनी तलवार को अपने स्थान में रखने की आज्ञा दी गई है। हम इन वाक्यों का कुछ सम्बन्ध पीटर डेमियन के उन शब्दों से जोड़ सकते हैं जिनमें वह संत पीटर को दोनों राज्यों के कानूनों को धारण करता हुआ बताता है जिन पर हम पहले विचार कर चुके हैं।[11] किन्तु ऐसे किसी सम्बन्ध का सुझाव देने का पर्याप्त आधार नहीं प्रतीत होता।

संत बर्नार्ड तथा सलिस्बरी के जान के इन वक्तव्यों को हम क्या महत्व प्रदान करें? संत बर्नार्ड के वक्तव्य का सन्दर्भ यह संकेत करता है कि इनके आधार पर यह निष्कर्ष निकालना कि उनका कोई सामान्य महत्व है बुद्धिमत्ताहीन होगा। दे कन्सीडेरेशन में वह पोप यूजनियस से यह अनुरोध कर रहा है कि रोमन जनता के दुराग्रह तथा अव्यवस्था के कारण उसके द्वारा न केवल आध्यात्मिक तलवार के ही प्रयोग करने का अपितु उसके तथा सम्राट की आज्ञा से भौतिक तलवार का भी उनके विरुद्ध उपयोग करवाने का औचित्य है। अपने पत्र में वह पोप से आग्रह करता है कि पूर्वी चर्च की सुरक्षा के लिए किए गए धर्मयुद्ध में उसे भौतिक तलवार का प्रयोग करवाना चाहिए। यह वक्तव्य कि दोनों तलवारें चर्च की हैं निस्सन्देह स्पष्ट है किन्तु यह विचार निराधार होगा कि संत बर्नार्ड लौकिक सत्ता तथा धार्मिक सत्ता के मध्य सम्बन्धों के विषय में कोई निश्चित सिद्धान्त प्रस्तुत कर रहा है।

सलिस्बरी के जान के विषय म बात दूसरी है। उसके श । का प्रसग उत्पीडक शासक तथा स च्चे राजा के अतर का विवचन है तथा मूलभूत सिद्धान्त जो व₀ प्रतिपादि त करता है यह है कि राजा कानून के अनुसार शासन करता है जबकि उत्पीडक शासक अपने को उसक ऊपर रखता है।[12] इस सदभ म व नश्वाश आते हैं जिन पर हम विचार कर रहे हैं तथा इस अध्याय म तथा इससे अगले अध्याय म जान राजा का ईश्वर एव चच के कानूनों क साथ सम्बधो का विवचन करता है। वह उन श । स प्रारम्भ करता है जिनको म उद्धत कर आए हैं तथा नान्स की परिषद् म का सटेन्टाइन की विनम्रता का नभिप्त बणन करता है कि किस प्रकार उसने बचन म यदता करना ही स्वीकार न ही किया परन्तु धमवृद्धो के साथ बठना भी तथा उनक निणयो का दवा निणयो के रूप म स्वीकार किया। यद्यपि उसने परिषद् के सदस्यो को उदारता एव शान्ति के लिए प्रेरित किया किन्तु उसने घोषणा की कि पुरोहिता क निणयो क प्रधान रहने वाले मनुष्य क रूप म उसके लिए उन व्यक्तियो के मामलो की जिनका निर्णय केवल ईश्वर द्वारा ही हो सकता है परीक्षा न्यायसगत नहीं थी। जान थियोडोसियस के धम बहिष्कार की बात भी उद्धत करता है तथा राजचिह्नों तथा साम्राज्य की राजसत्ता क प्रयोग से सत एम्ब्रोस द्वारा उसे निलम्बित किया गया बताता है तथा य निष्कष निकालता है कि जो आशीर्वाद देता है वह आशीर्वाद ग्रहण करने वाले स महान् है तथा जो पद प्रदान करता है वह पद ग्रहण करने वाले स बडा है जो बधानिक रूप स एक प द प्र ान करता है वह बधानिक रूप स उसे छीन भी सकता है। व₀ कहता है कि क्या सेम्युल ने साउल (Saul) द्वारा आज्ञा उल्लघन के कारण उसे पद च्युत करके उसके स्थान पर जस्स क पुत्र का सिंहासन पर न ही बठा दिया था ?[13]

सत विक्टर के ह्यू क एक लेखाश म हम सलिस्बरी क जान क इन वाक्यो स समानता पाते हैं। सत विक्टर का ह्यू धार्मिक सत्ता द्वारा लौकिक सत्ता की स्थापना तथा उसका निणय करन का वणन करता है।[14]

यह कहना न्याय प्रमाण होगा कि सलिस्बरी क जान तथा आ सबग के होनोरियस के ग्रन्थो मे हम इस धारणा का प्रथम निश्चित वक्तव्य पाते हैं कि अनत सभी सत्ताए चाहे वे लौकिक हो अथवा धार्मिक आध्यात्मिक शक्ति की हैं न कि सत न दि तथा सत विक्टर के ह्यू के वाक्य जहा तक उनका क्षेत्र ऐसी धा णा स सम्बद्ध प्रतीत होता। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि वह हनरी चतुथ स सघष म ग्रेगोरी सप्तम द्वारा ग्रहण की गई यथाथ स्थिति के सद्धातिक विकास का ही प्रतिनिधित्व करता है। इस विकास तथा हेन्रियन चतुथ क द्वारा सम्राट फ्रेडरिक बारबरोसा को भज गए पत्र म कहा तक सम्बध हो सकता है जिसने जसा कि हम देख चुके हैं बडी हलचल उत्पन्न कर दी थी कहना असभव । तथापि यह स्पष्ट है कि यदि हैड्रियन के श किसी एस सिद्धा त को अभि यक्त करन क उद्देश्य स थ तो इसका जमनी म न केवल तुरत उग्र रूप म भी खडन ही न ही किया था अपितु ड्रियन चतथ ने भी स्पष्ट रूप स उसको अस्वीकार कर दिया था।

तत्कालीन समस्याओ के प्रति सलिस्बरी क जान क दृष्टिकोण का एक दूसरा भी पक्ष है जो ध्यान देने योग्य है। यदि व₀ लौकिक सत्ता क कुप्रयोग को जिसे वह उसक अनौचित्यपूर्ण

दावे करता है कठोरता से निन्दा करता है तो वह धार्मिक व्यवस्था के कुप्रयोग की आलोचना करने में भी कम सकोचशील नहीं है। इसने इनके प्रमुख पक्षों को स्वय तथा पोप हैड्रियन चतुर्थ के मध्य वार्तालाप के रूप में प्रस्तुत किया है जो जान के अनुसार बेनवण्टम में घटित हुआ था। वार्तालाप के बीच हैड्रियन ने उससे पूछा कि मनुष्य पोप तथा रोमन चर्च के बारे में क्या सोचते रहे हैं। जान ने उत्तर दिया कि अनेक व्यक्ति शिकायत करते हैं कि रोमन चर्च जो सभी चर्चों की जननी है एक माता के रूप में व्यवहार न करके विमाता के रूप में व्यवहार कर रहा है। रोमन पादरी वर्ग ने यहूदी धर्मशास्त्रियों तथा फरीसियों की भांति मनुष्यों के कंधों पर भारी बोझ डाल दिया है जिसको वे स्वय अपनी अंगुली से भी नहीं छूते। वे लोभी तथा लालची थे तथा मुक्त रूप में न्याय प्रदान करने के बजाय उसे बेचते थे। पोप स्वयं असहनीय रूप से भारपूर्ण हो गया था—जबकि चर्च और बेदियाँ खण्डहर हो रहे थे वह अपने लिए प्रासादों का निर्माण करवा रहा था तथा राजसी और स्वर्णमय वस्त्र धारण कर रहा था। ईश्वरीय न्याय चर्च के शासकों को दण्डित किए बिना नहीं रह सकता।

जब हैड्रियन ने उससे पूछा कि वह स्वय बताए कि वह क्या सोचता है तो उसने उत्तर दिया कि वह चाटुकारी तथा अभिनेहात्मक स्वेच्छाचारिकता के मध्य दुखद स्थिति में अपने को पाता है किन्तु उसने कार्डिनल गिडो डेन्स के एक वक्तव्य की शरण ली जो कि पोप यूजेनियस की उपस्थिति में दिया गया था कि रोमन चर्च में लालच सर्वव्याप्त है जो कि सभी बुराइयों की जड़ है। जान ने यह कहने की सावधानी रखी कि रोमन पादरियों में उच्चतम सयमित्ता के व्यक्ति भी हैं तथापि उसने अपना मत बलपूर्वक स्पष्ट कर दिया कि मनुष्यों की शिकायत भी अनुचित नहीं है। उसने पोप से रोमन चर्च के पदों पर ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त करने की प्रार्थना की जो कि नम्र थे और मिथ्या गरिमा तथा धन से घृणा करते थे। उसने यह जानना चाहा कि पोप स्वय उन व्यक्तियों से उपहार एव धन की माग क्यों करता है जो उसके पुत्र थे उसने सुझाव दिया कि वह ऐसा रोमन जनता की निष्ठा अर्जित करने के लिए करता होगा किन्तु उसने इस पर बल दिया कि इसका कोई औचित्य नहीं क्योंकि न्याय ऐसी वस्तु नहीं जिसे पैसा के लिए बेचा जाए।[15]

पोप हैड्रियन हसा तथा उसके निस्सकोच कथन की प्रशसा की और उससे सदव जो वह शिकायतें सुने सूचित करने का अनुरोध किया तथा उसके कथनों का उत्तर मेनेनियम एग्रिप्पा (Menenius Agrippas) की पेट तथा शरीर के दूसरे अगों की कहानी द्वारा दिया और जान ने अपने आपको सतुष्ट प्रदर्शित किया।[16] यह उल्लेखनीय है कि वह अन्तिम विषय पर एक बार की पुस्तक में पुन विचार करता है तथा रोमन चर्च की कठिनाइयों का कारण रोमन जनता के लालच को सतुष्ट करने की आवश्यकता को बनाता है।[17]

दूसरे स्थानों पर वह अत्यन्त उग्रता से बिशपों तथा आर्चडीकन्स और दूसरे पदाधिकारियों की न्याय विरुद्ध मांगों की निन्दा करता है तथा पोप के दूतों को भी क्षमा नहीं करता जिनके आचरण से ऐसा सोचने को बाध्य करता है कि शतान ही ईश्वर का रूप बनाकर चर्च के उत्पीड़न के लिए चला आया है।[18] यह और भी अधिक महत्वपूर्ण है कि

एक अन्य स्थल पर वह पुरोहितों से क्रोध न करने का अनुरोध करता है। यद्यपि वह उनमें भी अनेक को क्रूर तथा निरंकुश बतलाता है। यह प्रतीत होता है कि उसका यह कथन व्यंग्यात्मक है कि वह रोमन चर्च के प्रतिनिधियों का उल्लेख नहीं कर रहा है क्योंकि उनका न्याय मनुष्यों द्वारा नहीं हो सकता तथा यह अचिन्तनीय है कि वे प्रतिनिधि वैसा कार्य करेंगे जो प्रान्तों के गवर्नरों तथा प्रोकोन्सुलों के लिए रोमन कानून द्वारा निषिद्ध है। *कौन विश्वास करेगा कि चर्च के धर्माधिकारी जो दुनिया के न्यायाधीश तथा प्रकाश स्तम्भ हैं* उपहारों से प्रेम करते हैं जबकि वे निर्धनता का उपदेश देते हैं तथा इस प्रकार का आचरण करते हैं जिससे वे सभी के लिए आतंक उत्पन्न करते थे तथा कोई भी उनसे प्रेम नहीं करता था।[19] यदि लौकिक उत्पीडक शासक का वध तथा मानवीय विधि के अधीन उच्छेद न्यायोचित है तो कौन यह सोच सकता है कि पुरोहित वर्ग के अन्तर्गत उत्पीडक को प्रेम तथा आदर प्राप्त होगा।[20]

सन्दर्भ

1 Cf. John of Salisbury, Policraticus, vi. 24 and viii. 23
2. Id. ibid. 20.
3. Id. ibid. 5
4 Cf. ibid. pp. 136–145
5 Cf. ibid. Part I., c. 8
6. Id. ibid., 6.
7 Id. ibid. 2.
8 Id. ibid. 3
9 St. Bernard, De Consideratione 3
10 भाग 3 अध्याय 3।
11 देखें भाग 1 अध्याय 4।
12 देखें अध्याय 3।
13 वही 4-3।
14 Hugh of St. Victor, De Sacramentis, Part 2, c. 4
15 John of Salisbury, Policraticus, vi. 24
16. Id. ibid.
17 Id. id., vi. 23
18 Id. ibid. 18
19 Id. ibid. 17
20 Id. ibid.

तृतीय अध्याय

राइखर्सबर्ग का गेर्होह

सबसे महत्त्वपूर्ण लेखक जिसकी रचना लौकिक एवं धार्मिक सत्ता के मध्य पुनर्जाग्रत संघर्ष द्वारा उठाए गए प्रश्नों के समकालीन मूल्यांकन का निदर्शन करती है राइखर्सबर्ग का गेर्होह है।

वह 1093 ई० अथवा 1094 ई० में उत्पन्न हुआ तथा 1132 ई० में राइखर्सबर्ग के कॉलेजिएट चर्च का अध्यक्ष बना। वह जर्मन पादरियों के सुधारवादी दल का सबसे प्रसिद्ध साहित्यिक प्रतिनिधि था तथा सम्पूर्ण जीवन पर्यन्त उसकी विशेष रुचि यह रही कि कथीड्रल एवं कॉलेजियेट चर्च के सदस्य अपने नियम का पूर्णतः पालन करें। वह प्रतिस्थापन विवाद की अन्तिम अवस्था में पोप के पक्ष का दृढ़संकल्प समर्थक रहा तथा 1169 ई० में अपने देहावसान के समय तक चर्च के कार्यों में उसका सक्रिय योगदान रहा।

उसके साहित्यिक ग्रन्थ जिनका सम्बन्ध यहाँ हमसे है दो वर्गों में विभक्त हैं। प्राचीन अर्थात् फ्रेडरिक बारबरोसा तथा एलेक्जेण्डर तृतीय के संघर्ष के छिड़ने से पूर्व लिखे गए ग्रन्थ मुख्यतया उसके जैसे जर्मन पादरियों के वर्म्स के समझौते के प्रति दृष्टिकोण, उसका जर्मन बिशपों की स्थिति पर पड़ने वाला प्रभाव तथा 'धर्मचिह्नों' को धारण करने वाले बिशपों के सामन्ती दायित्वों तथा सामन्ती अधिकार-क्षेत्र के कारण उनके लौकिकीकरण के प्रभाव के प्रति उसका गम्भीर रुचि का प्रदर्शित करने की दृष्टि से रोचक हैं। दूसरे वर्ग के ग्रन्थ संघर्ष के प्रारम्भ के बाद लिखे गए तथा मुख्यतया उससे उत्पन्न प्रश्नों से सम्बन्धित हैं।

ये रचनाएं विचित्र रूप से एक ऐसे व्यक्ति के निर्णय को प्रदर्शित करने के कारण महत्त्वपूर्ण हैं, जो यद्यपि एक दृढ़ तथा कठोर सुधारक था केवल मात्र किसी एक पक्ष का अनुयायी नहीं था किन्तु इसके विपरीत लौकिक एवं धार्मिक सत्ताओं के विरोधी दावों के बीच एक ऐसा पक्ष धारण करने को प्रयत्नशील था जिसे वह दोनों के बीच एक उचित एवं न्यायसंगत सन्तुलन समझता था। एक ऐसा व्यक्ति जो यद्यपि चर्च की स्वतन्त्रता का निश्चयी समर्थक था किन्तु साथ ही चर्च द्वारा उसके अतिक्रमण की मा

जिसे वह साम्राज्य की स्वतन्त्रता ग्रथवा ग्रधिकार मानता था निर्बाध निन्दा करता था। वास्तव मे यह उल्लेखनीय है कि ग्रपने ग्रन्तिम ग्रन्थ डे क्वार्टा विजीलिया नाक्टिस (De Quarta Vigilia No tis) म भी जिसे उसने पोप एलेक्जेण्डर तृतीय के पक्ष के प्रति निष्ठा के कारण रा ससबग म पनायन करन के बाद लिखा था वह गम्भीरता पूर्वक तथा दृढतापूर्वक इस सिद्धान्त पर बल देता है कि प्रत्येक सत्ता को दूसरी सत्ता के ग्रधिकारो को मान्यता देना एव उनका समादर करना चाहिए।[3]

गरहोह के सिद्धान्तो के प्रथम पक्ष के सम्बन्ध म हम ग्रत्यन्त सुविधापूर्वक ब्रशिया के ग्रार्नो ड के मत का ग्रध्ययन कर सकते हैं। उसके सिद्धान्तों एव कार्यों के सम्पूर्ण महत्त्व का विवेचन इस ग्रन्थ की परिधि में नहीं ग्राता क्योंकि उनका सम्बन्ध मध्यकालीन समाज के कई पक्षो से है। तदनुसार निगमानुसार हम चच द्वारा लौकिक सम्पत्ति एव सत्ता के स्वामित्व सम्बन्धी जो उसके विचार रहे प्रतीत होते हैं उनके परीक्षण से ही हम सन्तुष्ट रहना चाहिए। उसके सम्बन्ध म भी हम बहुत सावधान रहना चाहिए क्योंकि उसके लेखो से यदि वास्तव म कोई ये कुछ भी सुरक्षित नही है तथा उसके विचारो की सूचना ऐसे लोगो से मिलती है जो मुख्यत उसके विरोधी हैं तथा एक दूसरे से सदा सगत भी नहीं हैं।[3]

उस काल के लेखक सक्षेप मे उसके मत का विवरण प्रस्तुत करते हैं। फ्राइजिंग का ग्राटो कहता है कि वह बिशपो का कटु ग्रालोचक मठवासियो का शत्रु तथा केवल जनसाधारण की चापलूसी करने वाला था तथा उसकी मान्यता थी कि पादरी द्वारा सम्पत्ति धारण बिशपो द्वारा राजचिह्नो का धारण तथा मठवासियों के सम्पदा धारण का समथन नही किया जा सकता। इन सब पर राजा का स्वामित्व है तथा उसके द्वारा केवल जनसाधारण को ही ये प्रदान की जानी चाहिए।[3] हिस्टोरिया पोन्टीफिकेलिस (Historia Pont f calis) निश्चयपूर्ण सूचना नहीं देता किन्तु उसको यह शिक्षा देता हुग्रा दिखाता है कि कार्डीनलो का चच ईश्वर का चच नहीं है तथा वह पोप का इसलिए खण्डन करता था क्योंकि पोप एव कार्डीनल घमण्डी पतित एव हिंसक व्यक्ति थे।[4]

गेस्टा डी फेडरिको (Gesta di Federico) का लेखक कहता है कि ग्रार्नोल्ड लगभग ग्रपने समय के सभी व्यक्तियो पर धम विक्रय के दोषी होने का ग्रारोप लगाता था तथा उपदेश देता था कि जनता को न तो उनके सम्मुख पाप स्वीकृति करनी चाहिए न उनसे सस्कार कराने चाहिए ग्रौर वह पोप पद की निन्दा उसकी ईर्ष्या तथा उसके न्यायालयो में भ्रष्टाचार के कारण करता था।[5] लिगूरीनस (Ligurinus) नामक कविता का लेखक सूचना देता है कि ग्रार्नोल्ड का मत था कि पादरियो का प्रथम फल जनता की स्वतन्त्रता के उपहार तथा दशमाश मिलना चाहिए किन्तु यह मठवासियो द्वारा सम्पत्ति के स्वामित्व तथा पोप द्वारा राजकीय सम्पदा के धारण की निन्दा करता था तथा शिक्षा देता था कि सभी वतमान सम्पत्ति राजा के ग्रधीन है तथा जनसाधारण को प्रदान की जानी चाहिए।[6]

इस सबसे हम यह ग्रनुमान लगा सकते हैं कि ग्रार्नोल्ड ने लौकिक सम्पत्ति के स्वामित्व के माध्यम से पादरियो के लौकिकीकरण का विरोध किया तथा इच्छा की कि

लौकिक सत्ताधारी उसे वापस ले लें। उसकी स्थिति अभी तक वसी ही प्रतीत होती है जसी पस्कल द्वितीय अथवा गेरहोह की है। तथापि वह उनसे भी आगे बढ गया था तथा प्रतीयमानत यह मानने लगा कि जहाँ तक चच इस प्रकार लौकिकीकृत था वह चच भी नहीं था तथा निष्ठावानो को उसकी सहभागिता से अलग हो जाना चाहिए उसकी स्थिति ग्यारहवीं शताब्दी के कुछ उग्र सुधारवादियो मे भिन्न नहीं थी किन्तु वह चच की सत्ता तक ही सीमित नहीं थी।

इसीलिए गेरहोह ने उसकी निन्दा की है तथा गेरहोह उसके सिद्धान्तों की निन्दा से सहमत है तथापि उसने इस पर गम्भीर चिन्ता व्यक्त की कि चच ने अपने को उसकी मृत्यु के लिए उत्तरदायी बना लिया है स्पष्टतया उसका इस उत्तरदायित्व से बचने के इसके प्रयत्नो के प्रति पूर्ण सदेह है।[7]

नागरिक एव स्थानीय स्वतन्त्रता के विकास के प्रसग मे रोम नगर की जनता द्वारा पोप से स्वतन्त्र शासन की स्थापना के प्रयत्न से आर्नोल्ड के सम्बधो पर हम अगली पुस्तक मे विचार करेंगे जबकि रोमवासियो के सम्राट के निर्वाचन को नियन्त्रित करने के दावे का मध्यकालीन राजनीतिक सिद्धान्तों के इतिहास म कुछ महत्व नहीं है। तथापि यह उल्लेख योग्य ह कि वेजल (Wezel) नामक व्यक्ति के फ्रडरिक बारबरोसा को लिखे गए पत्र म जिसमे ये दावे प्रस्तुत किए गए हैं कान्सटेटाइन के दान को उसी प्रकार प्रवचनापूवक एक धोखा बताया ह[8] जसे कि 1001 ई० मे आटो तृतीय ने उसके बारे में कहा था।[9]

गेरहोह के प्रारम्भिक ग्रन्थ जसा हम अभी कह आए हैं सवप्रथम वाम्स के समझौते तथा चच पर उसक प्रभाव के प्रति उसके दृष्टिकोण को प्रदर्शित करने के कारण तो महत्वपूर्ण हैं ही किन्तु यदि सम्राट प्रतिष्ठापन के अधिकार को त्याग द तो बिशपों द्वारा राजचिह्नों (Regalia) को समर्पित करने के पस्कल द्वितीय के प्रस्ताव द्वारा उठाए गए प्रश्नो के सम्बन्ध के कारण भी वे रोचक हैं। प्रथम ग्रन्थ मे जिससे हमारा सम्बन्ध है तथा जो 1126 ई से लेकर 1132 ई के बीच लिखा गया था वह उन परिस्थितियो के प्रति जिनके अन्तगत राजचिह्न प्रदान एव धारण किए जाते थे गहरी चिन्ता व्यक्त करता है। उसे इस पर गम्भीर विक्षोभ होता है कि बिशप मठ के अध्यक्ष तथा अध्यक्षाए निर्वाचन के पश्चात् राजचिह्नो को प्राप्त करने के लिए राजसभा में उपस्थित होते हैं तथा उसके लिए श्रद्धाजलि तथा स्वामिभक्ति प्रदान करते हैं।[10] वह इसी शिकायत को दूसरे ग्रन्थ मे दोहराता है जो कि 1142–43 ई म लिखा गया है। वास्तव में वह स्वीकार करता है कि पोप की एक आज्ञा के अनुसार बिशपो को राजा के प्रति न्याय' (Iustitia) प्रदान करना चाहिए किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं था कि उनको श्रद्धाजलि भेंट करनी चाहिए अथवा निष्ठा की शपथ लेनी चाहिए।[11] प्रश्न का महत्व केवल समादर प्रदान करने तक ही सीमित नहीं है यह स्पष्ट है कि गेरहोह को जो बात सबसे अधिक चिन्तित करती है वह बिशपो द्वारा राजचिह्नो के स्वामित्व से जुडे हुए उनके कत्तव्यो का स्वरूप या विशेषतया सामन्ती सनिक सेवा प्रदान करना तथा वह पहले उद्धृत ग्रन्थ मे क्रोधपूर्वक प्रतिपादन करता है कि बिशपो द्वारा चच के धन का सनिकों को

बनाए रखने के लिए प्रयोग पूर्णतया अवधानिक था।[12] इसके कारण वह चर्च की सम्पत्ति के स्वरूप तथा उसके वांछित उपयोग के बारे में विवेचन करने को प्रवृत्त होता है उसका एक अंश पादरियों के योगक्षेम के लिए, दूसरा चर्च के निर्माण एवं मरम्मत के लिए तीसरा विधवाओं तथा आवश्यकता वाले व्यक्तियों की मदद के लिए चौथा स्वयं पादरी एवं उसके कुटुम्ब के भरण पोषण के लिए तथा अतिथियों एवं पथिकों के लिए जिनके लिए उसके द्वार हमेशा खुले रहने चाहिए।[13] वह चर्च की सम्पदा के तीन भाग करता है—दशमांश रियासतें तथा राज एवं सार्वजनिक कार्यों के लिए (Regales aut publicas functions)। उसका स्पष्ट मत है कि देवद्रोह तथा अन्याय के बिना पहली दो प्रकार की सम्पत्तियों को चर्च से अधिग्रहण नहीं किया जा सकता किन्तु तीसरी के बारे में वह कहता है कि चर्च इस सम्पत्ति को बनाए रखने को अधिक उत्सुक नहीं है अतः चर्च के लौकिक कार्यों में फसने की अपेक्षा श्रेष्ठतर हो कि चर्च इस सम्पत्ति से मुक्त हो जाए।[14]

यह एक महत्त्वपूर्ण धारणा है जो सम्भवतः उन उद्देश्यों पर कुछ प्रकाश डाल सके जो कि पस्कल द्वितीय के राजचिह्नों को समर्पित करने के प्रस्ताव की पृष्ठभूमि में थे। गेरहोह स्पष्टतः सम्पत्ति के उन दो स्वरूपों में स्पष्ट विभेद करता है जो न्यायपूर्वक चर्च की अविभाज्य सम्पत्ति है तथा वे जिनका अधिकाधिक केवल सन्दिग्ध लाभ चर्च को हो सकता है तथा जो उसे उसके उचित कर्तव्यों के बाहर फसाये तथा जिन्हें वह त्याग सकता है। वास्तव में वह हठधर्मितापूर्वक यह नहीं कहता कि उनको छोड़ देना चाहिए तथापि उसकी स्थिति इसके बहुत निकट है। ये ड्यूक की रियासतें काउन्टों की जागीर इत्यादि ऐहिक वस्तुएं हैं जबकि दशमांश तथा स्वतन्त्रता से प्रदत्त उपहारों पर ईश्वर का अधिकार है तथा यद्यपि वह उन व्यक्तियों को नाराज नहीं करना चाहता जिनका यह मत है कि एक बार चर्च को दे देने के बाद उनको वापस लेना धर्मद्रोह है वह इसकी पुष्टि करता है कि बिशप द्वारा राजकीय एवं सैनिक कर्तव्यों का पालन अपने ढंग से किसी सीमा तक धर्मच्युति बिना नहीं हो सकता।[15]

इस लेख में प्रदर्शित दृष्टिकोण रोचक एवं महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे यह प्रदर्शित होता है कि कुछ लोगों की यह भावना थी कि यदि पस्कल द्वितीय के प्रस्ताव स्वीकार कर लिए जाते तो अच्छा होता। गेरहोह कई वर्षों तक इस विषय में गम्भीरतया चिंतित रहा यद्यपि यह दृष्टिगोचर होगा कि उसका निर्णय इस विषय में समय-समय पर बदलता रहा।

1142–43 ई. में लिखा गया ग्रन्थ जिसको हम पहले ही उद्धृत कर चुके हैं बहुत अधिक मात्रा में इसी विषय का विवेचन करता है। वह इस कथन से प्रारम्भ करता है कि राजाओं और बिशपों दोनों के शत्रुओं के रूप में उसका विरोध किया गया है क्योंकि उसने यह माना है कि जो ईश्वर का है मनुष्यों को उसे ईश्वर को दे देना चाहिए तथा जो सीज़र का है वह सीज़र को क्योंकि दोनों में से कोई भी अपनी सीमा में रहने से सन्तुष्ट नहीं है किन्तु राजा बिशपों के अधिकारों को हड़प गए हैं तथा बिशपों ने राजाओं के राजचिह्नों को हड़प लिया है।[16] वह स्पष्ट भाषा में उन बिशपों की निन्दा करता है जो आक्रमणों को संचालित करते हैं तथा चर्च के धन को सैनिक कार्यवाही में

चर्च करते हैं तथा उसका यह निश्चित मत है कि जब बिशप राजा को श्रद्धांजलि देते हैं तथा निष्ठा की शपथ लेते हैं तो चर्च सांसारिक कर्मों में रत हो ही जाएगा।[17] तथापि यह प्रतीत होगा कि वह उस समय यह मानने को तैयार नहीं था कि राजचिह्नों को समर्पित कर देना चाहिए किन्तु यह मानता था कि उनका प्रशासन बिशपों द्वारा बुद्धिमत्तापूर्वक किया जाना चाहिए।[18] वह पस्कल द्वितीय तथा हेनरी पंचम के बीच संधि वार्ता का विवरण देता है तथा सूचना देता है कि पस्कल राजचिह्नों को सौंपने का प्रस्ताव करने को राजी कर लिया गया था किन्तु इसके लिए वह अपनी सम्मति व्यक्त नहीं करता तथा उसकी भी सूचना देता है जिसे वह इस प्रस्ताव का प्रत्याख्यान समझता है।[19]

वर्म्स के समझौते के उपबन्धों तथा अपने युग की परिस्थितियों के बारे में भी एक महत्त्वपूर्ण वक्तव्य अपने ग्रन्थ में देता है। वह कहता है कि समझौते के इन उपबन्धों की सूचना कि जर्मनी के बिशपों का चुनाव सम्राट की उपस्थिति में हो तथा वे दण्ड एवं मुद्रा द्वारा राजचिह्नों को प्राप्त करें लेटरन की परिषद् में क्रोध एवं सदेहपूर्वक ग्रहण की गई थी तथा वह इस बात पर प्रसन्नता व्यक्त करता है कि पहली शर्त का प्रयोग नहीं हो रहा है और आशा व्यक्त करता है कि श्रद्धांजलि तथा निष्ठा की प्रथा भी समाप्त हो जाएगी।[20] निष्कर्ष रूप में यह ग्रन्थ वर्म्स के समझौते की उस व्याख्या का खण्डन करता है कि वह बिशपों पर श्रद्धांजलि तथा निष्ठा की शपथ का दायित्व डालता है जिसको हम पहले ही उद्धृत कर चुके हैं।[21]

दूसरे ग्रन्थ में जिसका शीर्षक डे नावीटेटीबस हायूइस टेम्पोरिस (De Novitatibus huius Temporis) है तथा जो 1155–56 ई० में लिखा गया था वह अपने मूल विचार से और आगे बढ़ गया प्रतीत होता है। वह कहता है कि इस पर विवाद है कि क्या चर्च से राजचिह्नों को ले लेना चाहिए तथा वह यह प्रतिपादित करता प्रतीत होता है कि यह नहीं करना चाहिए। वह स्वीकार करता है कि इस धारिता में कुछ कर्तव्य भी निहित हैं जिनका पालन बिशप को करना चाहिए अतः यह बवानिक था कि बिशप राजा के प्रति निष्ठा की शपथ लें *Salvo Sui or dinis of ficio* तथा यदि बिशप इस शपथ को भंग करे तो वह अपने आध्यात्मिक न्यायाधीश द्वारा तथा उस सत्ता द्वारा जिससे वह राजचिह्नों से मूर्तित होता है धार्मिक तथा लौकिक दोनों गरिमाओं से वंचित किया जा सकता है। उसी ग्रन्थ के दूसरे लेखांश से यह स्पष्ट है कि वह उस समय इन कर्तव्यों में सामन्तों की सैनिक सेवा भी सम्मिलित मानता था जिनको कि बिशपों द्वारा वह भूमि जो उन्हें राजचिह्नों के रूप में प्राप्त हुई थी जागीर में दी गई थी। वह केवल यह चाहता है कि उनको नई अधीनताएं नहीं बनानी चाहिए तथा दशमांश एवं स्वतन्त्र इच्छा उपहारों का ऐसा उपयोग नहीं करना चाहिए।

गेरहोह के दृष्टिकोण में यह परिवर्तन जो इन दो प्रबन्धों से विदित होता है स्पष्ट है किन्तु उसके आगामी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की परीक्षा से यह स्पष्ट हो जाएगा कि उसका चित्त अभी भी इस सारे मामले से बहुत क्षुब्ध था। डी इन्वेस्टीगेशन एन्टी क्रिस्टी (De Investi atione Antichristi) नामक ग्रन्थ में जो कि 1161–62 ई० में लिखा गया था, वह यदि सम्राट प्रतिष्ठापन का अधिकार त्याग दे तो राज सम्पत्ति के समर्पण के

बारे में हेनरी पंचम तथा पस्कल द्वितीय के मध्य समझौता वार्ता का दूसरा विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करता है।[23] वह इस प्रस्ताव को हेनरी पंचम की ओर से परन्तु असद्भाव से प्रस्तुत किया गया प्रदर्शित करता है क्योंकि वह जानता था कि जर्मन एवं गेलीशन बिशप उससे सहमत नहीं होंगे।[24] पस्कल ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया किन्तु बिशपों ने इसका तुरन्त क्रोधपूर्वक खण्डन कर दिया। यह बहुत उल्लेख योग्य है कि गेरहोह बाद की घटनाओं का विवरण देने में हेनरी का उद्देश्य पस्कल को पकड़ने में या तो प्रतिष्ठापन के राजकीय अधिकार को स्वीकार करने या राजचिह्नों का त्याग करने के लिए उसे विवश करना बताता है तथा वह पस्कल द्वारा दूसरी बात को स्वीकार करना प्रदर्शित करता है।[25] वह पस्कल द्वितीय की मृत्यु के बाद भी हेनरी की वही स्थिति बनाए रखते हुए—अर्थात् यह मानते हुए कि या तो चर्च राजचिह्नों का त्याग दे या सम्राट को बिशपों की नियुक्ति का अधिकार बना रहे प्रदर्शित करता है।[26]

गेरहोह दोनों पक्षों की ओर से प्रस्तुत किए गए या प्रस्तुत किए जा सकने वाले तर्कों का एक रोचक सारांश प्रस्तुत करता है। चर्चवादी दल का यह तर्क था कि यह उचित एवं न्यायसंगत था कि चर्च राजचिह्नों द्वारा प्रदान किए जाने वाले धन एवं गरिमा का उपभोग करें। राजकीय दल मानता था कि दशमांश एवं स्वतन्त्र इच्छा आहुति पर चर्च का न्यायोचित अधिकार था तथा उनमें सम्राट की सेवा का कोई दायित्व निहित नहीं था किन्तु उनकी मान्यता थी कि राजचिह्नों का प्रश्न इससे भिन्न था। यदि चर्च इनको रखना चाहता है तो बिशपों को सम्राट की सेवा तथा नजराना प्रदान करना होगा तथा यदि पादरी के लिए लौकिक और सैनिक मामलों में योगदान करना यथोचित नहीं तो उन्हें उन राजचिह्नों को छोड़ देना चाहिए जिनके साथ ये दायित्व जुड़े हुए हैं। यदि बिशप यह कहें कि वे सम्राट की ये सेवाएँ करने तथा धार्मिक कर्तव्यों का भी पालन करने में भी समर्थ हैं तो राजकीय पक्षधरों का कहना था कि फिर यह उचित था कि सम्राट को उनकी नियुक्ति का प्रथम अधिकार प्राप्त हो क्योंकि यह न्यायोचित नहीं था कि किसी को भी दूसरे सामन्तों की राय से सम्राट के अतिरिक्त अन्य किसी के द्वारा राजपद प्रदान किया जाए।[27] सम्राट चर्च को स्वतन्त्र निर्वाचन का अधिकार न देने को भी कृतनिश्चय थे तथा बिशप भी राजचिह्नों को न सौंपने के लिए उतने ही कृतनिश्चय थे किन्तु सम्राट के प्रति परम्परागत सेवा भी करने को तयार थे।[28]

गेरहोह कहता है कि उसके अधिकार में न तो बिशपों के कार्यों का निर्णय करना और न यह निर्धारित करना था कि राजा के प्रति निष्ठा की शपथ एवं नजराने ने बिशपों का दायित्व उन लौकिक मामलों में कहाँ तक बढ़ा दिया था जिसकी कि संत पाल ने निन्दा की है वह कहता है कि वास्तव में इस प्रकार प्रतिबन्धित होने पर भी वे प्रार्थना एवं अध्ययन के लिए कुछ समय निकाल सकते हैं और इस प्रकार अपने दायित्वों के बावजूद लगभग स्वतन्त्र रह सकते हैं। ईश्वर ही यह निर्णय करेगा कि राजचिह्नों का स्वामित्व चर्च का कहाँ तक साधक अथवा बाधक है। अतः ईश्वर ही अपने चर्च को वह स्वतन्त्रता प्रदान करे जो उसके योग्य है।[29]

कुछ आगे बढ़कर गेरहोह उसी ग्रन्थ में इसी विषय का पुनः निरूपण किसी सीमा तक

भिन्न शब्दों में करता है। उसने स्पष्टतः अनुभव किया कि राजचिह्नों के स्वामित्व में लौकिक एवं धार्मिक सत्ताओं के कर्तव्यों के मध्य भ्रान्ति की बहुत अधिक सम्भावना थी तथा वह बलपूर्वक उन दोनों के अन्तर का प्रतिपादन दो तलवारों की शब्दावली द्वारा करता है। स्वयं ईसा ने धर्म ग्रन्थ में इन दो सत्ताओं में विभेद किया है जब उसके शिष्यों के इस कथन के उत्तर में कि देखो ये दो तलवारें हैं, उसने कहा कि यही पर्याप्त है। किन्तु गेरहोह कहता है कि अब एक ऐसी तीसरी शक्ति हमारे बीच है जो दोनों का सम्मिश्रण है। वह इस तथ्य का एक प्रभावशाली उदाहरण इसमें पाता है कि कभी कभी बिशप के सम्मुख केवल क्रास ही धारण नहीं किया जाता जो चर्च के पद एवं ईसाई विनम्रता का प्रतीक था किन्तु ड्यूक का राजचिह्न भी जो उसे राजा द्वारा अपराधियों को दण्ड देने के लिए अधिकार के प्रतीक रूप में उसे प्रदान किया गया है। गेरहोह को यह विकृत एवं अविवेकपूर्ण प्रतीत होता है वास्तव में यहूदी पुरोहितों को लौकिक तलवार प्रयोग करने की अनुमति थी ईसाई पुरोहितों को नहीं।[30] वह कहता है कि यदि यह प्रतिपादित किया जाए कि राजाओं ने अपनी धार्मिक उदारता के कारण बिशपों को ड्यूक के तथा अन्य पदों के अधिकार-क्षेत्र की आय प्रदान की है तथा उनमें निहित न्याय की व्यवस्था का अधिकार भी प्रदान किया है अतः यह उचित ही है कि इस अधिकार के प्रतीक बिशप के आगे ले जाए जाएं तो वह उत्तर देगा कि यद्यपि वह इस उदारता के लिए राजाओं की प्रशंसा करता है तथापि उसके मत में यह अधिक अच्छा होता यदि वे न्याय प्रदान करने की सत्ता अपने पास ही रखे रहते तथा आय को बिशपों को प्रदान कर देते।[31] रोम में उसके अनुसार जो बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवस्था थी उसका विपरीत्य वह फ्रांस की निन्दनीय परम्परा से प्रदर्शित करता है। वह कहता है कि रोम में नगर का प्रधान पोप से दीवानी मामलों के निर्णय का अधिकार प्राप्त करता था किन्तु फौजदारी अधिकार क्षेत्र की प्राप्ति सम्राट से होती थी जबकि इन साम्राज्यों में बिशप अपने प्रतिनिधि (Vicarias potestates) नियुक्त करते थे जो दीवानी व फौजदारी दोनों प्रकार के मामलों का न्याय करते थे और इस प्रकार अपने को रक्तपात के लिए उत्तरदायी बनाते थे जो पादरियों के लिए वर्जित था।[32] कुछ ऐसे व्यक्ति थे जो यह तर्क देते थे कि अन्ततोगत्वा यह भी वैसी ही बात थी जैसी कि पुरोहितों द्वारा राजाओं की नियुक्ति किन्तु वह इस मान्यता का खण्डन बलपूर्वक उन शब्दों में करता है जो बहुत महत्वपूर्ण हैं। वह कहता है कि बिशप न तो सम्राटों का निर्माण करते हैं न उनकी नियुक्ति किन्तु वे उनको केवल आशीर्वाद देते हैं तथा ऐसे व्यक्तियों के सिर पर राजमुकुट रखते हैं जो या तो सामन्तों एवं जनता के निर्वाचन से अथवा वंश परम्परा के उत्तराधिकार से उसके पात्र बन गए हैं। राजा पुरोहितों के आशीर्वाद से नहीं बनते किन्तु दिव्य नियमों के अनुसार मानवीय निर्वाचन एवं सहमति से बनते हैं।[33]

गेरहोह उस सिद्धान्त का खण्डन करता है जिसे वह ब्रेशिया के आर्नोल्ड का सिद्धान्त बताता है कि चर्च जिसने लौकिक मामलों में अपने को लिप्त कर लिया है अब ईश्वर का चर्च नहीं रहा है। तथापि वह रोमन चर्च द्वारा आर्नोल्ड के वध में योगदान पर गहरी चिन्ता व्यक्त करता है तथा उसकी कठोर निन्दा करता है। वह विषय के विवाद का उपसंहार यह कहकर करता है कि वह चर्च के अधिकारियों द्वारा राजचिह्नों के धारण का

विरोधी नहीं है यदि वे विनम्रता से एवं वैधानिक रूप से उनका प्रयोग करें, किन्तु जब पादरी या बिशप अपने कर्त्तव्यों को त्याग दें तथा अपने को लौकिक मामलों में व्यस्त बना लें, जब वे लौकिक तलवार का प्रयोग उनके विरुद्ध करें जिनको कि वे अपने शत्रु समझते हैं, यद्धायुधों द्वारा प्राप्त दशमांश तथा आहुतियों के धन का प्रयोग अथवा और रक्षा से अपने को सुसज्जित करने के लिए करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि धार्मिक स्थानों में विध्वंस के घृणित कार्य को प्रतिष्ठित कर रहे हैं क्योंकि ऐसे कार्य ईसा के अनुरूप न होकर ईसा विरोधियों के अनुरूप हैं।[34]

हम बिशपों द्वारा राजचिह्नों के स्वामित्व के विषय में गेरहोह के दृष्टिकोण पर विस्तारपूर्वक विचार कर चुके हैं क्योंकि यह पक्ष द्वारा उठाए गए [redacted] महत्व पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। यह स्पष्ट है कि सुधारवादी दल के प्रसिद्ध सदस्यों में कम से कम कुछ तो ऐसे थे जो यह अनुभव करते थे कि इनकी पूर्ति चर्च को बड़ी कठिनाई में डाल देती है तथा उसको लौकिकीकरण की ओर प्रेरित करती है तथा बिशपों एवं पादरियों के उचित कर्त्तव्यों से विमुख करती है। स्पष्टतः गेरहोह इससे अत्यधिक विक्षुब्ध एवं व्याकुल था। अपने प्रारम्भिक दिनों में वह यह स्पष्टतः मानने को प्रस्तुत प्रतीत होता है कि राजचिह्नों का त्याग लाभपूर्वक किया जा सकता है किन्तु बाद की रचनाओं में उसका यह समग्र रूप से विचार प्रतीत होता है कि उनको बनाए रखना चाहिए किन्तु वह उनसे आने वाले खतरों, चर्च के लौकिकीकरण के खतरे तथा जैसा हम देख चुके हैं क्रमशः लौकिक एवं धार्मिक सत्ताओं के उचित अन्तरों में अव्यवस्था के खतरे का प्रबल अनुभव करता था। वह प्रतिष्ठापन विवाद में पोप की मान्यता का तथा धार्मिक सत्ता की स्वतन्त्रता का निश्चय ही तथा उत्साही समर्थक था किन्तु यह दोनों सत्ताओं के मूलभूत अन्तर से अभिन्न था, हम देख चुके हैं कि वह दोनों तलवारों में कितना स्पष्ट विभेद करता है।

इस प्रकार हम उस बिन्दु पर आ जाते हैं जहाँ गेरहोह की मान्यता के दूसरे महत्वपूर्ण पक्ष को स्वाभाविक संक्रमण उपलब्ध होता है जिसका सम्बन्ध लौकिक तथा धार्मिक सत्ता के पारस्परिक सम्बन्धों से है। इस विषय में उसकी धारणाएं मुख्यतः पोप एलेक्जेण्डर तृतीय के निर्वाचन से आरम्भ होने वाले फ्रेडरिक बारबरोसा तथा पोप के बीच हिंसक संघर्ष के सन्दर्भ में विकसित हुई थीं। किन्तु उनका वर्णन करने से पूर्व गेरहोह के एक प्रारम्भिक ग्रन्थ में वर्णित कुछ मतों का संक्षिप्त उल्लेख करेंगे। चौंसठवें साम (*Psalm Lxiv*) पर अपनी टीका में जिसका काल 1151 ई० माना जाता है वह इसकी पुष्टि करता है कि पोपों ने कई राजाओं और सामन्तों को उनकी अयोग्यता एवं क्रूरता के कारण पदच्युत एवं धर्म-बहिष्कृत भी किया है तथा उनके स्थानों पर दूसरों को प्रतिष्ठित किया है ताकि वे तलवार से उन पर आक्रमण कर सकें जो चर्च एवं साम्राज्य के शत्रु हैं किन्तु वह चर्च के अधिकारियों को चेतावनी देता है कि वे सावधान रहें ताकि वे अपने शत्रुओं की मृत्यु के लिए अपने को उत्तरदायी न बना लें।[35] वह उन बिशपों की निन्दा करता है जो अपने व्यक्तित्व, चर्च के पद तथा काउण्ट के पद की गरिमा में विभेद नहीं करते थे तथा युद्ध करके निर्दोष व्यक्तियों की भी हत्या कराते थे तथा वह अपनी यह उत्कट अभिलाषा व्यक्त करता है कि धार्मिक कार्य धार्मिक व्यक्तियों द्वारा किए जाएं तथा

लौकिक काय लौकिक व्यक्तियों द्वारा तथा दोनो सत्ताग्रो की उचित सीमा बनाए रखी जाए।[36] गेरहोह स्पष्टत चच के शत्रु राजाओ तथा सामन्तो के धम बहिष्कार एव पदच्युति की निन्दा नही करना चाहता ह कुछ आगे जाकर वह स्पष्टतया कहता ह कि उसके मत म यह औचित्यपूर्ण एव यायोचित था।[37] वह एक अय सिद्धात का सुभाव देता ह जिसका इथोमेन्ट तृतीय के दावो म महत्त्वपूर्ण विकास हुआ कि विभिन्न देशो के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बधो मे हस्तक्षेप किया जाए जिस पर हम अगले खण्ड म विचार करगे। वह सुझाव देता है कि यह उचित है कि किसी देश के आन्तरिक झगडों मे एव देशो के पारस्परिक विग्रह की दशा मे चच यह घोषित करे कि कौनसा पक्ष यायपूर्ण है तथा उस पक्ष के समथको की अपने प्रतिनिधियो द्वारा सहायता करे तथा वह इस तथ्य का अनुमोदन करते हुए वणन करता है कि जबकि कुछ समय पूव हगरी के राजा ने यूनानियो से युद्ध करने का विचार किया तो उसने पहले बिशपो की एक परिषद् बुलाई तथा जब उन्होने घोषणा की कि हगरी के द्वारा ही शाति सधि को तोडा गया है तो वह अपनी परियोजना से विरत हो गया। वह प्रतिपादन करता है कि यदि चच के बिशप विवादपूर्ण मामलो के जिनसे युद्ध की सम्भावना हो यायपूर्ण या अयायपूर्ण होने का निणय दें तथा विशेषतया यदि उनके निणय की पुष्टि पोप कर दे तो कोई भी राजा उनका प्रतिरोध नही कर सकेगा क्योकि पोप राज्यो के ऊपर स्थापित किया गया है तथा उसे उनको बनाने का व मिटाने का अधिकार है।[38]

यह स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि उस समय गेरहोह उन सामान्य सिद्धातो को मानता था जो कि हम अधार्मिक शासको को पदच्युत एव धम बहिष्कृत करने के पोप के अधिकार के विषय मे हिल्डेब्राण्ड का मत कह सकते हैं। यद्यपि वह प्रत्यक्षतया हिल्डेब्राण्ड या हेनरी पचम का नाम नही लेता किन्तु उनकी ओर सकेत बहुत स्पष्ट प्रतीत होता है और निश्चित ही ऐसे मामले म काय करने के पोप के अधिकार के सिद्धात की पुष्टि स्पष्ट है। तथापि हम यह ध्यान देने की सावधानी रखनी चाहिए कि गेरहोह इसे दोनों सत्ताग्रो के कतव्यो मे अन्तर के अपने सिद्धात का खण्डन नही मानता। कुछ आगे चलकर उसी ग्रन्थ मे वह इस बात पर बल देता है कि पादरियो को अपने को दण्ड याय म पृथक रखकर अपना काय लौकिक अधिकारियो को यह शिक्षा देना मात्र मानना चाहिए कि क्या ठीक है तथा न्यायोचित है तथा वह अपने मत का सार पोप निकोलस प्रथम के सम्राट माइकेल को लिखे पत्र मे से पोप जिलेसियस के इन शब्दो के उद्धरण से प्रस्तुत करता है जिनमे कहा गया है कि ईसा द्वारा दोनो सत्ताओ को अलग करके उन्हें अलग-अलग काय प्रदान किए गए।[39] तथापि गेरहोह के मत को पूणतया समझने के लिए हम नए सघष छिडने के बाद लिखे गए प्रबन्धो पर अपना ध्यान केन्द्रित करगे।

उसका डी इनवेस्टीगेशन एन्टी क्रिस्टी (De Investigatione Antichristi) नामक ग्रन्थ जिससे हम बहुत से उद्धरण पहले ही दे चुके हैं जसा हमने बताया था 1161–62 ई० म पोप के विवादास्पद निर्वाचन के लगभग दो वष बाद लिखा गया था तथा गेरहोह सुझाव देता है कि यह विपत्ति चच पर ईश्वर के दण्ड का एक भाग थी। दूसरे धमद्रोहो की दशा म यह निणय करना सुगम था कि कथोलिक चच कौनसा है, किन्तु

इस मामले में बुद्धिमान एवं सत्य के सच्चे प्रेमियों के अतिरिक्त किसी दूसरे के लिए किसी निश्चय पर पहुँचना सुगम नहीं है।[40] वह वास्तविक निर्वाचन का विस्तृत विवरण देता है तथा निष्कर्ष निकालता है कि यह अबतक स्पष्ट है कि एलेक्जेण्डर का पक्ष अधिक ठीक था।[41] किन्तु वह वर्णन करता है कि किस प्रकार एलेक्जेण्डर के विरोधियों ने उस पर आरोप लगाए जिनका हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं—अर्थात् एलेक्जेण्डर तथा उसके पक्ष के कार्डिनलों ने हेड्रियन चतुर्थ के जीवित रहते ही सम्राट के विरुद्ध सिसली तथा मिलेनीज के राजा से मिलकर षड्यंत्र किया था तथा शपथपूर्वक प्रतिज्ञा की थी कि वे किसी भी ऐसे व्यक्ति को पोप नहीं चुनेंगे जो षड्यंत्र का सदस्य नहीं था तथा सिसली व मिलन के लोगों द्वारा इसकी प्रतिज्ञा करने के लिए उनको रिश्वत दी गई थी कि वे सम्राट को धर्म बहिष्कृत कर देंगे तथा उनकी राय के बिना उसे दोषमुक्त नहीं करेंगे।[42] वह वर्णन करता है कि उसमें विक्टर तथा एलेक्जेण्डर के आचरण में अन्तर भी बताया गया है जबकि विक्टर ने पाविया में उपस्थित होकर अपना दावा परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत किया था एलेक्जेण्डर ने गर्वपूर्वक ऐसा करने से अस्वीकार कर दिया था।[43]

ऐसा प्रतीत होता है कि गेरहोह इन कारणों से बहुत विचलित हो गया तथा उसे यह आभास हुआ कि चर्च का निर्णय इस विषय में इतना विभाजित है कि किसी भी निर्णय पर पहुँचना उसे कठिन प्रतीत हुआ। एलेक्जेण्डर के समर्थक यह प्रतिपादन करते थे कि एंटियोक (Antioch) तथा यरूशलम के धर्म पीठ उसे स्वीकार करते हैं। किन्तु विक्टर के समर्थकों के अनुसार दूसरे चर्चों के निर्णय का विचार करना भी आवश्यक था क्योंकि विशेषतः पूर्वीय चर्चों की जानकारी बहुत कम थी।[44] गेरहोह एलेक्जेण्डर द्वारा पाविया की परिषद् के सम्मुख अपनी स्थिति की निर्दोषिता सिद्ध न करने के कार्य से परेशान हो गया था। वह प्रतिपादन करता है कि ईसा ने शिष्यों द्वारा अपने पुनर्जीवित होने पर संदेह करने पर स्वयं स्वर्ग से उतर कर दर्शन दिए थे तथा संत पीटर ने संत पाल की झिड़की के सामने आत्मसमर्पण कर दिया था।[45] वह विक्टर के पक्ष में निर्णय करने ही वाला था कि उसे तूलूज (Toulouse) में एक परिषद् के होने का समाचार मिला जिसमें एक सौ बिशप फ्रांस इंग्लैण्ड तथा स्पेन के राजा विक्टर के दूत एलेक्जेण्डर तथा सम्राट उपस्थित थे तथा परिषद् ने एलेक्जेण्डर के पक्ष में निर्णय दिया तथा विक्टर को धर्म-बहिष्कृत कर दिया।[46] तथापि वह इससे विश्वस्त नहीं हुआ क्योंकि परिषद् ने षड्यंत्र के आरोप पर विचार नहीं किया था तथा वह अनुभव करता था कि यह सर्वाधिक गम्भीर प्रश्न है तथा आरोप की सत्यता या असत्यता का निर्धारण केवल सामान्य परिषद् में ही हो सकता है।[47]

गेरहोह के मन में मुख्यतः दो प्रश्न थे क्या षड्यंत्र का आरोप सत्य है तथा क्या सामान्य परिषद् के सम्मुख उस पर लगाए गए आरोपों को प्रस्तुत करने से अस्वीकार करना एलेक्जेण्डर तृतीय के लिए उचित था। वह सम्राट के विरुद्ध यदि यह आरोप सत्य हो[48] षड्यंत्र की निन्दा करने में संकोचरहित है तथा सामान्य परिषद् के निर्णय के अतिरिक्त उसे इस कठिनाई से उबरने का कोई भी मार्ग नहीं दिखाई देता।[49] वह विस्तारपूर्वक इस प्रश्न की परीक्षा करता है कि किस प्रकार एवं किन शर्तों में पोप अपने ऊपर लगाए गए आरोपों से अपने को मुक्त कर सकता है। वह कहता है कि संत पाल ने यरूशलम

म प्रतिरों से विचार विनिमय किया था ताकि उनके सिद्धान्तों से किसी भी प्रकार से भिन्न होने के कारण वह लोक निन्दा को जन्म न दे तथा वह वर्णन करता है कि किस प्रकार पोप मार्सेलस (*Marcellus*) ने जिसने मूर्तियों के प्रति चढावा अर्पित किया था धर्माचार्यों के यह स्वीकार करने पर कि उसका निर्णय कोई भी नहीं कर सकता तथा क्योंकि वह अपने को चर्च के सम्मुख दोषमुक्त नहीं कर सका था उसने स्वयं अपने को धर्म बहिष्कार तथा पदच्युति का दण्ड दिया था तथा किस प्रकार पोप लियो तृतीय ने सार्वजनिक रूप से शार्लमान तथा जनता की उपस्थिति में अपने ऊपर लगाए गए आरोपों से अपने को मुक्त किया था।[50] वास्तव में गेरहोह इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है कि कोई भी पोप का न्याय नहीं कर सकता[51] तथापि वह इसे स्वीकार नहीं करता कि यह सिद्धान्त विवादास्पद निर्वाचन की दशा में प्रयोग किया जा सकता है। उस मामले में उसका विचार है कि दावेदारों को अपने को अपने मान्यों (निर्वाचक बिशपों) के सामने प्रस्तुत करना चाहिए तथा अपना दावा प्रस्तुत करना चाहिए ताकि ईश्वर का चर्च दावों का प्रतिरोध एवं प्रच्छाइयों को स्वीकार कर सके।[5] वह विक्टर तथा उसके समर्थकों की कार्डिनलों के साक्ष्य के आधार पर जो स्वयं उसमें भागीदार थे उस षड्यन्त्र के प्रति अपनी आशंका की पुनः पुष्टि करता है जो सम्राट के विरुद्ध किया गया था तथा माँग करता है कि जिन पर यह आरोप लगाया गया है वे अपने को उससे दोषमुक्त करें तथा साम्राज्य के शत्रुओं से सम्बन्ध तोड़ लें विशेषतः इसलिए कि सम्राट उनके द्वारा सभा शिकायत किए गए मामलों में न्याय करने को तैयार है।[53] गेरहोह ने जिस प्रकार प्रारम्भ किया था उसी प्रकार वह यह कहकर अध्याय का उपसंहार करता है कि इन कठिनाइयों का एक मात्र हल सामान्य परिषद् को बुलाने में है जो दो दावेदारों के बीच निर्णय कर सके तथा धार्मिक एवं राजकीय सत्ता के बीच शांति स्थापित कर सके।

यह बहुत उल्लेखनीय है कि गेरहोह सारी परिस्थिति से इतना विक्षुब्ध था कि उसने पोप की राजसभा (Romani) की सम्पूर्ण नीति की कठोर निन्दा अपनी पुस्तक में चालू रखी। उसने उन पर सबसे बढ़कर अभिमान तथा लालच का आरोप लगाया तथा अवज्ञापूर्वक सुझाव देता है कि वे अन्ततः सभी बिशप पदों को समाप्त करके चर्च के सभी अंगों को प्रत्यक्षतः रोम के शासन के अधीन ले आएं व शासकों एवं प्रजाओं के राजनीतिक सम्बन्धों में हस्तक्षेप करेंगे जो उनकी आज्ञापालन न करेंगे उनको धर्म-बहिष्कृत करेंगे और ये सब कार्य वे धन के लिए करेंगे।[54] वह वर्तमान संघर्ष एवं धर्म विद्रोह का कारण रोमनों के लालच को बताता है जो कि सिसिलियन राजाओं तथा मिलन वासियों के स्वर्ण द्वारा भ्रष्ट बना दिए गए हैं तथा वह मिलन द्वारा राजकीय सत्ता के प्रतिरोध का कारण रोमवासियों के समर्थन को बताता है।[55] उसे वास्तव में इसका खयाल है कि उत्साह के अतिरेक के कारण उसकी निन्दा हो सकती है किन्तु उसकी मान्यता थी कि वह पोप तक व्यक्तिगत रूप से किसी के विरुद्ध नहीं दे रहा है किन्तु केवल उन भयंकर परिणामों की ओर संकेत कर रहा था जो इन दोषों के कारण होंगे क्योंकि उसका वास्तविक भय था कि यदि इन लोकापवादों की उपेक्षा की गई तो रोमन चर्च के प्रति आज्ञापालन में उसी प्रकार व्यतिक्रम होगा जैसा यूनानियों ने किया था।[56]

एक बार फिर वह एलेक्जण्डर के निर्वाचन की वैधता के पक्ष एवं विपक्ष में तर्क देता है तथा कहता है कि वास्तव में चर्च तीन भागों में विभाजित था एक भाग एलेक्जण्डर को स्वीकार करता था दूसरा विक्टर को जबकि तीसरा दोनों में से किसी को भी न स्वीकार करता था न अस्वीकार किन्तु परिस्थितियों के अधिक परिपूर्ण तथा उचित विचार की आशा करता था जो केवल राजाओं की सहमति से बुलाई गई सामान्य परिषद् में ही सम्भव था। उसने स्वयं को किसी निर्णय पर पहुँचने में असमर्थ पाया किन्तु वह तीसरे पक्ष से सहमत प्रतीत होता है।[57]

यह ग्रन्थ पोप के दल में पायी जाने वाली इस प्रवृत्ति को जो सम्राट के ऊपर राजनीतिक सत्ता की माँग करती है अन्य न कठोर निन्दा से भरा हुआ होता है। जब वे चित्रों तथा पत्रों में प्रदर्शित करते हैं कि सम्राट पोप को नजराना देता है—जो फ्रिसिंग हैड्रियन चतुर्थ तथा फ्रेडरिक बारबरोसा के मध्य क्रोधपूर्ण पत्र व्यवहार का उल्लेख है जिसका हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं[58]—जब वे सम्राट तथा उसके विरुद्ध विद्रोह करने वालों के बीच मध्यस्थ बने तब उन्होंने पोप को सम्राटों के ऊपर अधीश्वर बनाया तथा सम्राट को एक सामन्त की स्थिति में ला पटका। वास्तव में यह उस सत्ता को नष्ट करता है जिसे ईश्वर ने बनाया है ईश्वर के आदेशों की अवहेलना तथा दोनों तलवारों की प्रकृति के मध्य भ्रान्ति उत्पन्न करता है। प्रत्येक सत्ता को अपने स्थान एवं कार्यों से सन्तुष्ट रहना चाहिए[59] राजा या सम्राट को उस वस्तु को अपनी नहीं समझना चाहिए जो कि पुरोहितों की हो तथा बिशप को सीजर की वस्तु सीजर का सौंप देनी चाहिए तथा यदि वे राजचिह्नों को धारण करना चाहें तो उनको राजा का उपयुक्त एवं यथोचित सम्मान करना चाहिए। वह पुनः इसका प्रतिपादन करता है कि यह उचित नहीं कि बिशप नजराना दें राजा को इसी से सन्तुष्ट हो जाना चाहिए कि बिशप निष्ठा की शपथ लें तथा यह कि वह अपने पद का सुरक्षित रखते हुए राजमुकुट की रक्षा करेगा।[60]

यह ग्रन्थ पोप पद के निर्वाचन के विषय में तात्कालिक विवाद तथा दोनों सत्ताओं के पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में धार्मिक प्रतिक्रिया के मन की दशा के विषय में विद्यमान जर्मनी की विचारधारा पर पर्याप्त रूप में प्रकाश डालता है। क्योंकि यह उल्लेखनीय है कि यह उसकी धार्मिक भावनाओं की गहनता है जो कि गरहो को इसके बारे में सावधान बनाती है कि कहीं चर्च लौकिक मामलों में लिप्त न हो जाए। वह चर्च की स्वतन्त्रता की आवश्यकता की परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है उसे अराजक प्रतिष्ठापन के विरुद्ध संघर्ष की आवश्यकता एवं न्याय के विषय में कोई सन्देह नहीं है किन्तु जैसा उसने अनुभव किया कि उस युग की यह इतनी समस्या नहीं था कि चर्च को किस प्रकार लौकिक सत्ता के आक्रमण से रोका जाए जितनी यह थी कि वह लौकिक मामलों में फँसने से अपने को किस प्रकार बचाए जिनमें अपनी सफलताओं के कारण वह फँस गया था।

यह सभी बातें उसकी कुछ बाद की रचनाओं में बहुत स्पष्टता से वर्णित हैं। 1166-67 ई० में उसने रोमन चर्च के कार्डीनलों को एक लेख में सम्बोधित किया। वास्तव में उसने जब डी इन्वेस्टीगशन एन्टीक्रिस्टी लिखा था तब से परिस्थिति बहुत बदल गई थी। विरोधी पोप विक्टर की मृत्यु हो चुकी थी तथा पस्कल उसका

उत्तराधिकारी बन चुका था। उसका निर्वाचन जर्मन राजाओं के मई 1165 ई. के विश्व पत्र में रोमन चर्च के बिशपों एवं कार्डीनलों द्वारा लम्बार्डी तथा टस्कनी के बिशपों एवं रोम के नगराध्यक्ष तथा अन्य नागरिकों की उपस्थिति में हुआ तथा साम्राज्य के चर्चों एवं राजकुमारों ने उसे मान्यता दी थी।[61] तथापि गेरहोह उसके अस्वीकरण के विषय में स्पष्ट रूप से था तथा उसने यह आरोप लगाया कि किसी भी कार्डीनल बिशप ने उसके अभिषेक में भाग नहीं लिया था तथा अब वह निश्चित रूप से एलेक्जण्डर तृतीय को वैधानिक पोप मानता था।[62] तथापि वह उस बड़ी कठिनाई को भी बताता था जो कि उसके समर्थकों को इस कारण होती थी क्योंकि सिसली के राजा तथा मिलन वासियों के साथ उसके षड्यन्त्र के आरोप का खण्डन नहीं किया गया था तथा एलेक्जण्डर के कुछ समर्थकों की यह मान्यता भी थी कि हैड्रियन चतुर्थ के कार्य की निन्दा नहीं की जा सकती।[63] उसने तर्क दिया कि एलेक्जण्डर तथा उसके समर्थकों को यह समझ लेना चाहिए कि यद्यपि यह सत्य था कि पोप एवं उसके कार्य किसी मानवीय न्याय के अधिकार क्षेत्र में नहीं आते किन्तु यह केवल उसके धार्मिक पद एवं कार्यों के विषय में था न कि लौकिक मामलों से उसके सम्बन्धों के विषय में इनके विषय में उसके कार्य संशोधन योग्य थे[64] तथा उसने अनेक दृष्टान्तों से यह दिखलाया कि स्वयं पोपों ने इसे स्वीकार किया है तथा इन मामलों से सम्बन्धित आरोपों से अपने को मुक्त किया है उसने लियो चतुर्थ के शुद्धिकरण को भी इसमें सम्मिलित किया था।[6] अतः यदि शिकायत की जाए कि पोप तथा कार्डीनलों ने कोई ऐसा कार्य किया है जिससे साम्राज्य को खतरा उत्पन्न हुआ है तथा चर्च का विभाजन हुआ है तो न्यायोचित यही होगा कि या तो इसे सिद्ध किया जाए या इसका खण्डन किया जाए।[66] यदि यह सिद्ध हो जाए कि पोप ने गलती की है तो इसे बदला एवं सुधारा जा सकता है वैसा करने के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं यह अनेक दृष्टान्त प्रस्तुत करता है जिसमें संत पीटर बोनीफेस द्वितीय पस्कल द्वितीय एवं केलीक्टस द्वितीय सम्मिलित हैं।[67] वह सुझाव देता है कि सिसली के राजा के साथ आरोपित समझौता जिसके बारे में इतना संघर्ष हुआ था पोप हैड्रियन द्वारा दबाव में आकर किया गया था तथा वह कार्डीनलों से प्रार्थना करता है कि सार्वजनिक रूप से यह सिद्ध कर दें कि यह कभी किया ही नहीं गया था या इसका औचित्य सिद्ध करें या इसका संशोधन करें।[68]

गेरहोह ने पोप तथा कार्डीनलों को चेतावनी दी कि उनका निरन्तर विद्यमान मौन भ्रम अपने को इतनी सीमा तक बढ़ा देगा कि राजसत्ता एवं धार्मिक सत्ता एक दूसरे को नष्ट कर देंगी तथा वह उनको जिलेशियस के शब्दों का स्मरण दिलाता है जिसको वह पोप निकोलस प्रथम के सम्राट माइकल को लिखे गए पत्र से उद्धृत करता है जिसमें यह बताया गया है कि यह स्वयं ईसा ही थे जिसने लौकिक एवं धार्मिक सत्ताओं को उनके विशिष्ट कार्य सौंपे। वह कहता है कि यदि ये सिद्धान्त स्मरण रखे जाते तो दोनों सत्ताओं में वर्तमान संघर्ष ही नहीं होता ये दोनों सत्ताएं तब तक चलती रहनी चाहिए जबतक कि ईसा स्वयं अपनी अंतिम विजय के लिए उपस्थित नहीं होते।[69] अतः उसने कार्डीनलों से अनुरोध किया कि यदि वे चर्च के विभाजित सदस्यों को वास्तव में मिलाना

चाहते हैं तो वे इसे स्पष्ट कर दें कि उनके प्रति आरोप के विरुद्ध वे साम्राज्य को नष्ट नहीं करना चाहते।[70]

एक अन्य नेताश में उसने अनुग्रह किया है कि लौकिक शासक यदि वे अन्यायपूर्ण शासन की इच्छा करें तो उनको अनुशासित करना चाहिए न कि उन्हें नष्ट करना चाहिए तथा यह सूचना देता है कि अनेक वार्ताओं में सम्राट ने उससे यह स्पष्ट कर दिया है वह अपने न्यायोचित अधिकारों की सीमा का उल्लंघन नहीं करना चाहता। वह पोप का समर्थन करने को प्रस्तुत है यदि वह इनको स्वीकार कर ले किन्तु वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति से किसी भी ऐसे व्यक्ति का प्रतिरोध करने को दृढनिश्चय है जो उसके कार्यों में हस्तक्षेप करता है तथा उसे विश्वास है कि कोई भी सत पीटर का सच्चा उत्तराधिकारी नहीं हो सकता यदि वह पोप-पद के नाम पर यह प्रयत्न करे कि वह न केवल पादरियों ही का वरन् साम्राज्य का भी शासक है।[71] गेरहोह ने जैसा वह कहता है यह आशा की थी कि ये कठिनाइयाँ या तो सामान्य परिषद् द्वारा या व्यक्तिगत वार्ताओं से सुलझ सकती हैं तथा सम्राट की उसके सलाहकारों ने इससे सहमत होने की राय भी दी थी किन्तु पोप के सलाहकारों ने इन प्रस्तावों के विपरीत राय दी। अतः वह सुझाव देता है कि अन्तिम मार्ग यही होगा कि चर्च तथा साम्राज्य के प्रमुख व्यक्तियों को सम्बोधित पत्र में अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों की पोप स्वयं परीक्षा करे।[72]

गेरहोह का अंतिम ग्रन्थ डी क्वार्टा विजीलिया नॉक्टिस (De Quarta Vicilia Noctis) उसकी मृत्यु के दो वर्ष पूर्व 1167 ई० में लिखा गया था। अपनी एलेक्जेण्डर तृतीय के प्रति निष्ठा के कारण वह साल्ज़बर्ग से निष्कासित कर दिया गया था तथा यह ग्रन्थ एक ऐसे व्यक्ति के स्वभाव की रोचक एवं हृदयस्पर्शी अभिव्यक्ति है जो सम्राट द्वारा चर्च के मामलों में हस्तक्षेप के अन्याय एवं अनौचित्य के बारे में अपने विश्वासों के प्रति दृढ था और साथ ही चर्च के दोषों के प्रति तथा पोप के समर्थकों की जो उस समय तत्सम्बन्ध प्रवृत्तियाँ प्रतीत होती थीं सच्चा और निष्कपट आलोचक था वह एक ऐसा व्यक्ति था जो रोम के आज्ञापालन के लिए निष्ठावान था साथ ही साम्राज्य का एक निष्ठावान नागरिक भी था। उसकी वृद्धावस्था में जैसा वह कहता है उसने अपने आपको अपने आश्रय से निष्कासित एवं शत्रुओं के सम्मुख अनावृत पाया जो उसके विनाश के प्यासे थे तथा जिन्होंने उसके मठ को नष्ट कर दिया क्योंकि वह पोप के प्रति निष्ठावान था तथा नकली पोप विक्टर और पस्कल को मान्यता नहीं देता था।[73] तथापि वह अपने निष्कपट एवं निष्पक्ष मत पर सुदृढ़ रहा जो उसके सम्पूर्ण ग्रन्थ में अभिव्यक्त होता है तथा उसकी दृढ़ धारणा है कि चर्च के कष्ट तथा लौकिक सत्ता के आक्रमण राज्य के चतुर्थ एवं अंतिम प्रहर के इतने लक्षण नहीं थे जितना कि चर्च में बढ़ता हुआ लालच।[74]

वह वास्तव में इस गंभीर दोष के लिए चर्च की निन्दा सीधे एवं निस्संकोच ढंग से करता है। वह इच्छा से पोप एवं कार्डीनलों की वैधानिक स्थिति का संरक्षण करता है किन्तु चर्च पर लूट खसोट एवं भ्रष्टाचार के आरोप लगाता है। चर्च के निर्णयों के न्यायोचित होने पर भी उनका मूल्य माँगा जाता था तथा कभी वे अन्यायपूर्ण भी होते थे तथा रिश्वत द्वारा प्राप्त किए जाते थे।[75] वह इस पर से प्रकट करता है कि ग्रेगोरी

सप्तम और हेनरी चतुर्थ के बीच संघर्ष छिड़ने के बाद से पोप विशाल धनराशि देकर रोमन जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिए विवश हो गए थे तथा रोमनों के लालच को संतुष्ट करने के लिए उस धन को प्रत्येक स्थान से उगाहने को बाध्य हो गए थे।[76] वह अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक कुछ कार्डीनलों की धृष्टता एवं लालच की भी निन्दा करता है।[77]

पोप द्वारा धर्मविच्छेदकारियों के प्रति क्योंकि उनसे युद्ध करने के आग्रह के औचित्य का प्रतिपादन करने में उसे कोई संकोच नहीं है[78] तथा वह वर्णन करता है कि किस प्रकार ईश्वरीय न्याय ने सम्राट तथा उसकी सेना पर प्रहार किया जबकि वे विरोधी पोप पस्कल सहित रोम आए तथा उनमें से बहुत से प्लेग के शिकार हो गए तथा मारे गए।[79] दूसरी ओर वह पोप को लौकिक सत्ता का दावा करने के विरुद्ध गम्भीर चेतावनी देता है क्योंकि उसे कोई अधिकार नहीं है। वह पोप से सावधान रहने का आग्रह करता है ताकि वह लौकिक सम्मान प्रदान करने के अधिकार का दावा न करे जैसे कि वे उसकी जागीर हो यद्यपि वह स्वीकार करता है कि कान्सटेन्टाइन के दान ने उसे रोम नगर के लौकिक मामलों के प्रशासन का अधिकार प्रदान किया है तथापि वह अनुरोध करता है कि सम्राटों ने रोम और संसार पर भी शासन किया है।[80]

सम्राट द्वारा पोप को इस प्रकार के सम्मान के प्रतीक प्रदान करने की वह अत्यन्त कठोरता से आलोचना करता है जो कि स्वयं उसके लिए असम्मानजनक हों। वह स्वीकार करता है कि अपनी विनम्रता के कारण एक बार कान्सटेन्टाइन ने पोप सिल्वेस्टर के सैनिक (Strator) के रूप में कार्य किया था तथापि सिल्वेस्टर ने उसे कभी भी अपना सेनापति (Marshal) नहीं कहा और न कभी चित्रों में वैसा प्रदर्शित किया तथा तब से लेकर अबतक किसी भी सम्राट को उस रूप में प्रदर्शित नहीं किया गया है। दूसरी ओर रोमन पोपों तथा सम्राटों ने सदैव एक दूसरे का आदर एवं सहायता की है तथा वह इस पर आश्चर्य प्रकट करता है कि अब रोमन वैसा चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास करें वह उनसे सन्त पीटर के शब्दों पर ध्यान देने का अनुरोध करता है जिसने कहा है ईश्वर से डरो राजा का सम्मान करो।[81]

गेरहोह स्पष्टतया उस लोकापवाद को नहीं भूला था जो हैड्रियन चतुर्थ के फ्रैडरिक को लिखे गए पत्र के शब्दों एवं परिस्थितियों से उत्पन्न हुआ था।[82] तथा वह यह स्पष्ट करने को कृतनिश्चय था कि वह तथा रोमन धर्मपीठ के जर्मनी में विद्यमान निष्ठावान नागरिक पोप द्वारा किसी ऐसी लौकिक सत्ता के दावे को स्वीकार करने को राजी नहीं हैं जो वस्तुतः उसके अधिकार में नहीं हो। दूसरी ओर वह सम्राट को भी चेतावनी देता है कि वह उस अधिकार का दावा न करे जो कि उसका नहीं है तथा बिशपों को नियुक्त एवं पदच्युत करने के अधिकार का भी दावा न करे जो सम्पूर्णतया उसके क्षेत्र से परे है।[83]

वह लौकिक एवं धार्मिक सत्ता के अधिकारों के तात्कालिक स्रोत के सिद्धान्तों को एक संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित लेखांश में संहृत करता है। वह कहता है कि जैसे ईश्वर ने आदम को पृथ्वी की धूल से बनाया था तथा ईश्वर ने फिर उसमें प्राण फूंक दिए और इस प्रकार सभी जीवित प्राणियों से ऊपर उसे बनाया इसी प्रकार सम्राट या राजा भी जनता या सेना द्वारा बनता है तथा जब सामन्त या जनता सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति उसके शासन को

मान्यता दे देते हैं तो वह पुरोहितों के आशीर्वादों से उसे जीवन की अन्तरात्मा के रूप में प्राप्त करता है। इसी प्रकार पोप या बिशप भी पहले पादरियों के निर्वाचन एव अभिषेक द्वारा (in spiritu promovendus) होता है तथा बाद में (tamquam formandus in corpore) प्रमुख लोगों की सहमति से सम्राट या राजा द्वारा सम्मानित होता है तथा उसकी सहायता से (connıventia) राजचिह्नों को धारण करता है।[84]

इस वाक्यसमूह में ऐसे शब्द हैं जो अस्पष्ट हैं किन्तु उनकी सामान्य प्रवृत्ति यह स्पष्ट कर देती है कि यद्यपि गरहोह लौकिक शासक को आशीर्वाद देने में पोप या पादरी के महत्वपूर्ण स्थान को तथा जिसके द्वारा राजचिह्नों के स्वामित्व के विषय में लौकिक सत्ता के महत्व को स्वीकार करता था तथापि वह दृढ़तापूर्वक प्रतिपादित करता था कि न तो सम्राट न राजा ही बिशप या पोप को नियुक्त कर सकते थे न बिशप और पोप ही राजा या सम्राट को नियुक्त करते थे किन्तु प्रत्येक दशा में उनके अधिकार के स्रोत वही थे जिन्हें उनको चुनने का अधिकार था।

यदि प्रत्येक प्रत्येक अपनी सत्ता से सतुष्ट रहे तथा जो दूसरे के अधिकार में है उस पर दावा छोड़ दे तो रात्रि के चतुर्थ प्रहर में भी सच्ची शांति हो सकती है तथा गरहोह एक कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करता है जो कुछ व्यक्तियों के विचार में 1091 ई में लिखी गई थी।

querit apostolicus regem depellere regno Rex frunte contra papatum tollere papae Si foret in medio qui litem rumpere posset Sic ut rex regnum papatum papa teneat Inter utrumque malam fierit discretio magna

किन्तु वह भाव भरे शब्दों में कहता है कि इस संघर्ष को कौन समाप्त कर सकता है जबतक कि प्रभु ईसा स्वयं पीटर के जलपोत में आकर लोभ के तूफान को शांत न करें यह लोभ जो कि चरम सीमा विरोधी है।[85]

वह इस प्रार्थना से समाप्त करता है कि ईसा उसके चर्च में आएँगे जो इस चौथे प्रहर में सबसे अधिक खतरे में है उन भूखे पुरोहितों का दमन करेंगे जो उसके घर में व्यापार और लूट-खसोट कर रहे हैं तथा उन राजाओं का दमन करेंगे जो धर्म के बहाने अत्याचार को प्रोत्साहन दे रहे हैं—प्रभु ईसा आकर चर्च तथा संसार को बचाएँगे तथा राजसत्ता और धार्मिक सत्ता के बीच शांति स्थापित करेंगे।[86]

संदर्भ

1 कृ आगे देख इसी अध्याय में।

2 आर्नल्ड के सम्बन्ध में विशेष द्रष्टव्य R Breyer Arnold von Brescia in Raumer Historisches Taschenbuch, Sechste Folge Achter Jahrgang मुझे इससे बहुत सहायता मिली है।

3 Otto of F g Gest Frid rici 20

4 H t a P t f cal 31

5 Gesta di P d co I (d Monaci)

[illegible] Gerhoh of Reichersberg De Inves t gat one A tich ist 40
7 Monumenta Corbe e sia 404
[illegible] M G H L g Sect IV Co st v 1 26
9 Gerhoh of Re chersbe g— De edi f e o Dei 12
10 Id [illegible] O d ne do orum S cti Sp tus (p 283)
11 Id De ed f c o D 13
12 Id d 17
13 Id id 25
14 Id id 22
15 [illegible] De O d e don rum Sa cti Sp tus (p 74)
16 Id id (pp 276 277)
17 Id d (pp 278 279
18 Id id (p 279
19 Id id (p 280)
20 See p 347
21 Id De Novit 1 bus h Tempo s 12
22. Id d 19
[illegible] Id De I vest gat e A 1 chri t 24
24 Id id id
25 Id d 25
26 Id id 27
7 Id id id
28 Id id d
29 Id id 35
30 Id id 36
31 Id d [illegible]
32 Id id 37
33 Id id 38
34 Id id 40
35 Id Comm o [illegible] Lx v (p 454)
36 Id id (p 454)
37 Id [illegible] (p 462)
[illegible] Id id (p 467)
39 Id d (p 462)
40 Id d p 465
41 Id id [illegible] 53
42 id d id
43 Id d id
44 [illegible] id 55
45 Id id d
46 Id d 56
47 Id i1 d
48 Id d d
49 Id d 57
50 Id d d
51 Id d d
52 Id id d
53 Id d d
54 Id d 58
55 Id d d
56 Id d d
57 Id d 68
8 Cf p 313
59 Id d 72
60 Id d d
61 M G H Leg Sect IV C st ol i 223
62 Ge h h Opusculum ad Card ales (p 401)
63 Id d (p 401)
64 Id d (p 401)
65 Id d (pp 401 40 410)
66 Id id (p 402)
67 Id d (p 405)
68 Id d (p 405)
69 Id d (p 402)
70 Id id (p 403)
71 Id id (p 408)
7 Id d (p 404)
73 Id D Qua ta V gil a Nocti 2
74 Id id 10
75 Id id 7
76 Id id [illegible]
77 Id id 11
78 Id d 12
79 Id id 15
80 Id d 17
81 Id id 12
82 Cf [illegible] 313
83 Id d 17
84 Id d 17
85 Id d 17
86 Id d 21

चतुर्थ अध्याय

उपसंहार

हमने इस ग्रन्थ में दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक लौकिक एवं धार्मिक सत्ताओं के सम्बन्धों के सिद्धान्तों का विकास प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। हमने इन्नोसेन्ट तृतीय के पदारोहण से पूर्व ही इस ग्रन्थ को समाप्त कर दिया है क्योंकि हमारे विचार में उसके कार्यों और सिद्धान्तों का विवेचन तेरहवीं शताब्दी के सिद्धान्तों एवं परिस्थितियों के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध की दृष्टि से करना श्रेष्ठ होगा जिसका विवेचन हम अगली पुस्तक में करेंगे। हमने कार्यों तथा सिद्धान्तों दोनों का ही विवेचन यथासम्भव तटस्थ रूप से करने का प्रयास किया है ताकि जहाँ तक सम्भव हो वे अपने आप अपने को प्रकट कर सकें और अब यदि हम कुछ सामान्य निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न करें तो हमें आशा है कि इनको हमारे द्वारा पूर्व कथित तथ्यों से पूर्णतया पृथक रखा जाएगा।

हम प्रारम्भ में यह कहना चाहते हैं कि यदि किसी विश्वसनीय निष्कर्ष को प्राप्त करना है तो हमें इन शताब्दियों के इतिहास का पश्चिम में कान्सटैन्टाइन के धर्म परिवर्तन के युग से लेकर धार्मिक एवं लौकिक सत्ताओं के सम्बन्धों के सम्पूर्ण इतिहास के संदर्भ में अध्ययन करना होगा। ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दी के महान् संघर्षों को पृथक करने के प्रयत्न से विभ्रम के अतिरिक्त और कुछ उत्पन्न नहीं होगा और वास्तव में बहुत विभ्रम उत्पन्न हो भी चुका है। यदि हम उत्तरकालीन संघर्ष को समझना चाहें तो विशेषतः दोनों सत्ताओं के नवीं शताब्दी के सम्बन्धों के जटिल स्वरूप का सावधानी से अध्ययन आवश्यक है।

वास्तविकता यह है कि मध्ययुग के परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्त का सर्वाधिक विशिष्ट तत्व मानव समाज की रचना की द्विविधा के सिद्धान्त में है जो जीवन के आध्यात्मिक एवं लौकिक पक्ष की द्वैधता सन्त पीटर के यहूदी अधिकारियों को सम्बोधित शब्दों में स्पष्टतया वर्णित है "हमें मनुष्यों के स्थान पर ईश्वर का आज्ञापालन करना चाहिए" (Acts v 29)। निस्सन्देह यह सम्भव है कि जब साम्राज्य ने ईसाई धर्म स्वीकार किया तो एक क्षण को संकोच हुआ हो किन्तु पश्चिम में यदि कोई संकोच था तो वह केवल क्षणिक था, तथा सामान्य सिद्धान्तों का वर्णन एवं चिन्तन विशेषतया सन्त एम्ब्रोस

द्वारा चौथी शताब्दी में एवं जिलेसियस प्रथम द्वारा पाँचवीं शताब्दी में किया गया अर्थात् इस सिद्धान्त का कि मानव समाज का शासन दो सत्ताओं द्वारा होता है, न कि एक के द्वारा जो क्रमश लौकिक एव धार्मिक हैं वे सत्ताए दो अधिकारियों म निहित हैं धार्मिक एव लौकिक दोनों सत्ताओं में से प्रत्येक अपनी आसक्ति म दबी है तथा प्रत्येक अपने क्षेत्र म दूसरी से स्वतन्त्र है। इस सिद्धान्त का स्पष्ट एव बलपूर्वक वर्णन पुन नवीं शताब्दी में किया गया तथा ग्यारहवीं एव बारहवीं शताब्दी म भी यह मनुष्यों के मस्तिष्क म वर्तमान था।

पश्चिमी जगत में तात्विक रूप से यह एक नया सिद्धान्त था इसमें सन्देह नहीं। हम केवल यही बताने का प्रयास करेंगे कि हेलेनिक एव रोमन दोनों सभ्यताओं के देशों में तथा ईसा के तुरन्त पूर्व की शताब्दियों में यहूदियों के देशों में विचारों एव भावों के आन्दोलनों का उससे अधिक स्पष्ट एव गहन विवेचन होना चाहिए जितना अभी तक किया गया है। नयी धारणा के महत्व की व्याख्या की शायद ही कोई आवश्यकता हो अर्थात् इस धारणा के महत्व की कि धार्मिक क्षेत्र का जीवन लौकिक सत्ता के अधीन नहीं है किन्तु उससे स्वतन्त्र है। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व के महत्व के नवीन विकास का एक पक्ष है और सर्वाधिक अनुपेक्षणीय नहीं यह स्वतन्त्रता की एक नई धारणा है।

यदि यह संकल्पना महत्वपूर्ण एव उसके परिणाम दूरगामी थे तो मानव समाज के व्यावहारिक सगठन में इसके प्रयोग का प्रयास अत्यन्त कठिन था और आज भी बना ही है। यह देखना या यह सोचना कि हम लौकिक तथा आध्यात्मिक के मध्य अन्तर देख रहे हैं सरल है जब हम उनके विषय म सामान्य रूप से या जीवन की वास्तविक यथार्थताओं से पृथक का विचार करते हैं किन्तु जब हम इस विभेद का इन पर प्रयोग करने का प्रयास करते हैं तो यह बहुत भिन्न हो जाता है। हमने प्रथम पुस्तक में नवीं शताब्दी का परिस्थितियों से इसके कुछ पक्षों के उदाहरण देने का प्रयास किया है तथा दसवीं और ग्यारहवीं में बिशपों तथा मठाधीशों के पदों के सामन्तीकरण तथा उनके बढ़ते हुए राजनीतिक महत्व से व्यावहारिक कठिनाइयाँ बहुत बढ़ गयी थीं परन्तु इसके अतिरिक्त दोनों शक्तियों के आपेक्षिक सत्ता के प्रश्न ने भी पर्याप्त कठिनाइयाँ उत्पन्न कर दी थीं तथा मध्ययुग में उनका कोई अंतिम हल नहीं निकला और न इस मामले में हमें अभी तक ही सफलता मिली है।

वह विषय जिस पर हम इस ग्रंथ म विचार कर रहे हैं वह प्रश्न है कि ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दियों म द्वय सत्ता की कल्पना को कहाँ तक सत्ता की एकता के सिद्धान्त द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया था जिसमें एक सत्ता का दूसरी पर प्रभुत्व था। यदि हम किसी निष्कर्ष पर पहुँचना चाहें तो हमें प्रश्न के तीन पक्षों म स्पष्ट विभेद करना होगा प्रथम वास्तव म एक सत्ता कहाँ तक दूसरी के कार्यों म हस्तक्षेप करती थी अथवा दूसरी पर सत्ता का प्रयोग करती थी द्वितीय कहाँ तक इसका कोई सिद्धान्त या तत्व विकसित हुआ और तृतीय कहाँ तक संभावित घटनाओं या मनुष्यों द्वारा निर्मित सिद्धान्तों का वास्तविक महत्व मध्यकालीन राजनीतिक जीवन एव विचारों के यथार्थ स्वरूप पर पड़ा।

हमारे मत में प्रथम प्रश्न अत्यधिक महत्व का है क्योंकि यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि

जिस समय का हम विचार कर रहे हैं उसमें चाहे जिन सैद्धान्तिक निर्णयों पर बल दिया जाता हो वे अधिकांशत वैचारिक कल्पना के परिणाम या क्रमबद्ध विचारों की अभिव्यक्ति नहीं थे किन्तु वे किन्हीं व्यावहारिक कठिनाइयों अथवा आवश्यकताओं के कारण उठे थे। उनमे प्रथम वस्तु जिसका ध्यान रखना चाहिए यह है कि हमारे द्वारा वर्णित सभी सिद्धान्त एवं कार्यों की पृष्ठभूमि में दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उदित हुए धार्मिक सुधार का महान् आन्दोलन चर्च एवं पोप पद की भ्रष्ट परिस्थितियों के विरुद्ध विद्रोह था जिसकी एक अभिव्यक्ति क्लूनिक सुधार थे तथा कड़ी कुछ समय के लिए जिसका केन्द्र था। यह स्पष्ट है कि ओटो प्रथम से लेकर हेनरी तृतीय पर्यन्त पोप-पद एवं चर्च सम्बन्धी संगठनों पर सम्राट व्यापक अधिकार रखते थे उसका पहला कारण तो यह था कि चर्च की सम्पूर्ण व्यवस्था भ्रष्ट एवं असंगठित थी और दूसरा कारण महान् धार्मिक पदाधिकारियों का राजनीतिक महत्त्व था। निस्सन्देह ओटो प्रथम के पोप-पद सम्बन्धी कार्यों के निर्धारण में राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा एवं धार्मिक सिद्धान्तों के प्रभाव में स्पष्ट भेद कर सकना अत्यन्त कठिन है किन्तु यह कहना सत्य होगा कि उसके द्वारा तथा उसके तात्कालिक उत्तराधिकारियों द्वारा प्रयुक्त अधिकारों का औचित्य उनके परिणामों से पुष्ट होता है। और यह हेनरी तृतीय के कार्यों के बारे में अधिक स्पष्टतया सत्य है।

यह स्पष्ट है कि जहाँ तक साम्राज्यिक कार्य सुधारवादी भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता था अथवा उनसे मेल खाता था तबतक अधिकांश प्रसिद्ध एवं उत्साही चर्च के सदस्यों ने इसका कोई विरोध नहीं किया। हमारे मत में सन्त पीटर डेमियन तथा कार्डीनल हम्बर्ट जैसे व्यक्तियों के दृष्टिकोण से स्पष्ट प्रतीत होता है यद्यपि उस समय भी कुछ ऐसे व्यक्ति थे जो साम्राज्यिक कार्यों के औचित्य को अस्वीकार करते थे अथवा उसमें सन्देह करते थे जिनमें मसबर्ग का थीटमार लीज का वजो तथा डी आरडीनेन्डो पोन्टीफिस (De Ordinando Pontifice) नामक निबन्ध (tract) का रचयिता जैसे मनुष्य थे—किन्तु वे अपवाद प्रतीत होते हैं। दसवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दी में लौकिक सत्ता के कार्यों का औचित्य सिद्धान्तों पर उतना आधारित नहीं है जितना कि व्यावहारिक दशाओं पर है तथा यह ध्यान देने योग्य है कि अन्तरिम कारवरोला का एलेक्जेण्डर तृतीय के विवादास्पद निर्वाचन के बारे में कार्य उसी प्रकार के कारणों से औपचारिक रूप से उचित सिद्ध हुआ है—अर्थात् इस मान्यता के आधार पर कि यदि चर्च प्रशासन की व्यवस्था को उसके स्वयं के अधिकारियों से कोई खतरा हो तो लौकिक सत्ता का कर्त्तव्य है कि वह अपनी सत्ता से धार्मिक प्रश्नों के निर्धारण के लिए नहीं अपितु उचित चर्च सम्बन्धी व्यवस्था को शक्ति देने के लिए हस्तक्षेप करे।

बिशपों एवं मठाधीशों की नियुक्ति में राजाओं एवं सम्राटों द्वारा जिस अधिकार का दावा किया जाता था उसका भी आंशिक रूप से औचित्य समान परिस्थितियों के कारण हो सकता था परन्तु वास्तव में दसवीं शताब्दी में विकसित सामन्ती व्यवस्था की दशाओं के अन्तर्गत बड़े पादरियों की राजनीतिक स्थिति का परिणाम था तथा जैसा बाद को सिद्ध हुआ उसे पूर्णतया दूर कर देना असम्भव था। हेनरी तृतीय की मृत्यु तक सुधारवादी दल निर्वाचकों के अधिकारों पर बल देते हुए भी सामान्य रूप में नियुक्ति के विषय में समाज

के राजनीतिक अध्यक्ष के महत्त्वपूर्ण स्थान के औचित्य को अस्वीकार नहीं करता था।

इसलिए यदि यह सत्य है कि लौकिक सत्ता द्वारा धार्मिक मामलों में अधिकारों के प्रयोग का अपना तर्कसम्मत औचित्य इन शताब्दियों की वास्तविक परिस्थितियों के कारण था तो यह भी सत्य है इसके विरुद्ध विद्रोह नई परिस्थितियों के कारण ही उठा तथा नई परिस्थितियों के कारण ही उसका औचित्य है तथा ये नई परिस्थितियाँ सब मिलाकर स्पष्ट हैं। हेनरी तृतीय की मृत्यु के साथ साम्राज्य ने सुधार के आन्दोलनों का प्रतिनिधित्व करना समाप्त कर दिया और वास्तव में शीघ्र ही वह भ्रष्टाचार का केन्द्र प्रतीत होने लगा तथा इसी कारण प्रयाजक प्रतिष्ठापन अर्थात् लौकिक सत्ता द्वारा नियुक्ति का विरोध होने लगा। इस प्रकार सुधारवादी दल के लिए यह संघर्ष चर्च की स्वाधीनता का संघर्ष बन गया। निस्सन्देह यह सत्य है कि उसमें अन्य कारण तथा महत्वाकांक्षाएँ भी सम्मिलित हो गयी थीं किन्तु यह सुझाव हमें विवेकहीन प्रतीत होता है कि स्वतन्त्रता की माँग अवास्तविक थी सुधारवादी चर्च के नेताओं के लिए स्वतन्त्रता सुधार की आवश्यक शर्त हो गयी थी। हल ढूँढ निकालने के पहले गम्भीर प्रयत्न अर्थात् पस्कल द्वारा राजचिह्नों के समर्पण के जिसका तात्पर्य बड़े पादरियों की राजनीतिक स्थिति एवं अधिकारों के समर्पण से था क्रान्तिकारी प्रस्ताव को इसी कारण वास्तविक महत्त्व प्राप्त है। जब चर्च के नेताओं को इस *क्रान्तिकारी प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए सहमत करना असम्भव सिद्ध हो गया* तो यह स्पष्ट हो गया कि एक मात्र सम्भव हल समझौता था तथा 1122 ई. में वार्म्स के समझौते का यथार्थ स्वरूप यही था।

यदि हम इस प्रश्न के दूसरे पक्ष को देखें और यह पता लगाएं कि किस प्रकार एवं किस सीमा तक धार्मिक सत्ता लौकिक सत्ता पर अधिकारों का दावा तथा उनका प्रयोग करने लगी तो यह प्रतीत होगा कि हम पुनः वस्तुनिष्ठ तथ्यों एवं उनके परिणामों का विवेचन कर रहे हैं। साम्राज्यिक सत्ता में सुधारवादी भावना के अभाव का परिणाम *स्वाधीनता की माँग हुआ तथा ग्रेगोरी सप्तम के मत में साम्राज्य में तथा फ्रान्स में भी* लौकिक सत्ता न केवल सुधारों की विरोधी अपितु भ्रष्टाचार का वास्तविक केन्द्र थी विशेषतः धर्म विक्रय की जिसके कारण केवल अपराधी धार्मिक अधिकारियों पर ही आक्रमण करने के स्थान पर वह लौकिक अधिकारियों पर भी आक्रमण करने को प्रेरित हुआ। निस्सन्देह यह एक नई नीति थी क्योंकि सम्पूर्ण इतिहास की भाँति व्यक्तिगत व्यक्तित्व की मौलिक अथवा निर्माणकारी शक्ति ने यहाँ भी महत्त्वपूर्ण या निर्धारक योगदान किया किन्तु यह नीति स्वयं में स्पष्ट तथा वास्तविक परिस्थितियों से संगत थी। निस्सन्देह यह *यदि एक पूर्णतया नवीन वस्तु नहीं तो कम से कम उस युग का एक क्रान्तिकारी कदम* तो था ही कि राजा या सम्राट को धर्म-बहिष्कृत कर दिया जाए किन्तु यह कार्य धार्मिक सत्ता के मूलभूत सिद्धान्त एवं उस युग की वास्तविक परिस्थितियाँ दोनों का प्रतिनिधित्व करता था। यह कार्य विवेकहीन था किन्तु उसमें निहित परिणाम उससे अधिक दूरगामी थे क्योंकि ग्रेगोरी के मत में धर्म बहिष्कृत करने के अधिकार में पदच्युत करने का अधिकार भी निहित था।

यह विचार करने का कोई कारण नहीं कि ईसाई चर्च के सदस्य बने रहने का अधिकार

होने जाने पर राजा को पदच्युत करने के अधिकार का दावा करते समय ग्रेगोरी लौकिक मामलों में लौकिक सत्ता पर किसी सैद्धान्तिक अधिकार का दावा करना चाहता था किन्तु वास्तव में ग्रेगोरी के काय में और उस काय के द्वारा धार्मिक सत्ता लौकिक सत्ता पर व्यापक एवं असीमित अधिकार का दावा कर रही थी तथा यद्यपि ग्रेगोरी सप्तम से लेकर इन्नोसेन्ट तृतीय तक के पोपों ने किसी सीमा तक हेनरी चतुर्थ की मृत्यु के बाद भी इस पर बल देने का कोई गंभीर प्रयास नहीं किया तथापि यह सत्य है कि इस अधिकार का दावा किया या गया इस दावे का परित्याग नहीं किया गया।

अब हम ऐसी स्थिति में पहुँच चुके हैं कि जहाँ हम दूसरे प्रश्न पर स्पष्टतया सोचना चाहिए वह प्रश्न यह है कि इस काल में कहाँ तक एक सत्ता का दूसरी पर प्रभुत्व का सिद्धान्त विकसित हुआ। यदि हमें भ्रम में पड़ने से बचना है तो हमें यहाँ पहले से ही कुछ भेद करने की सावधानी रखनी होगी। इसको प्रतिपादित किया जा सकता है कि एक सत्ता अपने महत्त्व एवं मूल गौरव में दूसरी से श्रेष्ठ थी या इसका अभिप्राय यह हो सकता है कि एक सत्ता का स्वरूप दूसरी से इतना उत्कृष्ट था कि यदि उन दोनों के बीच कोई विवाद उठता तो उत्कृष्टतर सत्ता का मत माना जाता अथवा इसका अभिप्राय यह हो सकता है कि दोनों सत्ताओं में से एक दूसरी के अधिकारों का स्रोत थी तथा उसके अपने क्षेत्र में भी उस पर सैद्धान्तिक रूप से सत्ता धारण करती रही थी।

इन मान्यताओं में से प्रथम सामान्यतः स्वीकृत थी। मध्यकालीन विचारक सामान्यतः यह मानते थे कि वे मामले जिनमें धार्मिक सत्ता का सम्बन्ध था लौकिक सत्ता के अधिकार के मामले से अधिक महत्त्वपूर्ण थे तथा धार्मिक पद का गौरव लौकिक पद से कहीं अधिक था। यह मत पत्यूरी के द्वारा है तथा केटीनो के ग्रेगोरी जैसे कुछ लेखकों तथा यॉर्क ट्रैक्टेट के लेखक द्वारा प्रयुक्त वाक्यों के बावजूद इसका खण्डन अत्यन्त कठिन है।

दूसरी मान्यता एक और अधिक कठिन प्रश्न को उठाती है क्योंकि मध्ययुग की सामान्य मान्यता यह थी कि प्रत्येक सत्ता का अपना भिन्न क्षेत्र है और सिद्धान्ततः इस पर संदेह का प्रश्न नहीं उठता। किन्तु वास्तव में यह सत्य है कि सभी लौकिक एवं धार्मिक सत्ता ईश्वरीय नियमों तथा प्रकृति के नियमों के अधीन समझी जाती थी तथा धार्मिक या लौकिक सभी कानून जो इनके विरुद्ध थे अवैधानिक समझे जाते थे। किन्तु ईश्वर एवं प्रकृति के कानूनों को चर्च के कानूनों या धार्मिक कानूनों से अभिन्न नहीं समझना चाहिए हमने इस मामले पर इस ग्रन्थ की दूसरी पुस्तक में विस्तार से विचार किया है[1] तथा वहाँ हमने यह प्रदर्शित किया है कि इसका बहुत कम प्रमाण है कि यह माना जाता था कि इन बातों में "धर्म" की दशा में धार्मिक सत्ता का निर्णय अन्तिम था।

निस्सन्देह यह सत्य है कि हमारे लिए मध्ययुगीन मन स्थिति को व्याख्या करना अत्यन्त कठिन है हम अब भी बड़ी सीमा तक राज सत्ता की उस सकल्पना से प्रभावित हैं जो चर्च या राजा में किसी निरकुश एवं किसी सीमा तक स्वेच्छाचारी सत्ता का प्रतिनिधित्व करती है परन्तु जो मध्ययुग में पूर्णतया अज्ञात थी। एकमात्र राजसत्ता जिसे वे स्वीकार करते थे कानून की थी तथा वह भी ईश्वर एवं प्रकृति के अधीन थी। उनकी दृष्टि में दोनों कानूनी व्यवस्थाओं के मध्य के संघर्ष का प्रश्न उसमें कहीं भिन्न था जैसा कि आज हमारे

लिए है। यथाय रूप म उनमे स-य तभी सभव या जबकि एक सता दूसरी के क्षेत्र मे हस्तक्षेप करता।

तो हम तीसरी मा-यता क बारे मे क्या कहना है ? वास्तव म हमारे द्वारा परीक्षित साहित्य से यह स्पष्ट है कि यदि धार्मिक सत्ता के लौकिक सत्ता पर उसके क्षेत्र म प्रभुत्व के बारे म कोई सिद्धान्त ग्यारहवा तथा बारहवी शता-नी म था तो वह केवल ग्रेगोरी सप्तम क कुछ पत्रो म या मानसबग के होनोरियस या सलिसबरी के जान मे और सम्भवत कनोनिस्ट रयूफीनस मे ही उपल-ध होना है क्योकि हमारे -दारा परीक्षित किसी भी अन्य लेखक म वह स्पष्टतया उपल-ध नहा होता। अत सवप्रथम प्रश्न करना चाहिए कि क्या इस प्रकार का सिद्धान्त ग्रेगोरी सप्तम की रचनाओ म अन्तर्निहित है ? सामा-य रूप से हम सोचते हैं कि ऐसा नही है।

यह दावे वस्तुत व्यावहारिक रूप म क्रान्तिकारी थे किन्तु यदि हम उन्हें समझना चाह तो हम प्रश्न करना चाहिए कि सद्धान्तिक रूप म ये क्या थे तथा हम सोचते हैं कि सिद्धान्त पर्याप्त रूप म स्पष्ट हैं। ग्रेगोरी ने सम्राटो तथा राजाओं पर उसी धार्मिक अधिकार क्षेत्र का दावा किया जसा किसी भी अन्य लौकिक व्यक्ति पर क्योकि उचित कारण होने पर उसे उनको धम-बहिष्कृत करने अर्थात् निष्ठावाना के समाज से पृथक करने का अधिकार था। उसने इससे यह निष्कप निकाला कि उचित धार्मिक कारण होने पर तथा एक मात्र इसी कारण स उसे उनको धम-बहिष्कृत करने के साथ-साथ पदच्युत घोषित करन का भी अधिकार है तथा उनके प्रति ली गई निष्ठा की शपथ को अवधानिक घोषित करने का भी अधिकार ह। यह सत्य है कि वह वास्तव मे कही भी इसके समथन म प्रमाणो का विवेचन नहीं करता तथा कुछ सदिग्ध दृष्टान्तो को उद्धत करने स अधिक कुछ नहीं करता किन्तु यह विचार करना तकयुक्त होगा कि उसके मत म ईसाई समाज म धम-बहिष्कृत शासक का स्थान होना असमव था।

यह वसा ही सिद्धान्त नही है जसा कि यह दावा कि आध्यात्मिक सत्ता को जिसका प्रतिनिधित्व पोप द्वारा किया जाता है—लौकिक मामलो म सर्वो-च अधिकार प्राप्त हैं। वास्तव म हम यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि 1076 ई से 1080 ई तक उसका आचरण इसका स्पष्ट प्रमाण है कि व- इस प्रकार का दावा नहा करता था तथा उसका कोई ऐसा सिद्धान्त नही था। उसके लिए हेनरी तथा रूडोल्फ की स्थिति केनोसा म हेनरी के दोषमुक्त कर दिए जाने क बा- से जमन जनता द्वारा निश्चित किया जाने वाला मामला था। यदि -यह यह प्रस्ताव किय कि वह प्रश्न उसके प्रतिनिधि उस निर्ण- म भा- ले तो उसका कारण यह था कि उसे वसा करने का निमन्त्रण था। हमारा यह कहने का अभिप्राय नहीं है कि ग्रेगोरी सप्तम का उन परिस्थितिया के बारे म वसा ही स्पष्ट दृष्टिकोण था जसा कि हमने इन श-दो म व्यक्त किया है किन्तु हमारा विचार है कि उसके आचरण म कुछ इस प्रकार की बात निहित है। ग्रेगोरी के कार्यों और श-दो मे निस्स-देह एक सिद्धान्त निहित है किन्तु वह सिद्धान्त यह है कि धार्मिक सत्ता धार्मिक मामलो म उन लोगो पर भी जो लौकिक सत्ताधारी थे उतनी ही पूर्ण था जसे कि अन्य सभी मनुष्यो पर तथा धम बहिष्कार उनको सत्ताधारण के अयोग्य बना देता था यह वह सिद्धान्त नहा था कि लौकिक

सत्ता धार्मिक से उद्भूत है अथवा लौकिक मामलों में भी उसके अधीन है।

आगसटा के होनोरियस तक हम एतद् किसी विचार को नहीं पाते। यहाँ हम इस प्रकार की कुछ मान्यता उपलब्ध होती है। अतः यहाँ हम वह सिद्धान्त उपलब्ध होता प्रतीत होता है जो औपचारिक रूप से जिलेशियन सिद्धान्त में द्रुष से असंगत है। क्योंकि वह इस पर बल देता प्रतीत होता है कि धार्मिक सत्ता ही ईसा की एक मात्र एवं सच्चा प्रतिनिधि है तथा लौकिक सत्ता उससे उत्पन्न हुई है। यह सत्य है कि यह मान्यता उसके द्वारा कान्सटेन्टाइन के दान के प्रसंग के कारण किसी सीमा तक भ्रमपूर्ण प्रतीत होती है। होनोरियस तथा नोनान्तुला का प्लसीडस पहले लेखक हैं जिनके बारे में हम आश्वस्त होकर कह सकते हैं कि वे दान का अर्थ यह लगाते थे कि कान्सटन्टाइन ने पोप को पश्चिम में सारी साम्राज्यिक सत्ता सौंप दी। बाद में इसी शताब्दी में कैनोनिस्ट पैकापालिया (Pancapalea) ने ऐसी ही व्याख्या प्रस्तुत की, तथा होनोरियस इसका अभिप्राय यहाँ तक समझता है कि कान्सटेन्टाइन ने साम्राज्य के सभी भागों पर से अपना सम्पूर्ण अधिकार त्याग दिया। तथापि यह धारणा होनोरियस की अधिक क्रान्तिकारी धारणा से संगत नहीं थी कि मूल रूप में सभी राजनीतिक एवं धार्मिक सत्ता के ... तथा लौकिक शासक की शक्ति भी उससे ही उद्भूत है।

जान आफ सलिसबरी भी इसी मत का प्रतिपादक प्रतीत होता है क्योंकि वह यह प्रतिपादित करता है कि दोनों तलवारों पर आध्यात्मिक सत्ता का स्वामित्व है तथा उससे ही राजा अपनी तलवार प्राप्त करता है। राजा धार्मिक सत्ता का मंत्री अथवा सेवक है तथा धार्मिक पद के उस भाग का प्रशासन करता है जो पुरोहित द्वारा करने के योग्य नहीं है। तथापि जॉन का यह वक्तव्य उसके ग्रन्थ में अकेला है तथा यह किस सीमा तक अभिप्रेत है कि उसमें निहित सभी बातों पर बल देना उसे अभीष्ट था।

बनार्ड ... प्रकार के वाक्यांश जो जान आफ सलिसबरी के मन में वर्तमान हो सकते हैं इतने आकस्मिक एवं आनुषंगिक हैं कि हम उनकी इस प्रकार व्याख्या नहीं कर सकते कि उसका यह मत था तथा सेन्ट विक्टर के ह्यू के वाक्य इतने अस्पष्ट हैं कि हम कोई निर्णय नहीं ले सकते। जहाँ तक हम जानते हैं कि बारहवीं शताब्दी में केवल एक लेखक है जिसका दो सत्ताओं का विवेचन इस दिशा में प्रवृत्त प्रतीत होता है तथा वह है ग्रैशियन के डेक्रटम (D retum) पर लिखने वाला कैनोनिस्ट रयूफीनस। हम इसके वाक्यांशों का द्वितीय खण्ड में विस्तार से विवेचन कर चुके हैं तथा पुनः हम केवल यही कह सकते हैं कि वह ग्रैशियन के डेक्रटम के इस वाक्यांश की व्याख्या करता प्रतीत होता है clavigero (i e petro) terreni simul et cel stis imperiiure comm isit जिसका अर्थ वह यह लगाता है कि किसी सीमा तक पोप को धार्मिक एवं लौकिक दोनों विषयों में ही अधिकार हैं उसके शब्द यह भी सुझाते प्रतीत होते हैं कि वह इसका अर्थ इससे अधिक कुछ नहीं समझता कि सम्राट के निर्वाचन की पुष्टि करना तथा यदि अपनी सत्ता का वे दुरुपयोग करें तो उसे और अन्य लौकिक शासकों को दोषी ... पद से हटाना पोप के अधिकार में था।

होनोरियस सलिसबरी के जॉन तथा रयूफीनस के वाक्यांश महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि

व एक नए सिद्धान्त के प्रथम दर्शन को सूचित करती हैं एक सिद्धान्त जो कि चर्च के परम्परागत मत के विपरीत चर्च में सत्ता की एकता की धारणा को स्थापित कर देता। अगली पुस्तक में हमें तेरहवीं शताब्दी में इस धारणा के इतिहास एवं महत्व का विवेचन करना होगा। इसका कोई प्रमाण नहीं है कि दसवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दी के किसी लेखक ने इस धारणा को प्रस्तुत किया था बारहवीं शताब्दी में यह होनोरियस तथा सभवत सलिस्बरी के जान एव रयूफीनस में उपलब्ध होती है किन्तु यह ध्यान रखने की बात है यह केवल उनमें ही मिलती है।

सभवत यह सुझाया जा सके कि हम इसके साथ हैड्रियन चतुर्थ के फ्रेडरिक बारबरोसा को सम्बोधित पत्र की विचित्र घटना को जोड़ना चाहिए जिसमें उसका यह अभिप्राय निहित होने की शका की गई थी कि साम्राज्य पोप के अधीन एक जागीर है तथा सम्राट पोप के अधीन सामन्त है। यदि हम यह सोचें कि हैड्रियन चतुर्थ इस पर बल देना चाहता था तो निस्सदेह इसका महत्व पोप पक्ष की नीति के विषय में होगा किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि हैड्रियन ने ऐसे दावे को स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया था अथवा उसने इस प्रकार का अर्थ निकालने का स्पष्ट खण्डन किया था। किसी भी अर्थ में सामन्ती प्रभुता का दावा धार्मिक सत्ता के लौकिक सत्ता की तुलना में मौलिक श्रेष्ठता के दावे से पूर्णतया भिन्न वस्तु होता।

इस प्रकार लौकिक सत्ता के अधिकारों के धार्मिक सत्ता से उद्भूत एवं उनके अधीन होने का सिद्धान्त जहाँ तक उसका बारहवीं शताब्दी में अस्तित्व था केवल मात्र एक व्यक्तिगत सम्मति थी जिसे एक अथवा सभवत तीन महत्वपूर्ण लेखकों ने व्यक्त किया था उसको चर्च में कोई अधिकृत रूप से स्वीकृत या सामान्य रूप से या व्यापक रूप से माने जाते हुए प्रदर्शित नहीं करना चाहिए। इसे किसी भी परिषद् या किसी भी पोप की सहमति नहीं मिली।

हमें अतत प्रश्न करना चाहिए कि जिन सिद्धान्तों का हम विवेचन कर रहे हैं ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दी के वास्तविक सार्वजनिक जीवन में उनका यथार्थ रूप से कितना महत्वपूर्ण स्थान था। इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करते समय हम ग्रेगारी सप्तम के कार्यों एव सिद्धान्तों तथा बारहवीं शताब्दी के उन लेखकों के सिद्धान्तों में जिनका हम अभी विवेचन कर रहे थे सूक्ष्म विभेद रखना चाहिए।

ग्रेगोरी सप्तम के कार्यों ने एक तूफान का जन्म देने में योग दिया जो कि कम से कम हनरी चतुर्थ की मृत्यु तक चलता रहा तथा पोपों द्वारा इस सिद्धान्त को कई शताब्दियों तक प्रतिपादित किया जाता रहा कि धार्मिक अपराध के कारण लौकिक शासक को न केवल धर्म बहिष्कृत करने अपितु पद च्युत करने का भी अधिकार पोपों को है। तथापि इसका यह अभिप्राय नहीं है कि पदच्युत करने का भी अधिकार स्वीकार कर लिया गया था सभवत पदच्युत करने के अधिकार को गभीरतापूर्वक चुनौती नहीं दी गई थी किन्तु पदच्युत करने का अधिकार एक भिन्न वस्तु थी तथा कई व्यक्ति जैसे हेनरी चतुर्थ के काल में भी अस्वीकार करते थे। सत्य यह है कि किसी राजा या सम्राट के विरुद्ध अन्य कारणों से जब कभी असन्तोष या विद्रोह होता था उस दशा को छोड़कर उसका सामान्यत कोई

महत्त्व नहीं था। हम इस मामले का अगली पुस्तक में जब हम तेरहवीं शताब्दी का वर्णन करेंगे अधिक पूर्णता से विवेचन करेंगे। जहाँ तक बारहवीं शताब्दी का प्रश्न है इस मामले का बहुत थोड़ा महत्त्व था।

होनोरियस सलिस्बरी के जान तथा रयूफीनस के सिद्धान्त जहाँ तक बारहवीं शताब्दी का प्रश्न है केवल कुछ व्यक्तियों के सिद्धान्त थे जीवन की वास्तविक दशाओं एवं तथ्यों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था उनके द्वारा स्वयं उनसे कोई व्यावहारिक निष्कर्ष नहीं निकाले गए तथा यह सोचने का भी कोई आधार नहीं है कि उस युग के विचारों में भी उनका कोई महत्त्वपूर्ण स्थान था। वास्तव में ठीक उसी समय इंग्लैंड तथा फ्रांस के महान् प्रशासकों के हाथों में राज्य की सत्ता एवं अधिकार सुगठित एवं विस्तृत हो रहे थे तथा यह विचार करना तर्कहीन है कि महान् राजा एवं मंत्री यह स्वीकार करते थे कि उनको प्राप्त अधिकार पोप द्वारा प्रदत्त हैं। सत्य यह है कि दोनों सत्ताओं के अधिकारों की ठीक सीमारेखा में स्पष्ट विभेद कर पाना अत्यन्त कठिन था किन्तु यह विभेद सामान्यतया किया जाता था तथा दैवी व्यवस्था का एक अंग समझा जाता था।

हमारे द्वारा वर्णित युग में दोनों सत्ताओं के सम्बन्धों के सामान्यतः स्वीकृत सिद्धान्त की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति टूरनाई के कैनोनिस्ट स्टीफेन (Canonist Stephen of Tournai) के शब्दों में मिली है जो कि बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लिख रहा था। एक राष्ट्र मंडल एवं एक राजा के अधीन दो जनताएँ दो जीवनचर्याएं, दो सत्ताएं तथा द्विविध कार्य क्षेत्र है। वह राष्ट्रमंडल चर्च है दो जनताएं चर्च की दो व्यवस्थाएं हैं अर्थात् पादरी एवं उपासक वर्ग दो जीवनचर्याएं धार्मिक आर्थिक एवं लौकिक हैं। सत्ता पुरोहित वर्ग तथा राजा हैं द्विविध कार्यक्षेत्र दैवी एवं मानवीय कानून हैं। प्रत्येक को उसका देय दो तथा सभी वस्तुओं में सामञ्जस्य हो जाएगा।[4]

संदर्भ

1 इ देव खण्ड 2।
2 Cf I
3 Cf ol
4 St ph n f To rn S mm De re
n Int od ct

Texts of Authors Referred to in Volume IV

Abbe of Fleury Collectio Canonum — Migne Patrologia Latina vol 139
Adalbero Carmen—Migne Patrologia Latina vol 41
St Adalbert Vita—Mign Patrologia Latina vol 137
Alexander II Epistles—Migne Patrologia Latina vol 146
Annales Hildesheim nses—Monumenta Germaniae Histori a Scriptor s vol 3
Annales Paderboraenses—Monumenta Germanie Histori a Scripptores vol 3
Annales Romani—Monumenta Germaniae Historica Scriptores vol 5
Anonimus Haserensis — Monumenta G rmaniae Historica Scriptores vol 7
Anselm Continuator Si berti G mblacensis Monumenta Germaniae Historica vol 7
Anselm Historia D dicationis Ecclesiae S Remigii —Migne Patrologia Latina vol 12
Anselm of Lucca Liber contra Wibertum — Monumenta Germaniae Historica Libelli De Lite vol 1
Arnulf Gesta Archiepiscoporum M diolanensium—Monumenta Germaniae Historica, Scriptores, vol 8
Atto of Vercelli De Pressuris Ecclesiasticis —Migne Patrologia Latina vol 137
St Bernard Vita—Migne Patrologia Latina vol 185
De Consideratione—Migne Patrologia Latina vol 182
Epistles—Migne Patrologia Latina vol 182
Bernard of Constance Epistola in Bernald Libellus II — Monumenta Germaniae Historica Libelli De Lite vol 2
Bernard of Constance Liber Canonum contra Heinricum Quartum Monumenta Germaniae Historica Libelli D Lite vol 1
B rnald Libelli — Monumenta Germaniae Historica Libelli De Lite vol 2
B rthhold, Annales — Monumenta Germaniae Historica Scriptores vol 5
Bonizo Liber ad Amicum Monumenta Germaniae Histori a Libelli De Lite vol 1

Bruno De B llo Saxoni o — Monumenta Germaniae Historica Scri ptores vol 5

Bruno of Segni Ep stola Monumenta Germ niae Historica Libelli De Lite vol 2

Calixtus II Epi tl M gne Patrol gia L ti vol 163

Casuum Sancti Galli ontinuator —Monumenta Germaniae Historica S riptor s vol 2

Cl ment II Epistles—Migne Patrologia Latina vol 14

Codex Udali i in Monumenta Bamb rgensia ed P Jaff

Concordia II n v ntanum in J M Wat ert h Po tifi orum Romano rum Vitae vol 2

Con titutiones — Monum nta Ger naniae Histori a Legum sect iv vol 1

Continuator Reginonis — Monumenta Germaniae Historica Scriptores vol 1

Coun ils—M n i Concil a

De Ordinando Pontifice Monumenta Germaniae Historica Libelli De Lite vol 1

De Unitate Ecclesiae Conservan la —Monumenta Germaniae Historica Libelli De Lite ol 2

Deusdedit Collectior Canonum ed V W von Glanvell 1905
Libellus contra invasores et simnoniacos —Monumenta Germaniae Historica Libelli De Lite vol 2

Dicta cuiusdam de discordia Papae et Regis —Monumenta Germaniae Histori a Libelli De Lite vol 1

Disputatio vel D fensio Paschalis Monumenta Germaniae Historica L b lli De Lit vol 2

Eadm r Histori i Novorum Rolls Series

Ekkehard Chr on o —Monumenta Germania Histori a S riptores vol 6

Fulb rt of Chartr s Epistle —Migne Patrologia Latina ol 141

Gebhardt of Salzb ur Epistola Monumenta Germaniae Historica Libelli D Lite vol 1

Gerbert Epistl s—ed J Ha et 1889

G rl oh of Rei hersb r —Mon menta Germani Hist ri a Libelli D Lite vol 3

G sta di Federi o I ed Monaci

Godfrey of Vendome Lib lli—Monumenta Germaniae Histori a Libelli De Lite vol 2

Gr gory V Epi tl s—Mign Patrolo ia Latina vol 137

Gregory VII Regi t um ed Jaff Bibliotheca Rerum Germanicarum vol II

Gregory of Catino Orthodoxa Defensio Imperialis — Monumenta Germaniae Histori a Libelli De Lite vol ?
Gunther Ligurinus —ed Dumge
Hatto of Maintz Epistola – *Mansi Concilia* vol 18 A p 204
Historia Pontificalis – Monumenta Germani e Historica Scriptores vol _0
Honorius of Augusburg Summa Gloria Monumenta Germaniae Historica Libelli D Lite vol 3
Hugh of Fleury Tractatus de Regia Potestate et Sdcerdotali Dignitate Monumenta Germaniae Historica Libelli de Lit vol ?
Hu h of St Victor D Sa ramenti — *Migne Patrologia Latina* vol 176
Hugo Cantor Hi toria Rolls Series
Hugo M tellus Certam n Papae et Regis — Monum nta Germaniae Historica Libelli De Lite vol 3
Humbert of Silva Candida Adversus Simoniocos — Monumenta Germaniae Historica Libelli D Lite vol 1
Hunold *Carmen de Anulo et Baculo* – *Monumenta Germaniae Historica* Libelli De ite vol 3
Ivo of Chartr s Epistolae — Monumenta Germaniae Historica Libelli De Lite vol 2
John XIII Epistles — Migne Patrologia Latina vol 135
John of Salisbury Policraticus —ed C C I Webb 1909
Lambert of Hersfeld Annales —Monumenta Germaniae Historica Scriptores vol 5
Lanfrance Vita —Migne Patrologia Latina vol 150
Leo IX Epistles—Migne Patrologia Latina vol 143
—— Vita —Migne Patrologia Latina vol 143
St Lietbert Vita —Mign Patrolo ia Latina vol 146
Liutprand of Cremona D Rebus G stis Otoonis —Monum nta Germaniae Historica S riptores vol 3
Manegold Ad Gebehardum Monum nta G rmaniae *Historica* Libelli De Lit ol 1
Monum nta Bamb rgensi — ed I Jaff Bibliotheca Rerum Germanicarum vol 5
Monum nta Corbeiensia —ed P Jaff Bibliotheca Rerum G rmanicarum vol 1
Narratio d electione Lothari in R g m Romanorum — Monum nta G rmaniae H stori a S riptore vol 12
Nicholas II Epistles— Monum nta Migne Patrologia Latina vol 143
Otto of Freising Gesta Friderici — Monumenta G rmaniae Historica

Scriptores vol 20
Paschal II Epistle — Monumenta Moguntina P Jaffe Bibliotheca Rerum Germanicaru vol 3
Peter Crassus Defensio H inrici Regis —Monumenta Germaniae Historica Libelli De Lite vol 1
Peter Damian Disceptatio Synodalis —Monumenta Germaniae Historica Libelli De Lite vol 1
— — Epistles and Sermons—Migne Patrologia Latina vol 144
— — Liber Gratissimus —Monumenda Germaniae Historica Libelli De Lite ol 1
— — Opuscula —Migne Patrologia Latina v l 145
Placidus of Nonantula Liber de Honore Ecclesiae —Monumenta Germaniae Historica Libelli De Lite, vol 2
Rangerius Liber de Anulo et Baculo, Monumenta Germaniae Hi torica Libelli De Lite vol
Ratherius of Verona Praeloquiorum Migne, Patrologia Lati a vol 136
Regesta Pontifi um —ed Jaff Wattenbach
Rodolphus Glaber Historiae – M gne Patro g a Latina vol 14
Rufinus Summa Decretorum ed H Singer
Siegfried of Maintz Epistles — Migne Patrologia Latina vol 146 and Monumenta Bambergensia Jaffe Bibliotheca Rerum Germanicarum vol 5
Sigebert of Gembloux Chronicon —Monumenta Germaniae Historica Scriptores vol 6
— — Leodicensium Epistola adversus Paschalem Papam —Monumenta Germaniae Historica Libelli De Lite vol 2
Silvester II De Informatione Episcoporum Migne Patrologia Latina vol 139
Stephen of Tournai Summa Decretorum —ed J F von Schulte
Suger Vita Ludovi i VI —Monumenta Germaniae Histori a Scriptores vol 26
Thietmar of M rseburg Chroni on —Monumenta Germaniae Historica Scriptores vol 3
Tractatus Eboracenses —Monumenta Germaniae Historica L belli De ite ol 3
Tractatus de Investitura Episcopali Monumenta Germaniae Historica Libelli De Lite vol 2
St Udalcicus Vita —Migne Patrologia Latina vol 135
Urban II Epistles—Migne Patrologia Latina vol 151
Wenrich of Trier Epistola —Monumenta Germaniae Historica Libelli De Lite vol 1

Wido of Ferrara De Scismate Hildebrandi —Monumenta Germaniae Historica Libelli De Lite vol 1

Wido of Osnaburg Liber de Controversia Hildebrandi et Heinricci Monumenta Germaniae Historica *Libelli De Lite* vol 1

William the *Conqueror Epistle—in Gregory VII Epistolae Extra* Vagantes Migne Patrologia Latina vol 148

William of Malmesbury Gesta Rolls Series

Wippo Vita Chuonradi —Migne Patrologia Latina vol 142

Index Of Names Referred To In Volume IV